ज्योति और ज्वाला

लेखक
तरुण तपस्वी मुनि
श्री लाभचन्द्रजी महाराज

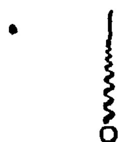
विक्रम स० २०२१ कार्तिक पूर्णिमा
तारीख १९-११-६४

मूल्यः— सप्रेम वाचन

प्रकाशक :

सेठ रिद्धकरणजी हजारीमलजी

कोटडी वाले, हाल मुकाम जोधपुर



प्राप्ति स्थान :

१. शाह रिखबचन्दजी जुगराजजी

रीड रोड, ५ कुआ, अहमदाबाद

२. शाह रिखबचन्दजी जुगराजजी

सुनारो का वास, जोधपुर (राज०)



मुद्रक :

राठी प्रिण्टर्स (प्रेस)

भूतलपाडा, जोधपुर.

यह क्यों ?

मानवीय जीवन मे और पाशवीय जीवन मे सूर्य और पृथ्वी जितना अन्तर है। मानव स्वय को अच्छाई एव बुराई की तरफ़ स्वेच्छा से लेजाने मे स्वतन्त्र है। पर पाशवीय जीवन मे ऐसा नही है। वहा वश परपरागत जीवन-यापन की पद्धति पर ही उसके जीवन का सचालन है।

मानव एक ज्योति पूज है। उसकी शुभ्र, शान्त चादनी के द्वारा अविवेक के अन्धकारमय वातावरण को ज्योतिर्मय बनाए एव अपनी दिव्यता दूसरो को प्रदान कर उनसे भी दिव्य निर्मलज्ञान, निर्भय रहने की प्रेरणा ले सकता है। इससे विपरीत अपनी उष्णता द्वारा स्वय दग्ध बनकर दूसरो को भी जलाकर मटियामेट मिलाना चाहेगा तो उसे सर्वप्रथम तप्त ज्वाला मे भस्मीभूत होना पडेगा।

इसी आशय को लेकर इस पुस्तक का निर्माण हुआ है। मानव अनेक परिस्थितियो मे सम्भल कर कैसे आगे बढ़ता सम्भलता है ज्योति स्वरूप बना है। इस पुस्तक के दो स्तम्भ हैं। प्रथम स्तम्भ मे घोर तपस्वीनीजी श्री सुगनकुंवरजी म० के जीवन की कुछ सरसरी झाकी तथा इस वर्ष किये गये ५६ दिन के तप के प्रसंग पर आये हुए शुभ सदेश, कविता आदि है। तदनंतर उनके स्वर्गवास पर आये हुए शोक समाचार आदि है। दूसरे स्तम्भ मे मेरे जीवन के कुछ सस्मरण हैं, जो कि मुझे याद थे, सुने थे व लिपिबद्ध थे वे दिये गये हैं। ये सस्मरण

पर्युषण पर्व मे मैंने जब सुनाए तो जनता की यही माँग हुई कि इन्हे प्रकाशन का रूप दिया जाय। इधर महासती जी श्री सुगन कुवर जी म० ५६ दिन पारणे के बाद देवलोक हो गई तो भाई जुगराजजी ने (श्री रिखबचन्दजी, जुगराजजी अहमदाबाद वाले) ने तपस्वीनीजी की स्मृति मे पुस्तक प्रकाशन की इच्छा महासतीजी श्री कमलावतीजी के सामने व्यक्त की।) तीसरी यहा के श्री सघ की यह इच्छा थी कि इस ऐतिहासिक चातुर्मास की यादगार के रूप मे भी कोई मौलिक साहित्य प्रकाशित हो इत्यादि व अनेक कारणों को लेकर यह पुस्तक "ज्योति और ज्वाला" तैयार की गई है। इसका सपादन साधु बालारामजी (जोधपुर) ने किया।

इस पुस्तक का हेतु सत जीवन का परिचय, उनको किन किन परिस्थितियो मे से कैसे गुजरना पडता है और दिव्य शक्तिया इस पचम आरे मे भी दिखाई देती हैं तथा महापुरुषो के द्वारा किस प्रकार तप चरित्र वृद्धि की प्रेरणा मिलती है इत्यादि की जानकारी है। पाठक इस पुस्तक की भाषा के द्वन्द मे न पडकर, वास्तविक भावो को ग्रहण करें तथा अपने जीवन मे प्रेरणा प्राप्त कर स्वय मे नई चेतना का विकास कर महान आनन्द एव शान्ति प्राप्त करें।

चातुर्मास मे विविध स्थानो, स्कूलों मे प्रवचन द्वारा करीब ५०००० (पचास हजार) से भी अधिक भाई-बहनो, बालक-बालिकाओ, विद्यार्थियो एव छात्राओ ने लाभ उठाया। तथा तपश्चर्या भी अत्यधिक हुई, जिसमे बडी तपश्चर्याएँ करीब इस प्रकार से हुई—५६ तपस्वीनी जी श्री सुगनकुवर जी म०

मासखमण,	३१	३३	इक्कीस	अठारह	सोलह	पन्द्रह
१	७	१	१	१	४	२

ग्यारह	दस	नौ	अठाइयां
२	५	१५	५२५

तथा सात छः आदि की तपश्चर्या अनगिनीत हुई तथा एकान्तर दो महीने की, सैकड़ो भाई-बहनो ने की। ब्रह्मचर्य व्रत ८ सजोड़े (पति पत्नि) हुए।

चातुर्मास की सफलता मे सत-सतियो के अलावा श्री चादमलजी लोढा (श्री सघ अध्यक्ष), श्री सूरजमलजी सकलेचा (उपाध्यक्ष), श्री माधवमलजी लोढा (मत्री), श्री चौथमलजी फोफलिया (सयुक्त मत्री), श्री तिलोकचन्दजी सचेती, श्री हुकमीचन्दजी (वकील), श्री दोलतराजजी, श्री हुकमीचन्दजी पारख, श्री गणपतमलजी सुराणा, श्री शिवनाथमलजी नाहटा, श्री रामलालजी चांबड, श्री घीसूलालजी लोढा आदि समस्त श्री सघ ने बहुत उत्साह पूर्वक प्रोत्साहन दिया तथा मत्री श्री माधवमलजी लोढा, श्री भवरलालजी, श्री दाऊलालजी शारदा तथा श्री हुकमीचन्दजी पारख इन चारो ने विशेष सेवाएँ प्रदान की।

इनके अतिरिक्त जोधपुर नवयुवक मडल के सदस्य श्री सम्पतलालजी खिवसरा, श्री माणकचन्दजी हसराजजी आदि का पूर्ण सहयोग रहा।

नोट : इस चातुर्मास में २२५ भाई-बहन बारह वृति बने।

लेखक



पर्युषण पर्व मे मैंने जब सुनाए तो जनता की यही मांग हुई कि इन्हें प्रकाशन का रूप दिया जाय। इधर महासती जी श्री सुगन कुवर जी म० ५६ दिन पारणे के बाद देवलोक हो गई तो भाई जुगराजजी ने (श्री रिखवचन्दजी, जुगराजजी अहमदाबाद वाले) ने तपस्वीनीजी की स्मृति मे पुस्तक प्रकाशन की इच्छा महासतीजी श्री कमलावतीजी के सामने व्यक्त की।) तीसरी यहा के श्री सघ की यह इच्छा थी कि इस ऐतिहासिक चातुर्मास की यादगार के रूप मे भी कोई मौलिक साहित्य प्रकाशित हो इत्यादि व अनेक कारणों को लेकर यह पुस्तक "ज्योति और ज्वाला" तैयार की गई है। इसका सपादन साधु बालारामजी (जोधपुर) ने किया।

इस पुस्तक का हेतु सत जीवन का परिचय, उनको किन किन परिस्थितियो मे से कमे गुजरना पडता है और दिव्य शक्तिया इस पचम आरे मे भी दिखाई देती हैं, तथा महापुरुषो के द्वारा किस प्रकार तप चरित्र वृद्धि की प्रेरणा मिलती है इत्यादि की जानकारी है। पाठक इस पुस्तक की भाषा के द्वन्द मे न पडकर, वास्तविक भावो को ग्रहण करें तथा अपने जीवन मे प्रेरणा प्राप्त कर स्वय मे नई चेतना का विकास कर महान आनन्द एव शान्ति प्राप्त करें।

चातुर्मास मे विविध स्थानो, स्कूलों मे प्रवचन द्वारा करीब ५०००० (पचास हजार) से भी अधिक भाई-बहनो, बालक-बालिकाओ, विद्यार्थियो एव छात्राओ ने लाभ उठाया। तथा तपश्चर्या भी अत्यधिक हुई, जिसमे बडी तपश्चर्याएँ करीब इस प्रकार से हुई—५६ तपस्वीनी जी श्री सुगनकुवर जी म० मासखमण, ३१ ३३ इक्कीस अठारह सोलह पन्द्रह

१	२	१	१	१	४	२९

ग्यारह	दस	नौ	अठाइयां
२	५	१५	५२५

तथा सात छ: आदि की तपश्चर्या अनगिनीत हुई तथा एकान्तर दो महीने की, सैकड़ो भाई-बहनो ने की। ब्रह्मचर्य व्रत ८ सजोड़े (पति पत्नि) हुए।

चातुर्मास की सफलता मे सत-सतियो के अलावा श्री चादमलजी लोढा (श्री सघ अध्यक्ष), श्री सूरजमलजी सकलेचा (उपाध्यक्ष), श्री माधवमलजी लोढा (मत्री), श्री चौथमलजी फोफलिया (सयुक्त मत्री), श्री तिलोकचन्दजी सचेती, श्री हुकमीचन्दजी (वकील), श्री दोलतराजजी, श्री हुकमीचन्दजी पारख, श्री गणपतमलजी सुराणा, श्री शिवनाथमलजी नाहटा, श्री रामलालजी चांबड, श्री घोसूलालजी लोढा आदि समस्त श्री सघ ने बहुत उत्साह पूर्वक प्रोत्साहन दिया तथा मत्री श्री माधवमलजी लोढा, श्री भवरलालजी, श्री दाऊलालजी शारदा तथा श्री हुकमीचन्दजी पारख इन चारो ने विशेष सेवाऐं प्रदान की।

इनके अतिरिक्त जोधपुर नवयुवक मडल के सदस्य श्री सम्पतलालजी खिवसरा, श्री माणकचन्दजी हसराजजी आदि का पूर्ण सहयोग रहा।

नोट : इस चातुर्मास में २२५ भाई-बहन बारह वृति बने।

लेखक

घोर तपस्विनीजी

श्री सुगनकुँवरजी महाराज

के

जीवन की झाँकी

घोर तपस्विनीजी

श्री सुगनकुँवरजी महाराज

के

जीवन की झाँकी



स्वर्गीय घोर तपस्वीनी श्री सुगनकँवरजी महाराज सा०

मङ्गलाचरण

सवैया :

क्रोध कषाय हटाय अहर्निश गाय रही गुन जासु विरक्ती।
वीर बडे शिर न्हाय रहें पद-पङ्कज में तजि के निज शक्ती॥
जा मुख तेज निहार ततच्छन कूँ जल-तुल्य कृशानु धधकती।
वन्दन हो उन शान्ति-प्रदायक शान्ति-जिनेश्वर को सह भक्ती॥१॥

तपस्विनी श्री सुगनकंवरजी म० की संक्षिप्त जीवनी

॥ दोहा ॥

अघ – हारन – कारन अहा, जनमें जो जग-मांय ॥
ललित चरित उनका लिखू, सदगुरु करो सहाय ॥२॥

मरुधर भूमि मे भोपालगढ के रहने वाले श्रीमान् सेठ गुलाबचन्दजी छाजेड व्यापार के लिये जन्म-भूमि को छोड कर, पूर्व खानदेश मे अजन्टा लेणी, भारत की प्रसिद्ध और देखने योग्य लेणी है, उसी के छ माइल की दूरी पर एक तोडापुर नाम का ग्राम है जो चारो ओर पहाडियो से घिरा हुआ अति-सुन्दर-रमणीय है, वहाँ पर अपना निवास किया। देव, गुरु, धर्म मे अनन्य श्रद्धा भक्ति और विशुद्ध दिनचर्या के प्रताप से भाग्य ने उनका साथ दिया इसलिये व्यापार मे अच्छी वृद्धि हुई। दम्पति जीवन सुखमय व्यतीत होने लगा। कालान्तर मे सेठानी श्री सुन्दर बाई ने गर्भ-धारण किया। पुत्र-वधू के गर्भ-धारण करने की शुभ-सूचना प्राप्त कर हमारे चरित्र-नायिका की दादीजी को महान् हर्ष हुआ। गर्भ मे आते ही हमारे चरित्र-नायिका के पिता को व्यापार मे दिन दूना फायदा होने लगा और मातुश्री की धर्म-भावना दिन प्रतिदिन बढने लगी। गर्भ-काल पूर्ण होने पर विक्रम सवत् १९८६ के श्रावण वदि सातम गुरुवार को रात्रि के समय तीन बजकर पैंतालिस मिनट पर हमारी चरित्र-नायिका का शुभ जन्म हुआ। सारा परिवार आनन्द मनाने लगा। उत्तम

ग्रहो को देख कर दैवज्ञ ने गुण-निष्पन्न श्री सुगनकुवर नाम घोषित किया। आपका बाल्य-काल बडे आनन्द मे व्यतीत हुआ। आपके बाद माता की कुक्षि से एक बहिन और एक भाई ने फिर जन्म लिया। बहिन का नाम इन्दरबाई और भ्राता का का नाम लालचन्द रखा गया। तीनो बहिन भाई अपनी बाल-क्रीडा द्वारा दादी, माता, पिता और कुटुम्बियो को प्रमुदित करते हुए द्वितीया के चन्द्र की भाँति दिन-प्रतिदिन बढने लगे। कुटिल काल की आँखो मे सेठ गुलाबचन्द का इस प्रकार का आनन्द काँटे की तरह खटकने लगा। कवि का यह कथन सर्वथा सत्य है कि—

गीतिका छन्द

काल की है चाल अति-विकराल जाने कौन हैं।
सामने इसके बडे रणधीर भी तो मौन हैं ..
राव हो या रक इस से कौन जीते जग हैं।
अधिक क्या, इस काल से संसार सारा दंग है ॥१॥

एतदर्थ अकस्मात् उस असमय मे (काल) ने अपना जाल-फास फैलाया और हमारे चरित्र-नायिका को पिता के सुख से वचित कर दिया।

मातुश्री ने आपको गार्हस्थ्य-धर्म की सुन्दर शिक्षा दी। आपकी इच्छा बचपन से ही उपवास, आयविल, पौषध आदि धार्मिक-कृत्य करने मे अत्यधिक लगी रहती थी। जब आपने सोलहवें वर्ष मे प्रवेश किया तो आपके माताजी ने आपके योग्य घर वर देखकर औरंगाबाद-निवासी श्रीमान् पन्नालालजी वहुरा के सुपुत्र श्री जसराज के साथ सवत् २००१ फाल्गुन वदि नवमी

तपस्वीनी श्री सुगनकंवरजी म० की संक्षिप्त जीवनी

॥ दोहा ॥

अघ – हारन – कारन अहा, जनमें जो जग-मांय ॥
ललित चरित उनका लिखू, सदगुरु करो सहाय ॥२॥

मरुधर भूमि मे भोपालगढ के रहने वाले श्रीमान् सेठ गुलाबचन्दजी छाजेड व्यापार के लिये जन्म-भूमि को छोड कर, पूर्व खानदेश मे अजन्टा लेणी, भारत की प्रसिद्ध और देखने योग्य लेणी है, उसी के छ माइल की दूरी पर एक तोडापुर नाम का ग्राम है जो चारो ओर पहाडियो से घिरा हुआ अति-सुन्दर-रमणीय है, वहाँ पर अपना निवास किया। देव, गुरु, धर्म मे अनन्य श्रद्धा भक्ति और विशुद्ध दिनचर्या के प्रताप से भाग्य ने उनका साथ दिया इसलिये व्यापार मे अच्छी वृद्धि हुई। दम्पति जीवन सुखमय व्यतीत होने लगा। कालान्तर मे सेठानी श्री सुन्दर बाई ने गर्भ-धारण किया। पुत्र-वधू के गर्भ-धारण करने की शुभ-सूचना प्राप्त कर हमारे चरित्र-नायिका की दादीजी को महान् हर्ष हुआ। गर्भ मे आते ही हमारे चरित्र-नायिका के पिता को व्यापार मे दिन दूना फायदा होने लगा और मातुश्री की धर्म-भावना दिन प्रतिदिन बढने लगी। गर्भ-काल पूर्ण होने पर विक्रम सवत् १९८६ के श्रावण वदि सातम गुरुवार को रात्रि के समय तीन बजकर चैतालिस मिनट पर हमारी चरित्र-नायिका का शुभ जन्म हुआ। सारा परिवार आनन्द मनाने लगा। उत्तम

ग्रहो को देख कर दैवज्ञ ने गुण-निष्पन्न श्री सुगनकुवर नाम घोषित किया। आपका बाल्य-काल बडे आनन्द मे व्यतीत हुआ। आपके बाद माता की कुक्षि से एक बहिन और एक भाई नें फिर जन्म लिया। बहिन का नाम इन्दरबाई और भ्राता का का नाम लालचन्द रखा गया। तीनो बहिन भाई अपनी बाल-क्रीडा द्वारा दादी, माता, पिता और कुटुम्बियो को प्रमुदित करते हुए द्वितीया के चन्द्र की भाँति दिन-प्रतिदिन बढने लगे। कुटिल काल की आँखो मे सेठ गुलाबचन्द का इस प्रकार का आनन्द काँटे की तरह खटकने लगा। कवि का यह कथन सर्वथा सत्य हैं कि—

गीतिका छन्द

काल की है चाल अति-विकराल जाने कौन हैं।
सामने इसके बडे रणधीर भी तो मौन हैं॥
राव हो या रंक इस से कौन जीते जंग हैं।
अधिक क्या, इस काल से संसार सारा दंग है॥१॥

एतदर्थ अकस्मात् उस असमय मे (काल) ने अपना जाल-फांस फैलाया और हमारे चरित्र-नायिका को पिता के सुख से वंचित कर दिया।

मातुश्री ने आपको गार्हस्थ्य-धर्म की सुन्दर शिक्षा दी। आपकी इच्छा बचपन से ही उपवास, आयबिल, पौषध आदि धार्मिक-कृत्य करने मे अत्यधिक लगी रहती थी। जब आपने सोलहवें वर्ष मे प्रवेश किया तो आपके माताजी ने आपके योग्य घर वर देखकर औरंगाबाद-निवासी श्रीमान् पन्नालालजी बहुरा के सुपुत्र श्री जसराज के साथ सवत् २००१ फाल्गुन वदि नवमी

के दिन विवाह कर दिया। वर-वधू की सुन्दर जोडी को निरख कर उभय (पुत्र और कन्या) पक्ष वाले तो अति आनन्द मनाने लगे परन्तु कुटिल काल के कलेजे मे इन (वर-वधू) का उत्कर्ष त्रिशूल-सा प्रहार करने लगा, इसलिये अल्प समय मे ही उस (काल) ने सदा के लिये इनका पारस्परिक विछोह (वियोग) कर दिया, अर्थात् विवाह होने के बाद थोडे समय के ही हमारी चरित्र नायिका के पतिदेव परलोक को सिधार गये। इस दुर्घटना ने सुगनकुवर को जो दुख दिया उसका उल्लेख करना लेखनी की शक्ति के बाहर की बात है। विलपती हुई पुत्री को माता ने अनेक सतियो के सुन्दर दृष्टान्त दे देकर धैर्य बँधाना शुरु किया। सतियो के दृष्टान्तो को सुनने पर सुगनकुवर का हृदय ससार से विमुख होकर वैराग्य मे निमग्न हो गया। उसने दृढ सकल्प कर लिया निर्द्वन्द्व होकर भगवान का भजन करने के लिये अब तो अविलम्ब घर से किनारा करना अच्छा है। एतदर्थ आपने अपनी मातुश्री से कहा। माता ने पुत्री के सुन्दर विचारो का समर्थन किया। माता के समर्थन को प्राप्त कर, पश्चात् सासु और श्वसुर से निवेदन किया कि—यदि आप प्रसन्नचित्त होकर आज्ञा दे तो मैं भगवती दीक्षा धारण करू । यद्यपि सासु और श्वसुर ने आपकी उत्तम धारणा का समर्थन किया परन्तु कुछ सकुचित होकर मन्दस्वर से यो बोल उठे कि—हमारी अवस्था और दु खमय स्थिति की ओर ध्यान धर कर कुछ दिनो के लिये ठहर जाये तो अच्छा है। उत्तर मे आदरणीय सासु और श्वसुर से सविनय आप (सुकनकुवर) ने यो निवेदन किया कि—आप इस प्रकार सकुचित क्यो हो रहे हैं। सानन्द आपकी आज्ञा प्राप्त किये बिना मैं एक पैर भी इधर-उधर नही रखूँगी।

यद्यपि सासु और श्वसुर के, पुत्र वियोग से व्यथित हुए हृदय

को अपनी शुभ या अशुभ करणी द्वारा किसी प्रकार का कष्ट न पहुँचे, इस सद्भावना से प्रेरित होकर सुगनकुँवर ने अपने शरीर पर साध्वी का वेष धारण किया परन्तु अन्तःकरण में साध्वी-वृत्ति को धारण करली और सामायिक, प्रतिक्रमण, पौषध आदि धार्मिक कृत्य और आयबिल, उपवास, बेला, तेला आदि की तपश्चर्या करने में दिन बिताने लगी।

विक्रम सम्वत् २०१३ में आपके श्वसुर का और सम्वत् २०१४ में सासुजी का देहान्त हो गया। अब आप अपने ध्येय की सिद्धि करने में निमग्न हो गयी। इसी अवसर पर, नाँदेड ग्राम में श्रद्धेय तपस्वीराज श्री गणेशीलालजी महाराज (खादीवाले) के निकट भगवती दीक्षा का समारोह होने वाला था, एतदर्थ आप वहाँ गई। दीक्षा का समारोह सानन्द समाप्त होने पर आप वापिस घर को लौटती हुई जालना ठहरी। वहा पर परमपूज्य गुरुदेव पंडितरत्न श्री प्रतापमलजी म०, श्रद्धेय पं० गुरुदेव श्री हीरालालजी म० आदि विराजते थे तथा विदुषी महासती श्री हरखकुँवरजी म०, बालब्रह्मचारिणी, विदुषी सती श्री कमलावतीजी, और विद्याभिलाषिनी सती श्री शान्तिकुँवरजी आदि के दर्शन किये, एवं सादर विनती की कि—यहाँ से विहार करने के बाद औरंगाबाद पधारने की अवश्य कृपा करें।

सद्गुरु श्री हीरालालजी म० ने तो वहाँ से मद्रास की ओर विहार किया और महासतीजी म० ने औरंगाबाद की ओर विहार किया। स्पर्शनानुसार ग्रामानुग्राम विचरते हुए वैशाख वदी नवमी को महासतीजी म० औरंगाबाद पधारी वहा पर पण्डितरत्न श्री प्रतापमलजी म०, कविवर श्री हरिऋषिजी म० आदि विराजते थे उन्होंके दर्शन किये। महासतीजी म० के

के दिन विवाह कर दिया। वर-वधू की सुन्दर जोडी को निरख कर उभय (पुत्र और कन्या) पक्ष वाले तो अति आनन्द मनाने लगे परन्तु कुटिल काल के कलेजे मे इन (वर-वधू) का उत्कर्ष त्रिशूल-सा प्रहार करने लगा, इसलिये अल्प समय मे ही उस (काल) ने सदा के लिये इनका पारस्परिक विछोह (वियोग) कर दिया, अर्थात् विवाह होने के बाद थोडे समय के ही हमारी चरित्र नायिका के पतिदेव परलोक को सिधार गये। इस दुर्घटना ने सुगनकुवर को जो दुख दिया उसका उल्लेख करना लेखनी की शक्ति के बाहर की बात है। विलपती हुई पुत्री को माता ने अनेक सतियो के सुन्दर दृष्टान्त दे देकर धैर्य बँधाना शुरु किया। सतियो के दृष्टान्तो को सुनने पर सुगनकुवर का हृदय ससार से विमुख होकर वैराग्य मे निमग्न हो गया। उसने दृढ सकल्प कर लिया निर्द्वन्द्व होकर भगवान का भजन करने के लिये अब तो अविलम्ब घर से किनारा करना अच्छा है। एतदर्थ आपने अपनी मातुश्री से कहा। माता ने पुत्री के सुन्दर विचारो का समर्थन किया। माता के समर्थन को प्राप्त कर, पश्चात् सासु और श्वसुर से निवेदन किया कि—यदि आप प्रसन्नचित्त होकर आज्ञा दे तो मैं भगवती दीक्षा धारण करू। यद्यपि सासु और श्वसुर ने आपकी उत्तम धारणा का समर्थन किया परन्तु कुछ सकुचित होकर मन्दस्वर से यो बोल उठे कि—हमारी अवस्था और दु.खमय स्थिति की ओर ध्यान धर कर कुछ दिनो के लिये ठहर जाये तो अच्छा है। उत्तर मे आदरणीय सासु और श्वसुर से सविनय आप (सुकनकुवर) ने यो निवेदन किया कि—आप इस प्रकार सकुचित क्यो हो रहे हैं। सानन्द आपकी आज्ञा प्राप्त किये विना मैं एक पैर भी इधर-उधर नही रखूँगी।

यद्यपि सासु और श्वसुर के, पुत्र वियोग से व्यथित हुए हृदय

को अपनी शुभ या अशुभ करणी द्वारा किसी प्रकार का कष्ट न पहुँचे, इस सद्भावना से प्रेरित होकर सुगनकुंवर ने अपने शरीर पर साध्वी का वेष धारण किया परन्तु अन्त करण मे साध्वी-वृत्ति को धारण करली और सामायिक, प्रतिक्रमण, पौषध आदि धार्मिक कृत्य और आयविल, उपवास, बेला, तेला आदि की तपश्चर्या करने मे दिन बिताने लगी।

विक्रम सम्वत् २०१३ मे आपके श्वसुर का और सम्वत् २०१४ मे सासुजी का देहान्त हो गया। अब आप अपने ध्येय की सिद्धि करने मे निमग्न हो गयी। इसी अवसर पर, नाँदेड ग्राम मे श्रद्धेय तपस्वीराज श्री गणेशीलालजी महाराज (खादीवाले) के निकट भगवती दीक्षा का समारोह होने वाला था, एतदर्थ आप वहाँ गई। दीक्षा का समारोह सानन्द समाप्त होने पर आप वापिस घर को लौटती हुई जालना ठहरी। वहा पर परमपूज्य गुरुदेव पडितरत्न श्री प्रतापमलजी म०, श्रद्धेय प० गुरुदेव श्री हीरालालजी म० आदि विराजते थे, तथा विदुषी महासती श्री हगामकुवरजी म०, बालब्रह्मचारिणी, विदुषी सती श्री कमलावतीजी, और विद्याभिलाषिनी सती श्री शान्तिकुवरजी आदि के दर्शन किये, एव सादर विनती की कि—यहाँ से विहार करने के बाद औरगाबाद पधारने की अवश्य कृपा करें।

सद्गुरु श्री हीरालालजी म० ने तो वहाँ से मद्रास की ओर विहार किया और महासतीजी म० ने औरगाबाद की ओर विहार किया। स्पर्शनानुसार ग्रामानुग्राम विचरते हुए वैशाख वदी नवमी को महासतीजी म० औरगाबाद पधारी वहा पर पण्डितरत्न श्री प्रतापमलजी म०, कविवर श्री हरिऋषिजी म० आदि विराजते थे उन्होके दर्शन किये। महासतीजी म० के

के दिन विवाह कर दिया। वर-वधू की सुन्दर जोडी को निरख कर उभय (पुत्र और कन्या) पक्ष वाले तो अति आनन्द मनाने लगे परन्तु कुटिल काल के कलेजे मे इन (वर-वधू) का उत्कर्ष त्रिशूल-सा प्रहार करने लगा, इसलिये अल्प समय मे ही उस (काल) ने सदा के लिये इनका पारस्परिक विछोह (वियोग) कर दिया, अर्थात् विवाह होने के बाद थोडे समय के ही हमारो चरित्र नायिका के पतिदेव परलोक को सिधार गये। इस दुर्घटना ने सुगनकुवर को जो दुख दिया उसका उल्लेख करना लेखनी की शक्ति के बाहर की बात है। विलपती हुई पुत्री को माता ने अनेक सतियो के सुन्दर दृष्टान्त दे देकर धैर्य बँधाना शुरु किया। सतियो के दृष्टान्तो को सुनने पर सुगनकुवर का हृदय ससार से विमुख होकर वैराग्य मे निमग्न हो गया। उसने दृढ सकल्प कर लिया निर्द्वन्द्व होकर भगवान का भजन करने के लिये अब तो अविलम्ब घर से किनारा करना अच्छा है। एतदर्थ आपने अपनी मातुश्री से कहा। माता ने पुत्री के सुन्दर विचारो का समर्थन किया। माता के समर्थन को प्राप्त कर, पश्चात् सासु और श्वसुर से निवेदन किया कि—यदि आप प्रसन्नचित्त होकर आज्ञा दे तो मैं भगवती दीक्षा धारण करू"। यद्यपि सासु और श्वसुर ने आपकी उत्तम धारणा का समर्थन किया परन्तु कुछ सकुचित होकर मन्दस्वर से यो बोल उठे कि—हमारी अवस्था और दु खमय स्थिति की ओर ध्यान धर कर कुछ दिनो के लिये ठहर जाये तो अच्छा है। उत्तर मे आदरणीय सासु और श्वसुर से सविनय आप (सुकनकुवर) ने यो निवेदन किया कि—आप इस प्रकार सकुचित क्यो हा रहे हैं। सानन्द आपकी आज्ञा प्राप्त किये विना मैं एक पैर भी इधर-उधर नही रखूँगी।

यद्यपि सासु और श्वसुर के, पुत्र वियोग से व्यथित हुए हृदय

को अपनी शुभ या अशुभ करणी द्वारा किसी प्रकार का कष्ट न पहुँचे, इस सद्भावना से प्रेरित होकर सुगनकुंवर ने अपने शरीर पर साध्वी का वेष धारण किया परन्तु अन्तःकरण मे साध्वी-वृत्ति को धारण करली और सामायिक, प्रतिक्रमण, पौषध आदि धार्मिक कृत्य और आयविल, उपवास, बेला, तेला आदि की तपश्चर्या करने मे दिन बिताने लगी।

विक्रम सम्वत् २०१३ मे आपके श्वसुर का और सम्वत् २०१४ मे सासुजी का देहान्त हो गया। अब आप अपने ध्येय की सिद्धि करने मे निमग्न हो गयी। इसी अवसर पर, नांदेड ग्राम मे श्रद्धेय तपस्वीराज श्री गणेशीलालजी महाराज (खादीवाले) के निकट भगवती दीक्षा का समारोह होने वाला था, एतदर्थ आप वहाँ गई। दीक्षा का समारोह सानन्द समाप्त होने पर आप वापिस घर को लौटती हुई जालना ठहरी। वहा पर परमपूज्य गुरुदेव पडितरत्न श्री प्रतापमलजी म०, श्रद्धेय प० गुरुदेव श्री हीरालालजी म० आदि विराजते थे, तथा विदुषी महासती श्री हगामकवरजी म०, बालब्रह्मचारिणी, विदुषी सती श्री कमलावतीजी, और विद्याभिलाषिनो सती श्री शान्तिकुवरजी आदि के दर्शन किये, एव सादर विनती की कि—यहाँ से विहार करने के बाद औरगाबाद पधारने की अवश्य कृपा करे।

सद्गुरु श्री हीरालालजी म० ने तो वहाँ से मद्रास की-ओर विहार किया और महासतीजी म० ने औरगाबाद की ओर विहार किया। स्पर्शनानुसार ग्रामानुग्राम विचरते हुए वैशाख वदी नवमी को महासतीजी म० औरगाबाद पधारी वहा पर पण्डितरत्न श्री प्रतापमलजी म०, कविवर श्री हरिऋषिजी म० आदि विराजते थे उन्होके दर्शन किये। महासतीजी म० के

दर्शन कर बाई सुगनकुंवर बहुत प्रसन्न हुई। मध्याह्न मे महासतीजी म० ने गुरुदेव श्री प्रतापमलजी म० का आदेश प्राप्त कर तथा बायो और भायो का अति आग्रह देखकर चौपी वाचनी शुरू की। आपकी अद्भुत व्याख्यान-शैली ने श्रोताओ के मन को मुग्ध कर दिया। जन-जन के मुख से निकले हुए धन्य-धन्य के वचनो का प्रभाव सारे औरगाबाद मे पसर गया। हजारो की सख्या मे चौपी सुनने के लिए भायो और बायो की उपस्थिति होने लगी। गुरुप्रदत्त सयम और ज्ञान का इस प्रकार अलौकिक प्रभाव देखकर गुरुणीजी के पदपकजो मे बाई सुगनकुवर ने अपना ध्येय प्रकट किया। सुगनकुवर के कहे हुए—वचनो को प्रेम-प्रलाप समझ कर उस पर महासतीजी ने अधिक ध्यान नही दिया और १२ दिन ठहरकर वहा से विहार कर दिया। नगर, घोडनदी आदि अनेक शहरो और ग्रामो मे विचरते हुए चातुर्मास करने के लिये उपाध्याय श्री प्यारचन्द्रजी म० की सेवा मे पूने पधारी।

उसी वर्ष, सौभाग्यवश औरगाबाद मे पडितरत्न, प्रवर्त्तक श्री मगनमलजी म० और साहित्यरत्न, अवधानी श्री अशोक मुनिजी म० आदि ठाणा ५ का चातुर्मास हुआ। तथा विदुषी महासती श्री केसरकुवरजी ठाणा ४ का चातुर्मास भी वहा पर ही हुआ। हमारी चरित्र नायिका के वैराग्य अकुर को गुरुदेव के उपदेशामृत का सुन्दर सिचन मिलने पर वह विकसित होता हुआ अपना अपना स्व (वृक्ष) रूप धारण किया। परिणाम इसके आपने इसी चातुर्मास मे पन्द्रह दिनो की घोर-तपस्या की और बेले-बेले का एकान्तर करके परिवार से दीक्षा लेने के लिये साग्रह आज्ञा मागी। परन्तु आपके ज्येठ श्री चादमलजी बहुरा ने दीक्षा लेने की आज्ञा देने मे इनकार किया, तथा आपके

माताजी और मामाजी को बुलाया। यद्यपि माताजी ने तो आपके ध्येय का अनुमोदन ही किया परन्तु मामाजी ने आपके जेठ श्री चाँदमलजी का पक्ष लेकर उक्त अति उत्तम कार्य का घोर विरोध किया। उन्होने विविध भाँति के सासारिक प्रलोभन और सयमी जीवन मे उठाने वाली आपदाओ का दृष्टान्त देकर आपको अपने ध्येय से डिगाने काप्रयत्न किया, परन्तु आप–

निन्दतु नीति निपुण यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मी समाविशतु गच्छतु वा यथेष्ठम् ॥
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरेवा,
न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पद न धीराः ॥१॥

इस सूक्ति के आदेशानुसार अपने ध्येय से तनिक भी नही डिगी। तव मामाजी तथा जेठजी ने सोचा कि स्त्रियो का हार्दिक प्रेम दागीना (भूषणो) पर प्राय अधिक रहता है। इसलिये उन्हो (मामाजी) ने आपके निकट अनुमान के डेढ सौ तोला सोने का दागीना था उसके लिये कहा कि तुम्हारे पास जो दागीना है वह लाओ, हमे देदो। उन्हो की यह धारणा थी कि दागीने के प्रेम-वन्धन मे वध कर यदि यह उसको देने मे इन्कार कर दे तो इसके उत्तम कार्य करने मे वाधक वनने का जो कर्म वन्धन मेरे को हो रहा है वह नही होने पायेगा। परन्तु उनकी धारणा उनके हृदय मे ही धरी रही। कारण कि यहाँ तो हृदय पटल पर अलमस्त फकीरी का वह आलीजा अमिट किरमचीरग चढा हुआ था, जिसका कि वर्णन गोस्वामी श्री तुलसीदास ने अपने शब्दो मे यो किया है—

॥ दोहा ॥

एक टूक कौपीन की, अरु भाजी विन लौन ॥
"तुलसी" एतो जो मिले (तो) इन्द्र वापुरो कौन ॥१॥

इसलिये मामाजी तथा जेठजी के मुख से दागीना देने की बात को सुनते ही आप तुरन्त चाबिये उन्हे सौंप कर यो बोली कि यह आपका दागीना सँभाल लीजिए और कृपा करके अब मुझे दीक्षा लेने की आज्ञा दीजिए। ऐसा करने पर भी जब आपको आज्ञा नही मिली तो आपने अपने भाई श्री लालचन्दजी (जो कि उस समय पूना (नगर) मे थे) को सूचना दी कि मुझे एक वेर मेरे गुरुणीजी के दर्शन करादे और दीक्षा दिलाने मे सहयोग दो।

साहित्य तत्व महोदधि, उपाध्याय श्री प्यारचन्द्रजी म० का तथा हमारी चरित्र नायिका के गुरणी जी का चातुर्मास उस समय पूने मे ही था और आपके भ्राता श्री लालचदजी उपाध्याय श्री के पासपरं भक्त थे इसलिये उन्होनें आई हुई बहिन की सूचना का उपाध्याय श्री के निकट जिक्र किया। उपाध्याय श्री ने सयमार्थ प्रोत्साहित हुए व्यक्ति को सहयोग देने वाले प्राणी के कर्मों की निर्जरा होने का जो वर्णन शास्त्रो में किया गया है वह भाई श्री लालचन्दजी को समझाया। उपाध्याय श्री के दिये हुए सदुपदेश को सादर हृदय से स्वीकार कर भाई श्री लालचन्दजी अपनी बहिन को पूना ले आने के लिये औरंगाबाद आये।

इधर हमारी चरित्र नायिका को उनके जेठ ने अपनी भूवा के यहां खामगांव भेज दी। भूवा सासु ने भी आपको अपने ध्येय से विचलित करने के लिये विविध भाति के प्रयत्न किये परन्तु आप (सुगन कुंवर) अपने ध्येय से विचलित नही हुई। प्रत्युत. आपने उनके सम्मुख यह कठोर प्रण धारण किया कि जब तक मुझे अपने गुरुणी के दर्शन नही होंगे तब तक

मैं दूध और मिठाई आदि मादक पदार्थों का सेवन नही करु गी। ऐसा दृढ सकल्प करने के साथ वहाँ (भूवा सासु के यहा) रहते हुए भी आयबिल व्रत, उपवास, बेला तेला आदि धार्मिक क्रिया (कृत्य) करती रही।

आपके भ्राता श्री लालचन्दजी पूना से खमागाम गये। वहाँ से बहिन सुगनकुँवर को साथ लेकर तोडापुर आदि ग्रामो मे होते हुए पूना आए। अपनी प्रतिज्ञा का पालन करती हुई सुगनकुँवर ने वहा आकर, सद्गुरु एव गुरुणीजी के दर्शन करके ही दूध पिया तथा मीठाई खाई।

उपाध्यायश्री के दिये हुए सच्चिदानन्द मय सयम के सदुपदेश से प्रभावित होकर सुगनकुवर की माता और भ्राता ने उन्हें गुरुणी की सेवा मे साथ साथ रहने की आज्ञा दे दी। माता और भ्राता की आज्ञा पाकर सुगनकुँवर अपने गुरुणीजी की सेवा मे रहने लगी और ज्ञान-ध्यान की अभिवृद्धि करने लगी। चातुर्मास समाप्त होने पर कुछ आवश्यकीय कार्य के लिये सुगन कुवर तो तोडापुर गई और महासतीजी महाराज ने पूना से विहार कर स्पर्शनानुसार अनेक छोटे वडे ग्रामो और शहरो मे विचरकर धर्मोद्योत करते हुए नाशिक पधारी। वहाँ से महासती जी म० इगतपुरी पधारी। वहां पर अपने भ्राता श्री लालचन्दजी को साथ लेकर हमारी चरित्र नायिका वापिस अपने गुरुणीजी की सेवा मे उपस्थित हो गई। तदनन्तर मु बई तक अपने गुरुणीजी की सेवा मे ही साथ साथ रही। करीव इन वारह तेरह महीनो के समय तक गुरुणीजी के साथ रहते हुए आपने तेला, पचोला, अट्ठाई और नौ आदि की तपस्याए की तथा ३०-३५ थोकडे, दशवैकालिक, सुखविपाक, नमीराय,

वीरस्तुति आदि को याद कर लिये। इसके अलावा हिन्दी व्याकरण का भी अच्छा अभ्यास कर लिया।

पडित प्रवर श्रद्धेय स्वामी श्री नानचन्द्र जी म० पडितरत्न श्री प्रतापमल जी म० आदि मुनिवर उस समय मुबई घाट को पर विराजते थे, उनके दर्शन करने के लिये वैरागिन सुगन-कुवर भी आई। इसी अवसर पर सुगनकुवर के माता और भ्राता सद्‌गुरु के दर्शनार्थ मुवई घाटकोपर आये और सुगन-कुँवर के बढे चढे वैराग्य भाव को विलोक कर, सहर्ष दीक्षा लेने के लिये आज्ञा पत्र लिख दिया तथा दैवज्ञो के द्वारा शुभ मुहूर्त दिखला कर तिथि और समय तथा क्षेत्र की घोषणा करके यत्र तत्र अपने स्वजन और सगे सबधियो को शुभ सूचना भेज दी। सूचना को पाकर हमारे चरित्र नायिका के जेठ श्री चाँदमल जी और मिश्रीमल जी आदि पाँच सात सज्जन औरगावाद से इगतपुरी आये और सघ के समक्ष यो बोले कि हम दीक्षा दिलवाने मे सहमत है परन्तु स्थान का विरोध है। तव महासती श्री केसरकुँवरजी म० ने इगतपुरी के श्रावक-सघ को कहा कि आपकी इच्छा के प्रतिकूल इनका स्थान के लिये विरोध है, और मैं कारणवश अब अन्यत्र कही दूर नही जा सकती। महासतीजी के वचनो को सुनकर, उदारमना इगतपुरी के सघ ने श्री चाँदमलजी आदि सज्जनो से परामर्श करके दीक्षा के लिये स्थान वाडावाडा निश्चित किया।

अव आप स्वय सुगनकुवर, परपरा प्रचलित प्रथा के अनु-सार अपने परिवार को दीक्षा का आमन्त्रण देने के लिये गई। आमन्त्रण को स्वीकार कर आपके मामा, माता, भ्राता आदि प्राय सभी सज्जन दीक्षोत्सव में सम्मिलित हुए। इसके अलावा नासिक, इगतपुरी सङ्गमनेरी, हिगनघाट, सेरी, खेतिया, तोडापुर

आदि अनेक ग्रामो और शहरो के धर्म-प्रेमी नर-नारी और दीक्षोत्सव मे सम्मिलित हुए।

दीक्षोत्सव मे महती कृपा करके पूज्यपाद सद्गुरु श्री प्रताप मलजी म०, श्रद्धेय प० मुनि श्री कल्याण ऋषिजी म०, पडित-वर्य मुनिजी श्री मुलतान ऋषिजी म० आदि ठाणा नौ और विदुषी महासती श्री केसर कुँवर जी म०, परम पूज्य माता महासती श्री हगाम कुवरजी म०, बालब्रह्म चारिणी सती श्री कमलावती जी म० आदि ठाणा सात, जुमले ठाणा १६ पधारे। पूज्यपाद श्रद्धेय सदुरु श्री प्रतापमल जी महाराज के मुखारविन्द से हमारी चरित्र नायिका ने " करोमि भते " का पाठ पढा और विदुषी महासती श्री केसर कुवरजी म० के कर कमलो से आपका केश लोचन हुआ। पडित रत्न श्री कल्याण ऋषिजी म० ने बालब्रह्म चारिणी, विदुषी महासती श्री कमलावती जी की नेश्राय मे आपको घोपित किया। बालब्रह्मचारिणी श्री कमलावती जी की जन्म भूमि रत्नपुरी (रतलाम) है। आपने अपने माता श्री के साथ केवल आठ वर्ष की आयु में ही विदुषी महासती श्री साकर कँवरजी (जो कि ससारावस्था में पूज्यपाद, शास्त्र विशारद, आचार्य श्री खूबचन्द्रजी महाराज की अर्द्धाङ्गिनी थी) की व श्री रुपकुवर जी म० सा० तथा केसर कुवरजी म० सा० की सेवामे रह कर ज्ञानाभ्यास व सयम धारण किया। जिस प्रकार आप पर आपके गुरुणीजी वात्सल्य भाव रखती थी उसी प्रकार आप भी अपनी शिष्याओ पर वात्सल्य भाव रखती हैं। शास्त्रो का अभ्यास आपको अति उत्तम हैं। व्याख्यान शैली भी आपकी अनोखी है। "वशीकरण यह यन्त्र है, परिहर वचन कठोर" इस सूक्ति के आदेशानुसार वाणी मे आपके इतनी मधुरता है कि जहा पर

आप जाती हैं वहाँ की जनता आपके सदुपदेशो को सुनकर मन्त्र मुग्ध सी बन जाती है। ऐसी महान् तेजस्विनी गुरुणी को पाकर श्री सुगन कुंवर के हृदय मे अपार हर्ष हुआ।

दीक्षोत्सव सानन्द सपन्न होने पर महासती जी म० वहाँ से विहार कर के नाशिक पधारी और सुगनकुवर को छजीवनिकाय पाठ महासती श्री केसर कूंवरजी ने सुनाकर वहाँ पर बडी दीक्षा दी। तदनन्तर वहाँ से विहार करके अपने गुरुणीजी म० और गुरुणीजी के माताजी म०, तथा वडी गुरु बहिन श्री शान्ता कुमारी जी आदि ठाणा चार, चाँदवड, धूलिया आदि क्षेत्रो को स्पर्शते हुए अजड पधारी। वहाँ पर भगवान श्री महावीर स्वामी की जन्म-जयन्ती, जैन, वैष्णव और मुस्लिम भाईयो ने सम्मिलित हो कर बडे समारोह के साथ मनाई तथा हनुमज्जयति भी मनाई। इस शुभ अवसर पर कई बन्धुओ ने अपनी अपनी शक्ति के अनुसार दुर्व्यसनो का त्याग किया और प्रतिवर्ष इसी भाति उक्त महोत्सव मनाने का दृढ प्रण किया जो अद्यावधि प्रचलित है। प्रायः राज्य के सभी उच्च पदाधिकारी और नगर के गण-मान्य सेठ साहूकार इस महोत्सव मे उपस्थित थे।

वहाँ से विहार कर हमारी चरित्र नायिका अपने गुरुणीजी के साथ साथ रत्नपुरी (रतलाम) पधारी और वयोवृद्ध, दैवज्ञ शिरोमणि श्रद्धेय सद्गुरु श्री कस्तूर चन्दजी म० आदि मुनिराजो के दर्शन किये। वहाँ पर ही अपने यहाँ महासती जी का चातुर्मास कराने की सद्भावना से उल्लसित हुए अनेक ग्रामो और शहरो के भावुक भक्त आये। गुरुदेव श्री ने कोटा सघ का अति आग्रह देख कर उनकी विनती स्वीकार करली और महासतीजी को कोटा चातुर्मास करने की आज्ञा देदी। गुरुदेव

की आज्ञा को शिरोधार्य कर ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष मे हमारी चरित्र नायिका ने अपनी गुरणी के साथ कोटा की तरफ विहार किया। अनेक छोटे बड़े ग्रामो को स्पर्शते हुए आषाढ शुक्ला त्रयोदशी को स्वागतार्थ सम्मुख आये हुए हजारो नर–नारियो के साथ चातुर्मासार्थ कोटा नगर मे महासतीजी ने प्रवेश किया। स्थानक मे पहुचने पर विदुषी महासती श्री कमलावतीजी ने मगल–मय भगवान् श्री शान्तिनाथ की स्तुति की। महासतीजी की मधुर–वाणी को सुनकर उपस्थित सभी भाई और बहिन बड़े प्रसन्न हुये। तदनन्तर प्रात व्याख्यान और मध्याह्न मे चौपई वाचना प्रारम्भ किया। चित्ताकर्षक आपके व्याख्यानो की प्रभा द्वितीया के चन्द्र–कला की भाति शनै शनै वढती हुई सारे कोटा शहर मे प्रसर गई, एतदर्थ श्रोताओ की उपस्थिति दिन–प्रतिदिन वढती हुई हजारो को सख्या मे होने लगी। जिन श्रोताओ ने आपके सदुपदेश को एकवार सुन लिया वे तो मानहु मन्त्र–मुग्ध से बने हुए प्रतिदिन आये विना रह ही नही सकते थे। इस चातुर्मास मे महासती श्री कोयलकुवरजी ने पन्द्रह उपवासो की घोर तपस्या तथा पचोला आदि की तपस्याएँ भी की और हमारी चरित्र–नायिका ने तेरह दिनो की घोर तपस्या एवं ओली तप का आराधन किया। धर्म–प्रेमी भायो और बायो (बहिनो) ने भी अपनी अपनी शक्ति के अनुसार वेले, तेले, पचोले और अट्ठाइये आदि की तपस्याएँ की। महासतियोजी के तपस्याओ की पूर्ति पर त्याग–प्रत्याख्यान, अभयदान आदि अनेक धार्मिक–कृत्य हुए। जोधपुर निवासी सेशन जज श्री सोहननाथजी मोदी ने भी अपने सह–परिवार के महासतीजी के दर्शन, व्याख्यान–श्रवण और धर्म–ध्यान करने का सुन्दर लाभ लिया।

कोटा नगर का चातुर्मास सानन्द समाप्त कर हमारी चरित्र नायिका ने अपनी गुरणीजी के साथ-साथ वहाँ से विहार किया और भयावने जगलो मे अनेक घोर परीषहो को सहन करते हुए चम्बल-डेम (गाधी सागर) पधारी। वहा से मध्य-पहाडो में आये हुए अनेक ग्रामो को स्पर्शते हुए रामपुरा पधारी। वहा विराजित दैवज्ञशिरोमणि, पण्डितराज, श्रद्धेय स्वामीजी श्री किस्तूरचन्दजी म० आदि मुनिवरो के दर्शन किये। कुछ दिन स्वामीजी की सेवा करके वहां से विहार किया और कुण्डलिया नामक ग्राम मे आकर रात्रि का विश्राम लिया। प्रात. काल होते ही वहा से आपने विहार किया तो रास्ते मे एक गोबरिया नाम का डाकू (लुटेरा) मिला, वह बहुत समय तक महासतियो की ओर अनिमेष दृष्टि से क्रूर--भावो के साथ देखता रहा किन्तु देव-गुरु और धर्म के प्रताप से वह स्थभ-सा ज्यो खडा था त्यो ही खडा रहा और महासतियोजी महाराज सानन्द विहार करते हुए मनासा पहुँची। कुछ दिन महासतीजी के वहा विराजने पर तपश्चर्या धर्मध्यान आदि द्वारा शासन का उद्योत अच्छा हुआ। वहा से विहार करके भाटखेडी, नीमच, मन्दसौर आदि कई छोटे-मोटे ग्रामो को स्पर्शते हुए रतलाम पधारी। रतलाम मे विराजित आपके गुरणीजी विदुषी महासती श्री केसरकुवरजी म० के दर्शन किये और वही पर हमारी चरित्र-नायिका ने ओली-तप किया। वहा से वैशाख वदि तेरस को विहार कर ठाणा ७ से जावरा पधारी। ावरा मे वैराग्यवती पुष्पा बाई जो कि ढाई साल से वैराग्य की साधना मे तल्लीन थी उसको दीक्षा देने के लिये आक्यावाले श्री रतनलालजी ने जावरा श्री सघ के सामने महासतीजी म० की सेवा मे साग्रह विनति की। जावरा सघ ने श्री रतनलालजी का अधिक आग्रह देखा तो वैरागिन श्री पुष्पा बाई की परीक्षा ली। परीक्षा में उत्तीर्ण

हुई वैरागिन को विलोक कर तथा आज्ञा-पत्रादि यथा-नियम लिखे हुए देखकर दीक्षा की परवानगी दे दी। दीक्षोत्सव मे पधारने के लिये दे० शि०, श्रद्धेय सद्गुरू श्री किस्तूरचन्द्रजी म०, पडितप्रवर श्री प्रतापमलजी म०, कवि श्री केवलचन्दजी म० आदि की सेवा मे श्री सघ ने साग्रह विनति की। दीक्षा का मुहूर्त्त अति नजदीक होने के कारण पूज्यपाद वयोवृद्ध श्री किस्तूरचन्दजी म० तो नही पधार सके और पडितरत्न श्री प्रतापमलजी म०, श्री भेरूलालजी म०, श्री इन्द्रमलजी म०, श्री छोटे हीरालालजी म० पधारे। वैशाख शुक्ला अष्टमी सोमवार को सुबह नौ बजे हजारो भाई-बहिनो की उपस्थिति मे दीक्षा-महोत्सव सानन्द सम्पन्न हुआ।

ततपश्चात् वर्षावास करने के लिये अनेक ग्रामो एव शहरो की विनती होने पर भी माताजी महाराज का स्वाथ्य ठीक नही होने की वजह से आपका चातुर्मास जावरा ही हुआ। इस चातुर्मास मे भी हमारी चरित्र नायिकाजी ने अट्ठाई ओली, तेले आदि का तप किया। धर्म-प्रेमी श्रावक, श्राविकाओ ने भी चातुर्मास मे व्रत, नियम त्याग-प्रत्याख्यान आदि धर्मध्यान करके गुरू-भक्ति का परिचय अच्छा दिया।

जावरा का चातुर्मास सानन्द समाप्त करके आपने विहार किया और अनेक ग्रामो एव शहरो को स्पर्शते हुए खाचरोद पधारी। वहाँ (खाचरोद मे) विराजित वयोवृद्ध, पूज्यपाद श्री किस्तूर चन्दजी महाराज, साहित्यरत्न, अवधानी, कवि श्री अशोक मुनिजी महाराज आदि सन्त महात्माओ के दर्शन किये। कुछ दिन गुरुदेव की सेवा करके वापिस जावरा को पधारी। वहाँ पर आपने अष्ट-ग्रहो की क्रूर-दृष्टि का दमन करने के लिये तेले का तप किया। तदनन्तर वहाँ से विहार कर के

मन्दसोर, सादडी, चित्तौडगढ़, देवगढ आदि छोटे मोटे ग्रामो मे विचरते हुए ब्यावर पधारी। ब्यावर के श्रावक-सघ ने वर्षावास ब्यावर मे करने के लिये अति आग्रह के साथ विनति की। गुरुदेव और गुराणीजी के आदेश का आगार रख कर हमारी चरित्र-नायिका के गुराणीजी ने विनति स्वीकार की। वहा से विहार कर, प्रवर्त्तक श्री किस्तूर चन्दजी महाराज और शास्त्रज्ञ, श्रद्धेय मन्त्री श्री पन्नालालजी महाराज के दर्शनार्थ विजय नगर पधारी और वही विराजित महासतीजी श्री जयन्तसतीजी के दर्शन किये। वहाँ से वापिस विहार करके अनेक छोटे मोटे ग्रामो को स्पर्शते हुए आषाढ वदि छट्ठ को चातुमासार्थ ब्यावर पधारी।

इसी वर्ष ब्यावर-सघ की भाव-भरी विनति को मान देकर, साहित्य रत्न, अवधानी, कवि श्री अशोक मुनिजी महाराज भी चातुर्मास करने के लिये ब्यावर पधारे। अवधानीजी म० ने हमारी चरित्र-नायिका को फरमाया कि—तुमने वैराग्यावस्था मे भी हमारे चातुर्मास मे पन्द्रह दिनो की वृहद् तपस्या की, तो अब बतलाओ कि—इस चातुर्मास मे कितनी बडी तपस्या करोगी। उत्तर मे हमारी चरित्र-नायिका ने निवेदन किया कि इस चातुर्मास मे ३१ दिनो की तपस्या करने का भाव है इसलिये आज ही आप कृपा कर के पचोला तो पचखा दे इस प्रकार दिन प्रतिदिन तपस्या को बढाते हुए इकतीस दिन पूरे हुए। तपस्या की पूर्ति के दिन श्री कृष्ण जन्माष्टमी का था। उस अवसर पर आपके भाई, बहिन तथा अन्य अनेक ग्रामो के धर्मानुरागी श्रावक, श्राविकाओ की उपस्थिति बहुत बडी सख्या मे थी। इसके अलावा नगर के गण-मान्य महानुभावो ने भी आकर तपोत्सव के आनन्द का अनुभव किया।

तप की पूर्ति के दिन भावुक-भक्तो ने कई खध, जीवो को अभय दान, त्याग, सामायिक प्रतिदिन करने का नियम आदि अनेक धार्मिक-कृत्य किये। तपस्या का पारणा सानन्द हुआ।

व्यावर का चतुर्मास सानन्द समाप्त कर हमारी चरित्र-नायिकाजी ने अपने गुरूणीजी के साथ विहार किया। विहार का जुलूस देखने योग्य था। वहाँ से आप अजमेर, विजयनगर आदि होती हुई मध्यप्रदेश मे पधारी और चैत्र वदि पचमी को जावरा पधार कर श्रद्धेय गुरूणीजी श्री केसरकुवरजी के दर्शन किये। वही पर मधुरवक्ता प्रवर्त्तक श्री मगनमलजी म० ठाणा १२ से विराजते थे, उन्होके दर्शन का लाभ लिया। मुनिराजो मे पचोले, अट्ठाईये आदि का तप चलता था।, इस बात की जानकारी जब हमारी चरित्र-नायिका को हुई तो आपने भी छ उपवासो की तपस्या की। तत्पश्चात् अपने गुरुणीजी के साथ साथ रतलाम दीक्षा-महोत्सव पर पधारी। वहाँ पर प्रवर्त्तक श्री मगनमलजी म०, श्री प्रतापमलजी म० मत्री श्री हीरालालजी म० विराजमान थे उनके शुभ दर्शनो का लाभ लिया। दीक्षा-महोत्सव सानन्द बडे समारोह के साथ सपन्न होने पर वापिस जावरा की ओर विहार किया। चातुर्मास के लिये रतलाम, ताल आदि कई शहरो एव ग्रामो के श्रावक भाव- भरी विनती करने आये, किन्तु महासतीजी श्री केसरकुवरजी म० का शरीर आरोग्य नही रहने के कारण उन्होने फरमाया कि इस वर्ष का चातुर्मास मेरे निकट ही तुम्हे करना होगा। वड़े गुरुणीजी श्री केशरकुँवरजी के ऐसा फरमाने पर हमारी चरित्र-नायिका तथा आपके गुरुणीजी महाराज ने वडो की आज्ञा और सेवा को महत्व देकर वर्षावास जावरा मे ही किया। इसी वर्ष जावरा सघ की अत्याग्रह-पूर्ण विनती को स्वीकार कर मा० र०,

अवधानी, कवि श्री अशोकमुनिजी म० का भी यही पर चातुर्मास हुआ। हमारी चरित्र-नायिका ने इस चातुर्मास मे ४७ घोर तपस्या का आरभ श्रावण मास मे किया। तपस्या करते जब इगतीसवा दिन हुआ तब आपकी तबियत खराब हो गई तो पारणा कर लेने के लिये प० श्री अशोकमुनिजी म० ने तथा आपके गुरूणीजी ने बहुत कहा, परन्तु आपने अपनी धारणा को विचलित नही किया। तपस्या-पूर्ति का दिवस ग्यारस गुरुवार को मनाया गया। अनेक शहर और ग्रामो के श्रावक श्राविकाएँ तपस्विनीजी के दर्शन करने के लिए तपोत्सव पर आये। उस दिन कत्लखाना बन्द रखा गया।जैनी बन्धुओ ने अपना व्यवसाय बन्द रखा। सात शील-व्रत के खंध हुए। पाच खध चौविहार के हुए। अभयदान के कोष मे बडी वृद्धि हुई। कई बन्धुओ ने प्रतिदिन एक सामायिक करने की प्रतिज्ञाएँ ली। दया पौषध वडी सख्या मे हुए। कई बन्धुओ ने भाग, मदिरा, बीडी, तम्बाकू पीने का त्याग किया। जावरा सघ ने तप-महोत्सव मनाने का सुन्दर लाभ, तन-मन और धन से लिया।

तप के तेज से महासतीजी के मुह मे छाले हो गये। जिसकी पीडा से उनका शरीर अस्वस्थ हो गया। उपचार करने पर कुछ दिनो के बाद पीडा शान्त हो गई। सानन्द चातुर्माम समाप्त होने पर गुराणीजी के साथ ग्रामानुग्राम विचरती हुई आप रतलाम छ ठाणे गई। वहाँ विराजित आचार्य सम्राट व मालव-केशरी श्री सम्पतमल जी महाराज श्री मगनलालजी महाराज साहब, तरुण-तपस्वी श्री लाभचन्द जी महाराज आदि मुनिवरो के दर्शन का लाभ लिया। वहाँ से विहार कर वापिस जावरा पधारी। कुछ दिन बडे [illegible]णीजी की सेवा का लाभ फिर लिया। पश्चात् उनकी

आज्ञा प्राप्त कर गुराणीजी के साथ अजमेर सम्मेलन की ओर विहार किया। नीमच, निम्बाहेडा, चित्तौडगढ, भीलवाडा, हमीरगढ आदि क्षेत्रो को स्पर्शते हुए विजयनगर पधारी। वहाँ पर आचार्य सम्राट, मन्त्री श्री पुष्कर मुनिजी महाराज, मन्त्री श्री अम्बालालजी महाराज, तरुण-तपस्वी श्री लाभचन्दजी महाराज आदि सन्त-महात्माओ के तथा विदुषी महासतीजी श्री सोहनकुँवरजी, वि० महाराज श्री वल्लभकुंवरजी महाराज आदि महासतियो व महासती जसकुंवरजी के दर्शनो का लाभ लिया और वहाँ से ठाणा बावीस के साथ बडे प्रेम-पूर्वक विहार करते हुए ब्यावर पधारी। रास्ते मे महासती श्री गुलाबकुँवर जी महाराज के घुटनो मे तकलीफ हो जाने के कारण वे चलने मे अशक्त हो गयी। अत उन्हे बारी-बारी से सभी सतियो ने उठाने का सहयोग देकर ब्यावर लायी। वहाँ पर पूज्यपाद, दैवज्ञ-शिरोमणि श्री किस्तूरचन्दजी महाराज, आचार्य सम्राट् शास्त्रज्ञ, मन्त्री श्री हीरालालजी महाराज, तरुण-तपस्वी श्री लाभचन्दजी महाराज आदि मुनि-महात्मा विराजते थे। उनके दर्शनो का लाभ लिया। कई दिनो तक वहाँ पर विराजी। पश्चात् जब अजमेर सम्मेलन मे जाने के लिये विहार करने लगी। तब महासती श्री वल्लभकुवरजी महाराज से हमारी चरित्र-नायिका के गुराणीजी श्री कमलावतीजी महाराज और विदुषी महासती श्री जसकुवरजी महाराज ने निवेदन किया कि सम्मेलन मे पधारने के लिये आपकी क्या इच्छा है। तब श्री वल्लभकुंवरजी महाराज ने फरमाया कि—महासती श्री गुलाब-कुंवरजी महाराज के पैरो मे पीडा है, जिसे आप जानती ही हैं कि—अभी विजयनगर से ब्यावर आते समय रास्ते मे सभी सतियो को कितना भयकर कष्ट उठाना पडा। इन (सतीजी) से बिलकुल ही चला नही जाता। ऐसी स्थिति मे मैं सम्मेलन

में कैसे चल सकती हूं। उत्तर में पूर्वोक्त दोनो महासतियो ने निवेदन किया कि—इसका विचार आप क्यो करती हैं। क्या हम आपकी नही हैं। शरीर व्याधि से ग्रसित है, समय मिलने पर यह सब को सताया ही करती है और उस समय ही अपने और पराये की पहिचान होती है। व्यावहारिक दृष्टि से कवि का यह कथन कितना सुन्दर है कि—

विपति बराबर सुख नहीं, जो थोडे दिन होय।
इष्ट, मित्र अरु बन्धु–जन, जान परे सब कोय ॥१॥

एतदर्थ आप इस बात का विचार न करें। जिस प्रकार रास्ते मे से व्यावर तक लायी गयी, उसी प्रकार व्यावर से अजमेर तक ले चलेगी। और वहा पर ही आपका इलाज भी करवा लिया जायेगा। परन्तु सौभाग्यवश प्राप्त हुए ऐसे अनमोल अवसर का आनन्द अवश्य लेना चाहिये। यही हमारी करबद्ध हो आपसे प्राथना है। विदुषी महासती श्री वल्लभ कुवरजी महाराज ने उक्त दोनो महासतियो की प्रार्थना को मान लीया और ठाणा २२ से विहार किया। हमारी चरित्र–नायिका श्री सुगनकुवरजी महाराज ने व्यावर से विहार करते समय ही सब महासतियो के सामने अपना यह सेवा–मयी–भाव प्रकट कर दिया कि प्रतिदिन दो माईल तक श्री गुलाबकुंवरजी महाराज को उठाकर ले चलने का सेवा–कार्य मैं करूंगी। आपके हृदय मे सेवा–धर्म का सचार अच्छा था। "सेवा–धर्म परम–गहनो योगिनामप्यगम्यः"। इस सूक्ति के सुन्दर रहस्य को आपने अपनी गुराणीजी से लिल–भांति समझ लिया था एतदर्थ आप धार्मिक–सेवा–कार्य मे सदा तल्लीन रहा करती थी। चाहे उन्हे कितना भी कठिन विहार क्यो न किया हो। विश्राम

स्थान पर आते ही आहार–पानी की गवेषणा के लिये आप सब सतियो से अगुआ तैयार रहती थी।

ब्यावर से विहार कर ग्रामानुग्राम विचरते हुए ठाणा २२ से सानन्द अजमेर पधारी। अजमेर सघ ने आप सभी का भव्य स्वागत किया और वहाँ पर विराजमान पूज्यपाद आचार्य-सम्राट् व मन्त्री-मण्डल उपाध्याय श्री आदि सन्तो के एवम् विदुषी महासती श्री सोहनकुवरजी, श्री बालकवरजी, श्री सुमतिकुँवर जी आदि अनेक विदुषी महासतियो के दर्शनो का लाभ लिया। वहाँ पर फाल्गुन शुक्ला तृतीया को श्री वर्द्धमान चन्दनबाला श्रमणी सघ की स्थापना बडे समारोह के साथ की गई। सभी महासतियो के परस्पर मे बहुत अच्छा प्रेम रहा। सम्मेलन–कार्य बडे समारोह के साथ सम्पन्न होने पर अपनी गुराणीजो के साथ हमारी चरित्र–नायिका ने किशनगढ की ओर विहार किया। कुछ दिन पहले अजमेर से विहार कर पधारी हुई विदुषी महासती श्री सुमतीकुवरजी, श्री जसकुवरजी महासतीजी वहाँ किशनगढ विराजती थी। तीनो महासतियो के प्रवचन एक साथ हुए। धर्म-ध्यान, तपश्चर्या आदि का आनन्द अच्छा रहा। वहाँ से सानन्द विहार कर आगे पीछे रहते हुए सभी महासतिये जयपुर पधारी। वहाँ श्रद्धेय आचार्य सम्राट् के, प्रवर्त्तक श्री शुक्लचन्द्रजी के और महाकवि श्री अमरचन्दजी महाराज के दर्शन किये और सेवा का लाभ लिया। श्री महा–वीर जयन्ति महोत्सव जयपुर मे ही मनाया गया। तत्पश्चात् वहाँ से सानन्द विहार कर श्रद्धेय गुरुदेव श्री किस्तूरचन्दजी महाराज के दर्शन करने के लिये किशनगढ पधारी। वहाँ पर जोधपुर के श्रीसघ की ओर से चातुर्मास की विनती के लिये तार, पत्र एवम् सघ के मन्त्री श्री माधोमलजी लोढा, धर्म–प्रेमी

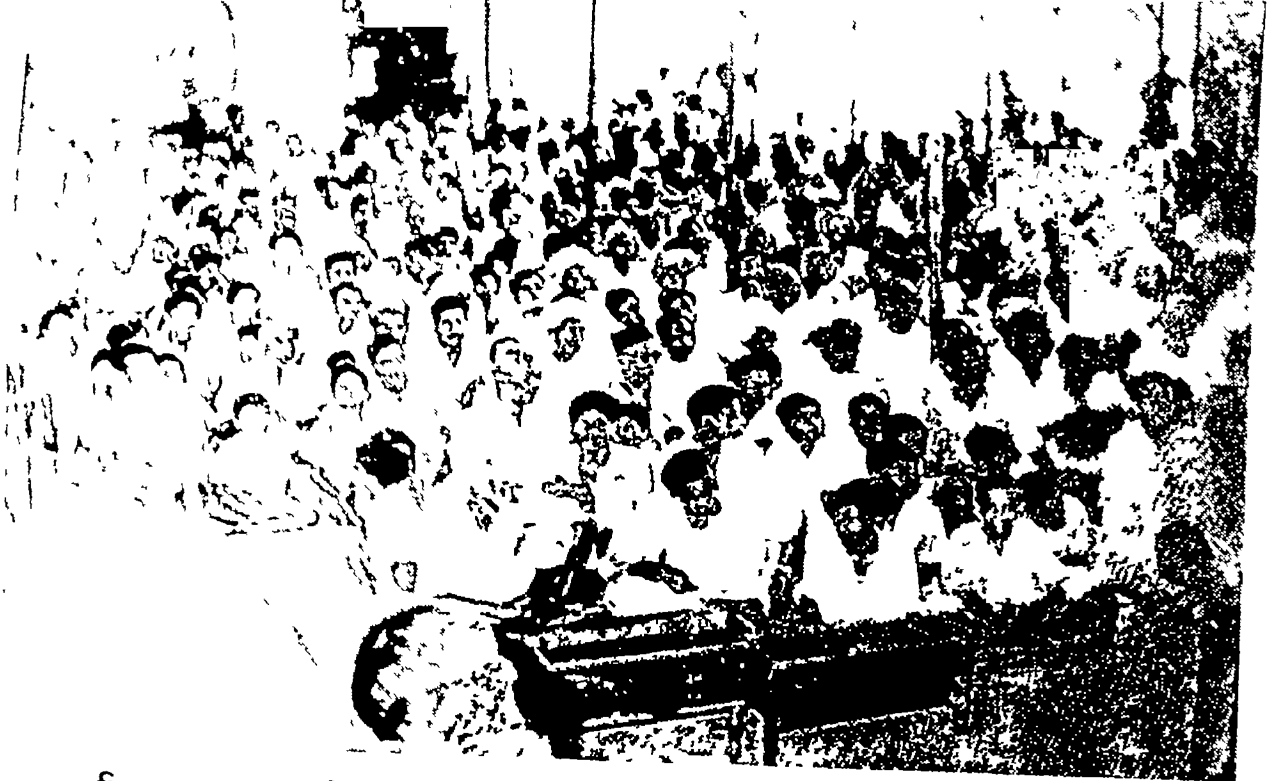
श्री गरगपतमलजी सुराणा आये। गुरुदेव श्री किस्तूरचन्द्रजी महाराज ने जोधपुर के श्रीसघ का अत्यन्त आग्रह देखा, तो चातुर्मास की विनती स्वीकार करली और शास्त्रज्ञ, प्रवर्त्तक श्री हीरालालजी महाराज, तरुरग-तपस्वी, मनोहर व्याख्यानी श्री लाभचन्द्रजी महाराज, मधुरवक्ता श्री मिश्रीमलजी महाराज को जोधपुर मे चातुर्मास करने के लिये आज्ञा प्रदान की। तथा हमारी चरित्र-नायिका के गुराणीजी विदुषी महासती श्री कमलावतीजी को भी आदेश दिया कि आप भी इस वर्ष के वर्षावास का निवास जोधपुर मे ही करे।

सद्गुरु के आदेश को प्राप्त कर हमारी चरित्र-नायिका के गुराणीजी ने वहाँ से विहार किया और अजमेर, व्यावर, सोजत, सँवरार, मारवाड जक्शन आदि कई छोटे-मोटे ग्रामो एवम् नगरो को स्पर्शते हुई बूसी पधारी। वहाँ पर सा० र०, अवधानी पण्डित श्री अशोक मुनिजी महाराज विराजते थे, उनके भी दर्शन किये। हमारी चरित्र-नायिका के लिये सद्गुरु श्री अवधानीजी का यह अन्तिम दर्शन करने का अवसर था। आप यह नही जानती कि मैं अपने महान् उपकारी सद्गुरु के दर्शन इस जीवन मे फिर नही कर पाऊँगी और जोधपुर चातुर्मास मे ही अपनी जीवन-लीला समाप्त करदूगी। श्रद्धेय अवधानीजी का हमारी चरित्र-नायिका पर एक महान् उपकार था। आपको गृहस्थावस्था से मुक्त होकर सयमी जीवन बिताने का जो सौभाग्य मिला था वह पूज्य गुरुदेव अवधानीजी का ही प्रताप है। दीक्षा लेने के पश्चात् भी अविलम्ब आत्म-कल्याण करने के लिये सीधा और सरल मार्ग जो तपस्या करने का है, उसकी प्रेरणा भी श्रद्धेय सद्गुरु श्री अवधानीजी से ही मिली थी। इस समय भी अवधानीजी ने

आपको यही फरमाया कि (प्रेरणा दी) —देखो, जोधाणे जैसे मारवाड के मुख्य और धर्मानुरागी नगर मे आप चातुर्मास करने के लिये जा रही है। अत तपस्या की आराधना ऐसी करना कि जोधपुर के जैन इतिहास मे आपका चातुर्मास आदर्श के रूप मे अकित हो। गुरुदेव के उपदेश को आपने "तहत्त" कह कर स्वीकार किया। तदनन्तर श्री अवधानी गुरुजी ने तो वहाँ से विहार कर दिया। परन्तु हमारी चरित्र-नायिका के गुरणीजी के पैरो मे तकलीफ हो जाने के कारण कुछ दिन वहाँ ही ठहरना पडा। उपचार करने पर पैर की पीडा शान्त हुई और आप वहाँ से विहार करके पाली पधारी। वहाँ विराजित प्रवर्त्तकजी म० और तरुण-तपस्वीजी म० के दर्शन किये। कुछ दिन वहाँ ठहर कर विहार किया। कई छोटे मोटे ग्रामो को स्पर्शते हुए आषाढ वदि सप्तमी को जोधपुर पधारी और स्वागतार्थ सम्मुख आये हुए धर्म-प्रेमी श्रावक, श्राविकाओ के साथ नगर मे प्रवेश किया। विश्राम स्थान श्री खू टा की पोल मे पहुँच कर आपने तथा आपके गुरणीजी ने एव वडी गुरु वहिनो ने मगलमय भगवान् शान्तिनाथ की स्तुति की। स्तुति को सुनते ही सभी भाई और वहिन प्रसन्न हुए व जय-जय की ध्वनि से गगन को गूजा दिया। तदनतर आप वहाँ विराजित पण्डित श्री मिश्रीमलजी म०, मनोहरवक्ता श्री ईश्वर मुनिजी म०, कविता-प्रेमी श्री रग मुनिजी म० के दर्शन किये। तदनन्तर प्रतिदिन मध्याह्न के दो वजे चतुष्पदी (चोपई) वाचना प्रारम्भ किया और रात्रि मे प्रतिक्रमण करने के वाद स्तवन, थोकडा, और जीवन्मुक्त हुए एव महासतियो के जीवन-वृत्त सुनाने आरम्भ किये। आपके अनुपम विज्ञान की सौरभ सारे जोधपुर मे प्रसर गई। अत दिन-प्रतिदिन श्रोतागणो की सख्या अधिकाधिक वढने लगी। एक दिन

तरुण-तपस्वी श्री लाभचन्दजी म० ने हमारी चरित्र-नायिकाजी को फरमाया कि प्रतिवर्ष चातुर्मास मे आप बडी-बड़ी तपस्या करती हैं तो इस चातुर्मास मे कितनी तपस्या करेगी। उत्तर मे आपने सविनय निवेदन किया कि बडे गुरुदेव श्री प्रवर्त्तकजी म० की, आपकी, श्री माताजी म० की तथा श्रद्धेय गुरणीजी म० की आज्ञा हो तो पचपन की तपस्या करूँगी। तदनन्तर आपने श्रावण वदि छट्ठ से तपस्या प्रारम्भ की, और तपस्या के प्रारम्भ मे तीन दिन तक चौ-विहार एव मौन रखी। तपस्या मे आप बहुत ही कम बोलती थीं। हमेशा, जहाँ तक आपकी शक्ति रही, माला फेरती रहीं तथा स्तोत्र पाठ, स्वाध्याय आदि करती रही। तपस्या के पचीसवे दिन आप सिंहपोल मे गयी और गुरुदेवो के दर्शनो का, व्याख्यान सुनने का, तथा सेवा का लाभ लिया। आपको इच्छा तो गुरुदेवो के दर्शन करने के लिये सिंहपोल जाने की बहुत बनी रहती थी, परन्तु गुरुदेव ने, गुरुणजी ने तथा श्रावक-श्राविकाओ ने मना कर दिया, कारण कि वहाँ जाते समय रास्ते मे घाटो का कुछ चढ़ाव आता है और आपका शरीर विलकुल अशक्त है।

आपके हृदय मे गुरु भक्ति का सचार बहुत था। आप आपने श्रद्धेय गुरुणीजी की आज्ञा का पालन करती हुई तपस्या और ज्ञान-ध्यान का अभ्यास करने मे सदा मग्न रहती थी। प्रचलित तपस्या के ३९वें दिन व्याख्यान मे पचपन दिनो की तपस्या की घोषणा की गई। क्रमश ५५वाँ दिन समीप आया परन्तु आपकी भावना आगे के लिये बढी-चढी थी। पचपनवें दिन तपस्या की पूर्ति की घोषणा को सुनकर आपके सांसारिक पक्ष के भाई, भोजाई और वहिन तथा अन्य श्रावक-श्राविकाएँ भी विभिन्न ग्रामो और शहरो से दर्शनार्थ आये। ५५वे दिवस जब



दिनाक २०-९-६४ को सिंहपोल जोधपुर मे आयोजित युवक सम्मेलन का भव्य दृश्य.

आपको पूछा गया कि आपकी तपस्या कर पूर कल है तो आपने अपनी इच्छा से यह भावना प्रकट की कि,—तरुण तपस्वीजी श्री लाभचन्दजी म० जो कि तीन वर्षो से निरन्तर वेले-वेले पारणा कर है, उनका पारणा और मेरा पारणा एक साथ होना चाहिए। अत. मेरी इच्छा छप्पन दिन की तपस्या करने की है। आपके इस प्रकार तपस्यार्थ चढते हुए परिणामो (भावो) को देख कर छप्पनवाॅ दिन फिर पचखा दिया। इसी अवसर पर जोधपुर के श्रावक सघ ने विचार किया—जोधपुर शहर मे ५६ दिनो का तप जो हमारी दृष्टि मे महासतीजी द्वारा यह प्रथम वार ही किया गया है, वह चिरस्मरणीय रहे एतदर्थ युवक-सम्मेलन और महिला-सम्मेलन अवश्य किया जाय।

जव आपकी तपस्या का ४५वाॅ दिन था, उस रोज राजस्थान के स्वास्थ्य मन्त्री श्री वरकनतुल्लाखाॅजी, चेयरमेन डाक्टर श्री सिघवी, श्री हाथी भाई डाक्टर आदि आपके दर्शनार्थ आये। आपकी तपस्या मे तल्लीनता व धैर्यता को देख कर वहुत प्रभावित हुए।

ता० २०-९-६४ को सिंहपोल मे युवक सम्मेलन मनाया गया। जिसके अध्यक्ष श्री दवे साहव, हाईकोर्ट के जज थे। हजारो की सख्या मे युवको ने भाग लिया। "युवको मे आध्यात्मिकता का विकास कैसे हो" इस विषय पर श्रद्धेय, शास्त्रज्ञ, प्रवर्त्तक श्री हीरालालजी म०, तरुण तपस्वी एव प्रसिद्ध-वक्ता श्री लाभचन्दजी म०, मनोहर व्याख्यानी श्री ईश्वरमुनिजी म० तथा महासतीजी श्री कुसुमवतीजी म०, महासतीजी श्री कमलावतीजी म० के प्रभावशाली प्रवचन हुए।

दिनाक २३-९-६४ को तपोत्सव मनाया गया। प्रात काल होते ही सिहपोल मे जनता उमड पडी। ठीक ७॥ (साढा सात) बजे तपस्विनीजी के दर्शन को महासतिये डोली मे उठा कर सिंहपोल मे लायी। उस समय का दृश्य देखने योग्य था। जय-जयकार के नारो से गगन को गूँजाते हुए हजारो नर-नारी तपस्विनीजी के दर्शन कर अपने आपको भाग्यशाली मानने लगे और अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार त्याग प्रत्याख्यान आरभ हुआ। ठीक साढा आठ बजे व्याख्यान प्रारभ हुआ। सर्वप्रथम 'तपका महत्व' इस विषय पर व्याख्यान-वाचस्पति प्रवर्त्तक श्री हीरालालजी म० तत्पश्चात् तरुण तपस्वी श्री लाभचन्दजी म०, म० व्या० श्री ईश्वर मुनिजी म०, महासती श्री कुसुमवतीजी म०, महासती श्री कमलावतीजी म० के सारगर्भित प्रवचन हुए। प्रवचन समाप्त होने पर स्थानीय कसाई भाईयो ने तपस्या के प्रभाव से प्रमुदित होकर, बिना मुआवजा लिए स्वेच्छा से ऐसा घोषित किया कि आज तो हम हमारा व्यवसाय अर्थात् कत्लखाना बद रखेंगे ही परन्तु इसके साथ ही यह भी प्रतिज्ञा करते हैं कि—जब तक हमारा जीवन रहेगा तब तक भविष्य मे भी प्रति वर्ष २३ सितम्बर को हम हमारा व्यवसाय अर्थात् कत्लखाना बन्द रखेंगे। अगर इस प्रतिज्ञा का कोई भी कसाई-बन्धु उल्लघन करेगा तो उसे स्वजातीय आर्थिक दण्ड १५१) रु० भोगना होगा। इस प्रकार की प्रतिज्ञा, तप के प्रभाव से प्रोत्साहित होकर अपने हार्दिक-प्रेम के साथ सभी कसाई-भाईयो ने की।

तत्पश्चात् मध्याह्न मे महिला-सम्मेलन मनाया गया। इस सम्मेलन की अध्यक्षा थी सुश्री ऊषा वेरी जो तपस्विनीजी के दर्शन कर तपस्या मे तल्लीन हुई तपस्विनीजी की अनन्य श्रद्धा को देख बहुत प्रभावित हुई। सम्मेलन मे "महिला कर्त्तव्य" इस



सिहपोल जोधपुर में हुए महिला सम्मेलन मे विशेष निमंत्रित व्यक्ति
श्रीमती छगन बहन, सीटी मजिस्ट्रेट कुमारी श्री उषा बेरी, श्रीमती जस्टीस बेरी.

विषय पर पूर्वोक्त मुनि महाराजो के और महासतियो के ओजस्वी प्रवचन हुए। पश्चात् साढा चार बजे तपस्विनीजी को डोली मे उठा कर महासतियें वापिस खूटा की पोल मे अपने विश्राम स्थान पर ले गयी।

दिनाक २४ सितम्बर को प्रात श्री तरुण तपस्वीजी म० पोरसी का प्रत्याख्यान कराने के लिए तपस्विनीजी के विश्राम स्थान पर पधारे, उस वक्त तपस्विनीजी ने अपनी यह इच्छा प्रकट की कि मुझे सत्तावन का पचखान करा दीजिए। तव तरुण-तपस्वजी ने फरमाया कि—लोगो मे आपका पूर घोषित कर दिया गया है एतदर्थ बाहर ग्रामो से भी वहुत से धर्म-प्रेमी भाई और वहिन आ गये हैं, ऐसी परिस्थिति मे अव आपको पारणा करना ही वाजिब है। तरुण-तपस्वीजी के इस प्रकार कहने पर आपने आलोचना की और आत्म-शुद्धि के लिये प्रायश्चित्त के रूप मे पोरसी का प्रत्याख्यान किया। उसी दिन ४ दम्पत्तियो ने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अगीकार किये। जिनके शुभ नाम श्री गुलावचन्दजी सकलेचा, श्री तेजराजजी गोदावत, श्री माणकचन्दजी सूरिया, श्री कस्तूरचन्दजी मोदी है।

पोरसी प्रत्यास्यान के वाद तपस्विनीजी को पारणा कराया गया, मगर उनकी हार्दिक इच्छा यही वनी रही कि मुझे सत्तावन पचखा देते तो वहुत अच्छा रहता। सानन्द पारणा होने के वाद करीव वारह वजे दिन के उनकी तवियत एकदम विगड गई। तव सघ के मत्री श्री माधोमलजी लोढा तुरन्त जाकर श्री महता डाक्टर पालनपुर वालो को लाये। आते ही उन्होने आपके शरीर की स्थिति (हालत) को देख कर स्पष्ट शब्दो मे कह दिया कि जीवन खतरे मे है। डाक्टर

साहब के इस प्रकार कहने पर तथा सभी भाई बहिनो ने तपस्विनीजी के शरीर की हालत को देखकर चतुर्विध सघ की साक्षी से उन्हे चौविहार सथारा करा दिया गया। एक घण्टे तक सथारा चलता रहा, उत्तरोत्तर भावो मे उज्वलता आती रही और दिन के तीन बज कर पचास मिनट पर अरिहन्त का अखण्ड ध्यान धरते हुए ऐहिक लीला समाप्त कर परलोक को प्रस्थान कर गयी। उस समय आपके ससारावस्था के भाई, भोजाई और बहिन उपस्थित थे। विद्युत वेग के समान यह बात सारे शहर मे फैल गई। जिस ने भी यह सुना कि—महासतीजी का स्वर्गवास हो गया तो वह पश्चात्ताप करने के साथ आपकी घोर तपस्या की भूरि-भूरि प्रशसा करने लगा। करीब पाँच बजे पार्थिव शरीर का दाह सस्कार करने के हेतु धूम-धाम के साथ शव-यात्रा निकली।

उपसंहार

इस प्रकार हमारी चरित्र-नायिका ने अल्पायु मे ही अपनी आत्म-साधना-साधली। सयम लेने के बाद आप नम्रता और वैयावच्च आदि सद्गुणो द्वारा अपने गुरुणीजी की-कृपा-पात्र वन गई थी। आपकी सहन-शीलता अनूठी हो थी। सयम प्रियता के साथ-साथ आपकी ज्ञान ध्यान मे भी अधिक रुचि रहा करती थी। स्वल्प काल मे ही आपने कई थोकडो का बोध कर लिया था। बडी-बडी तपस्याएँ भी करली और अन्तिम समय में सथारा व आलोचना पूर्वक समाधि-मरण भी प्राप्त कर लिया। धन्य है ऐसी विदुषी, घोर तपस्विनी, महासती श्री सुगनकुवरजी, जिनके चरणो मे शतश, कोटिश. श्रद्धा के सुमन अर्पित करता हूँ। ॐ शान्ति. ॐ शान्ति ॐ शान्तिः ॥

श्रद्धा के पुष्प

(भजन रूप मे)

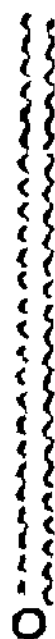
(घोर तपस्विनी, क्षमा की भव्यमूर्ति महा सती
श्री सुगनकुँवरजी महाराज के चरणों में 'श्रद्धा के पुष्प')

श्रद्धा के पुष्प



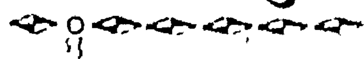
गगा की धारा के समान जिनका त्याग व तप निर्मल था।
प्राणीमात्र के प्रति जिनका हृदय फूलसे भी कोमल था।
जिनके हृदय में सेवा का स्रोत सदा बहता रहता था।
जिनका जीवन सभी के लिए हितकारी था।

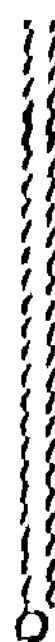
ऐसी घोर तपस्विनी, क्षमा की भव्यमूर्ति, महासती
श्री सुगन कुँवरजी के चरणो मे
" श्रद्धा के पुष्प "



रंगमुनि, जोधपुर.
२५-६-६४.

श्रद्धा के पुष्प





रंगमहल, जोधपुर
२५-९-६४.

श्रद्धा के पुष्प





गंगा की धारा के समान जिनका त्याग व तप निर्मल था।
प्राणीमात्र के प्रति जिनका हृदय फूलसे भी कोमल था।
जिनके हृदय में सेवा का स्रोत सदा बहता रहता था।
जिनका जीवन सभी के लिए हितकारी था।

ऐसी घोर तपस्विनी, क्षमा की भव्यमूर्ति, महासती
श्री सुगन कुंवरजी के चरणो मे
" श्रद्धा के पुष्प "



रंगमुनि, जोधपुर
२५-६-६४.

:: श्रद्धांजली ::

[तर्ज : दिल लूटने वाले जादूगर–]

पुन्यवान महासती सुगनकुंवरजी तपकर स्वर्ग सिधाई है।
शमदम उपशम और त्याग पूर्ण जीवन में करली कमाई है ॥टेर॥

जीवन था सादा महक भरा और मधुर तुम्हारी वाणी थी।
सौरभ फैलाकर चली गई संयम की एक निशानी थी।
उज्ज्वलता दिखाई क्षमा धार कर भव्य मूर्ति मन भाई है ॥१॥

थी सहनशीलता भी अटूट और गुरुणी को प्रिय कारी थी।
सेवा मे लगाया तन मन सब और ज्ञान रुचि भी प्यारी थी।
सतियो के संघ में तपस्विनी बन अनुपम कीर्ति पाई है ॥२॥

जब जान लिया तन है अनित्य तो शीघ्र संथारा कर लिना।
खाते खाते नही मरना है यह जगको उदाहरण दे दिना।
शुभ भाव समाधि युक्त मरण की आप झलक दिखलाई है ॥३॥

हम भाव युक्त श्रद्धा के पुष्प चरणो मे अर्पित करते हैं।
शास्वत शान्ति पावे यह आत्मा यही कामना करते हैं।
पावेंगे सदा अविनाशी अमर पद 'रंगमुनि' दिल आई है ॥४॥

:: नवयुवकों को आह्वान ::

[तर्ज : चुप चुप खड़े हो–]

जाग उठो नवयुवको युग की पुकार है।
जीवन मे आत्मीयता का भरना भण्डार है ॥टेर॥

भूल गये आप सब भारतीय सस्कृति।
जिससे पनपने पाई देखो सब विकृति।
विकृति मिटा के करना धर्म का प्रचार है ॥१॥

न्याय नीति पूर्ण सब जीवन मे व्यापार हो।
सौम्यता सद्गुण और पूरा सदाचार हो।
भविष्य की आँखें रही तुमको निहार है ॥२॥

खोटी खोटी रीतिया और रूढियो को त्याग दो।
सो चुके हो खूब अब जरा निद्रा त्याग दो।
दीन दुखी कर रहे करुणा पुकार है ॥३॥

कर्तव्य निभाकर देश सेवा को बजाना है।
ज्ञान और विवेक का अब भरना खजाना है।
करो सद्कार्य होवे जीवन का सुधार है ॥४॥

फैशन का त्याग करो जीवन मे सादगी।
धर्म का हो प्रेम जिससे सुधरेगी जिन्दगी।
'रंगमुनि' जीवन मे लाना अब बहार है ॥५॥

[तर्ज : देख तेरे संसार की हालत]

महासती गुणवान सिधाई स्वर्गलोक दरम्यान।
तपस्विनी महागुणो की खान।
जगती तल पर आकर कीना तप से परम कल्याण ॥टेर॥

जन्म तोडापुर मे सती पाई।
माता सुन्दर मन खुशियां छाई।
छाजेड वश को दिया दिपाई।
पिता गुलाबचंद को तू जाई।
मातपिता ने हर्ष होकर सुगनकुवर दिया नाम ॥१॥

बालावय मे पढ लिख आई।
तरुण अवस्था मे जब आई।
माता-पिता ने शादी रचाई।
औरंगाबाद मे बहु बन आई।
पर विधि को मजूर नही था, पति किया प्रयाण ॥२॥

विचरण करती गुरुणी आई।
कमलावती वाणी बरसाई।
सती सुगन सुन मन हर्षाई।
सयम लेना है सुखदाई।
यही प्रतिज्ञा धार आपने लीना चारित्र महान ॥३॥

लघुवय मे ही तपस्विनी बनके।
खोले द्वार अन्तर्जीवन के।
बडी बडी तपस्यायें करके।
नाम अमर किया इस जीवन मे।
छप्पन दिन की करी तपस्या जोधाणां दरम्यान ॥४॥

सती वेदना जब कुछ पाई।
लिया शीघ्र संथारा ठाई।
आलोचना अन्तिम कर पाई।
पण्डित मरण से शुभगतिपाई।
'रगमुनि' चरणो मे करता अर्पित श्रद्धा गान ॥५॥

[तर्ज : दिल लूटने वाले जादूगर–]

धन्य धन्य महासती सुगनकुवरजी तपकर जोर लगाया है।
छप्पन दिन की करी दीर्घ तपस्या पूर आज का आया है ॥टेर॥
लिया जन्म ग्राम शुभ तोडापुर जो भव्य और प्रियकारी हैं।
पूज्य पिता श्री गुलावचन्दजी और सुन्दर वाई महतारी है।
पुन्यवान लिया जव जन्म कुटुम्व मे आनन्द हर्ष मनाया हैं ॥१॥
हुई तरुण उम्र तव व्याह किया पर विधि को वह मजूर नहीं।
विकराल काल को शर्म नही लेगया रत्न को छीन कही।
पर धैर्यवान इस सती नारी ने धर्म को साथी वनाया है ॥२॥
हुवा उदय भाग्य से शुभ प्रभात और रवि का सा प्रकाश मिला।
विचरण करती महासती पधारी सुना जान तव कमल खिला।
सदज्ञान मिला तव कमलावती गुरुणी को शीष झुकाया है ॥३॥
दो सहस्त्र साल सोलह फाल्गुन सुद गुरुवार सयम पाया।
किया ज्ञान ध्यान अभ्यास और अव तपस्वीनीका पद पाया।
प्रतिवर्ष तपस्या कर करके आत्मा को शुद्ध वनाया है ॥४॥
शुभ भाव युक्त गुणगान करें गुणगान से कर्मो के वृन्द हटें।
अनुकरण करे हम महासती का धर्म मार्ग पर सदा डटे।
रगमुनि भक्ति के सुमन खिले जीवन को शुद्ध वनाया है ॥५॥

[तर्ज : बहे अंखियों की धार–]

सुगनकुवर गुण भण्डार, गई स्वर्ग सिधार,
याद करू हर बार, कैसे भुलाऊँ सती आपको ॥टेर॥

सयमी जीवन को तप मे लगाया।
आत्मिक बल को सती प्रगटाया॥
वाणी अमृत की धार, सेवा करने मे तैयार ॥ १ ॥

विनय रग रग मे खूब भरा था।
जीवन सुगन्ध युक्त तुम्हारा था।
सती तप की भण्डार, किना तप श्रैयकार ॥ २ ॥

जोधपुर मे कठिन तप ठाया।
छप्पन दिनो का पूर जब आया।
हर्षे सब नरनार, छाया आनन्द अपार ॥ ३ ॥

अन्तिम जीवन को शुद्ध बनाया।
समभावो से अनशन ठाया।
गई स्वर्ग मुझार, सती जीवन सुधार ॥ ४ ॥

श्रद्धा सुमन चरणो मे लाई।
भेंट करो स्वीकार हर्षाई।
यही 'शान्ति' की पुकार, होवे अपना भी उद्धार ॥ ५ ॥

लेखिका – महासती श्री कमलावतीजी की शिष्या शातिकुंवरजी।

———

[तर्ज : म्हारा वीर प्रभु का दर्शन की]

महासती सुगन कुवर गुणवान के तप कर स्वर्ग सिधाई है।
स्वर्ग सिधाई है जिन्होने करली कमाई है ॥टेर॥

तोड़ापुर मे जन्म लिया जब हर्षे सब परिवार।
विविध भाति महोत्सव करके किया सुगन नाम स्वीकार ॥१॥
बाल्यकाल मे पढ-लिख करके कीना ज्ञानाभ्यास।
युवावस्था देख कराया मात-पिता गृहवास ॥२॥
प्रेम पूर्ण चल रही गृहस्थी पर विधि को नही मजूर।
गृहस्थ गाडी का चलता पहिया तोडा काल करूर ॥३॥
धैर्यवान महासती धैर्यधर करती धर्म से प्रेम।
जान अनित्य जग की माया को लिया सयम का नेम ॥४॥
पुण्य योग से आशा फल गई गुरूणी गुण भण्डार।
महासती कमलावतीजी वहा आगई करके विहार ॥५॥
सुन उपदेश ज्ञान घट छाया किया संयम स्वीकार।
ज्ञान ध्यान की लगन लगा लिया तपस्विनी पद धार ॥६॥
सैंतालीस, इकतीस, छप्पन की करी तपस्या कठोर।
तप जप से कई हुए प्रभावित बनी आप सिरमोर ॥७॥
जोधपुर मे हुआ तपोत्सव खूब हुआ उपकार।
किया पारणा हुई वेदना लिया सथारा धार ॥८॥
प्रेम पूर्ण रखती सब पर ही प्रेम दृष्टि भरपूर।
कार्य दक्षता गुण पाया कर आज्ञा को मंजूर ॥९॥
सयम जीवन पूर्ण निभाकर गई स्वर्ग दरम्यान।
श्रद्धा 'पुष्प' चरणो मे लाई, रख लेना सम्मान ॥१०॥

लेखिका – महासती श्री कमलावतीजी की शिष्या श्री पुष्पावतीजी

(तर्ज : तेरी प्यारी प्यारी सूरत को)

जिनमत को दिपाने वाली कहा छोड के जा बसी—
॥ ओ महासती ॥
शाषन की शान निराली थी कहा छोड के जा बसी—
॥ ओ महासती ॥

सयम को मन में धारी जब साहस दिखाया भारी जब ।
जितनी भी विरोधी शक्ति थी तेरी दृढ़ता से हारी जब ॥
आतम वैरागी बनाली थी कहा छोड के जा बसी—
॥ ओ महासती ॥१॥

सेवा मधुरता विनय गहना तुमने अपने पर पहना ।
आतम परमातम करने का साधन है सबसे यह कहना ॥
सयम से साधना सफल बना मुक्ति की तैयारी करी—
॥ ओ महासती ॥२॥

तपस्या करने मे कमाल किया गुरणी का उन्नत भाल किया ।
इकतीस, सेंतालिस, छप्पन कर आगे का पथ सम्भाल लिया ॥
अल्प समय में ही अपनी अमर याद बसा के चली—
॥ ओ महासती ॥३॥

शान्ति जब मन में आयेगी पुष्पा जब महक फैलायेगी ।
सतोष जभी होगा हमको जब स्वप्न मे दर्श दिखायेगी ॥
आमे का राज बना करके अब बीच मे छोड चली—
॥ ओ महासती ॥४॥

:: महिला सम्मेलन ::

[तर्ज . वालो तां मीठे बोल–]

महिला सम्मेलन आज, आज इसे सफल बनाइज्यो।
हो नारी जाति की शान, शान को खूब बढाइज्यो ।।टेर।।

नारी को कर्तव्यो का करना पूरा ज्ञान है।
शील सदाचार सदगुण की नारी खान है।
हो पुत्र रत्न की खान खानसे कुल को दिपाइज्यो ।।१।।

उन्नत बनाना जीवन फैशन को त्याग दो।
सादगी से रहना सदा प्रतिज्ञा यह धारलो।
हो पतिव्रता वृत पाल पान गृहस्थी को चलाइज्यो ।।२।।

दया करुणा का करना दिलमे सचार है।
छोटे छोटे बालको मे भरना सस्कार है।
हो प्रभु नाम आधार इसे पलभर न भुलाइज्यो ।।३।।

होती माता पिता अनुसार ही सन्तान है।
कटुक मधुर फल होते बीज समान है।
हो चारित्र की शुद्ध ज्योति, ज्योति को घट मे जगाइजो ।।४।।

दीन, दुखियो की सुनना करुणा पुकार हो।
रगमुनि यथा योग्य करनां सत्कार है।
हो लज्जा प्रेम को धार, 'शान्ति के पुष्प' खिलाइजो ।।५।।

———

[तर्ज · दिल लूटने वाले जादूगर–]

मगलकारी ये पर्व पर्यूषण हमे जगाने आये हैं।
जीवन मे जगाओ ज्योति को सन्देश सुनाने आये हैं ।।टेर।।

मानव भूलो का पात्र बना फिर कीच कलह मे फसता है।
माया ठगिनी का जाल बुरा लेकिन भोला नर फसता है।
निकले कैसे ? इस मोह जाल से मार्ग बताने आये है ।।१।।

दस धर्म बताये वीर प्रभु उनका ही पालन करना है।
रखना है हृदय मे सरल भाव और क्षमा धर्म दिल भरना है।
अर्जुन माली, गजसुखमाल की क्षमा बताने आये हैं ।।२।।

इन आठ दिनो मे धर्म ध्यान की ज्योति हमे जगाना है।
मिथ्या जो तिमिर फैला उसको कर दूर प्रकाश जगाना है।
घट घट मे जगे अहिसा ज्योति बस यही सुनाने आये हैं ।।३।।

हीरा गुरुवर सच्चे हीरे और लाभ गुरू गुणधारी है।
मीठी मिश्री का पान करो दीपक से मिटे अधियारी है।
घट घट मे जगाने ज्योति को ईश्वर और रंगमुनि आये हैं ।।४।।

है जोधपुर यह नगर धन्य पुण्यवान यहा नर नारी हैं।
गफलत न करो पुन्यवान महासती कमलाजी कहे हर वारी है।
जीवन मे 'शांति के पुष्प' खिले सौरभ फैलाने आये हैं ।।५।।

[तर्ज़ : सुधा वृष्टि वरसाते हैं]

धन्य धन्य है गुरुवर उपकारी जो सुधा वृष्टि वरसाते हैं।
सुन २ भव्यो के हृदय कमल अन्दर वाहर विकसाते हैं ॥टेर॥

शुभनाम आपका हीरामुनि जो ज्ञान ध्यान के आगर हैं।
आगम तत्वो के ज्ञाता हैं और क्षमावन्त गुण सागर हैं।
हैं श्रमण संघ के आप प्रवर्तक दर्शन से पातक जाते हैं ॥१॥

दूजे नम्बर श्री तरुण तपस्वी लाभचन्द्रजी गुणधारी हैं।
बेले बेले तप करते हैं, वाणी अमृत सम प्यारी है।
दिन रात नही सोते गुरुवर दृढ़ आसन आप जमाते हैं ॥२॥

हैं ज्ञान ध्यान मे मग्न सदा मिश्री मुनि प्रण के पालक हैं।
अज्ञान हटाने जीवन मे वस दीपक एक सहायक हैं।
साधक ईश्वर और मुनि रसिक तो आनन्द रंग वरसाते हैं ॥३॥

शुभ समय मिला अब लाभ कमा कमलावतीजी फरमाते हैं।
जो करे धर्म का आराधन वे आनन्द मंगल पाते हैं।
जीवन मे 'शान्ति के पुष्प' खिले यश सौरभ जग मे फैलाते है ॥४॥



[तर्ज : तुमको लाखों प्रणाम]

घन्य घन्य महासतीजी तुमको लाखो प्रणाम।
सुगनकुवर गुणधाम तुमको लाखो प्रणाम ॥टेर॥

तोडापुर मे जन्म था पाया।
माता-पिता का मन हर्षाया।
वोहरा वश मुझार तुमको ॥१॥

माता सुन्दर खुशी मनाई।
वाल्यकाल मे पढ लिख पाई।
व्याह हुआ सुखकार ॥२॥

विचरण करती गुरुणी आई।
ज्ञानामृत की झडी लगाई।
ज्ञान लगा उस बार ॥३॥

महासती ने सजम लिना।
उग्र तप कई वक्त मे कीना।
सेवा विनय हरबार ॥४॥

छप्पन दिन जोधाणों ठाया।
सानन्द पूर्ति दिवस मनाया।
हुआ अमिट उपकार ॥५॥

सती पारणा जब कर लीना।
रोग ने आकर घेरा दीना।
लिया सथारा धार ॥६॥

करणी कर सत्ती स्वर्ग सिधाई।
राजकुंवर श्रद्धाजली लाई।
खुले 'शान्ति' के द्वार ॥७॥

(तर्ज सुनलो सब नरनारी)

महासती गई स्वर्ग सिधार, सुनलो सब नर नारी ॥टेर॥

जन्म सोजतपुर पाया । बोहरा कुल को दीपाया ।
हर्षे थे घर के सब नरनार ॥१॥

बचपन मे पढ लिख पाई । परिजन मिल शादी रचाई ।
विधि को नही थी मजूर ॥२॥

विचरण करती वहा आई । कमलावतीजी सुखदाई ।
सुना था उनका जब उपदेश ॥३॥

दिल मे वैराग्य छाया । जब संयम का दिल चाया ।
कीना आखिर मे वही स्वीकार ॥४॥

छप्पन का तप यहा ठाया । जीवो को अभय दिलाया ।
रक्खेंगे तिथी सब याद ॥५॥

आलोचन सथारा ठाई । करणी कर स्वर्ग सिधाई ।
जग मे कर लीना अमर नाम ॥६॥

शोक सभा यहा मनाई । श्रद्धाजली आज चढाई ।
रंगमुनि की यह अरदास ॥७॥

——



तपोत्सव पर आये हुए शुभ संदेश

१ जयपुर—आचार्य सम्राट् श्री आनन्द ऋषिजी म०
उपाध्याय श्री अमरचन्द्रजी म०
प्रवर्तक श्री शुक्लचन्दजी म०
महासती श्री सुमतिकुवरजी।

२ विजयनगर—प्रवर्तक वयोवृद्ध श्री पन्नालालजी म०।

३ मदनगज—वयोवृद्ध प० मुनि श्री किस्तूरचन्द्रजी म०।

४ बम्बई (कादावाडी)—श्री व० स्था० जैन श्रावक सघ
श्री केवलमुनिजी म०

५, बम्बई (कोट)—श्री व० स्था० जैन श्रावक सघ

६ बम्बई—मगनलाल पी डोसी

७ कलकत्ता—सेठ कानजी पानाचन्द

८ जावरा—सेठ सुजानमलजी महता
महासती श्री केसरकुंवरजी

९ अम्बाला—वैद्य बाबूरामजी पारसमल

१०. मद्रास—कपूरचन्दजी सुतरोया

११ अजमेर—श्री व० स्था० जैन श्रावक सघ
तपस्वी श्री रोशनमुनिजी

१२ कलकत्ता—प्रभुदास हेमाणी

१३ इगतपुरी—श्री व० स्था० जैन श्रावक सघ

१४ कड़प्पा—श्री रतनचन्द पारसमल

१५. सवाई माधोपुर—श्री व० स्था० जैन श्रावक सघ
श्री नाथुलालजी म०

१६. मनासा—श्री भवरलालजी रूपावत

१७ फ़िलौर—हीरालाल जैन (अग्रवाल)
प० रत्न श्री हेमचन्द्रजी म०

१८ ब्यावर—प्रवर्तक श्री अम्बालालजी म०
जैन श्रावक सघ

१९ उदयपुर—कवि श्री अशोक मुनि म०
श्री व० स्था० जैन श्रावक सघ

२० जम्भू—श्री व० स्था० श्रावक सघ
श्री नेकचन्द्रजी म०

२१ नाभा—श्री नेमीचन्द्रजी म०
श्री व० स्था० जैन सघ

२२ नलखेडा—श्री बालकुँवर जी महासती जी
श्री व स्था० श्रावक सघ

२३ जम्भू (तवी)—श्री रूपचन्द तिलोकचन्द जैन

२४ कानोड—श्री उदय जैन, श्री जैन शिक्षण सघ

२५ शाजापुर—श्री मध्य प्रदेश जैन युवक सघ

२६ रतलाम—प्रवर्तक श्री मगनलाल जी म०
श्री व स्था० जैन सघ

२७ मन्दसोर—श्री व० स्था० स० झनकपुरा
महासती श्री दाखाजी मृगावतजी

२८ रामपुरा—श्री व० स्था० श्रावक सघ
तपस्वी प्रेमचन्द जी म०

२९ अचलसिहजी M P आगरा, जैन कान्फ्रेन्स अध्यक्ष
मुझे तपस्विनी श्री सुगन कुवरजी की कठोर साधना पूर्ति दिवस दिनाक २३-९-६४ का तपोत्सव आमन्त्रण व युवक सम्मेलन निमन्त्रण पत्र प्राप्त हुए एतदर्थ धन्यवाद ।

मैं इन दिनों लोकसभा अधिवेशन में व्यस्त रहने के कारण इच्छा होते हुए भी इस पुनीत अवसर पर उपस्थित न हो सका जिसका मुझे खेद है ।

आशा है आपके दोनों ही सम्मेलन सफलता पूर्वक सम्पन्न हुए होंगे। आपके वहां विराजित संत व सतियाजो को मेरी वन्दना अर्जकर सुखसाता पूछावें।

३० कवि सत्यव्रत शर्मा (अजेय) दुघेडा (पजाव)
जोधपुर श्रावक संघ द्वारा प्रेषित तपोत्सव आमन्त्रण पत्र हस्तगत हुआ। पढकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई आशा है पूरोत्सव अर्हन्त के अनुग्रह से पूर्ण हो गया होगा।

३१ मल्हार गढ—इन्दरमलजी बापूलालजी मारू

३२. निम्बाहेडा—दुलीचन्द घीसालाल लोढ़ा

३३ कपासन—श्री व० स्था० श्रावक सघ

३४ रायचूर—श्री व० स्था० श्रावक सघ
श्री मगलचन्दजी म०

३५ डूंगला—श्री व० स्था० श्रावक संघ
महासती श्री सलेहकुवरजी, सज्जनकुवरजो

३६ बडी सादड़ी—श्री व० स्था० श्रावक सघ

३७. चितोड़गढ़—श्री चतुर्थ जैन वृद्धाश्रम।



शोक सम्वेदना

१ मदनगज—प० रत्न श्री कस्तूर चन्द्रजी म०

२ जयपुर—आचार्य सम्राट श्री आनन्द ऋषिजी म०

उपा० अमरमुनिजी म०

३. सवाई माधोपुर—पं श्री नाथुलालजी म०, श्रावक सघ

४ रायपुर (राज)—श्री वृजलालजी म०, श्री मधुकरजी म०, श्रावक सघ

५. उदयपुर—श्री अशोक मुनिजी म०, श्रावक सघ, उदयपुर

६ जावरा—महासती श्री केसर कुवरजी, श्री सुजानमलजी मेहता, श्री व० स्था०श्रावक सघ

७ रतलाम—प्रवर्तक श्री मगनलाल जी म०

श्री व० स्था० श्रावक सघ, रतलाम

८. इन्दौर—मालव केसरी सौभागमलजी म०

प० रत्न श्री प्रतापमलजी म० अध्यक्ष—सेठ सुगनचन्द जी भण्डारी, श्री व० स्था० श्रावक सघ

९ मन्दसौर—चौपडा ब्रदर्स

१०. मन्दसौर—श्री चांदमलजी मारू

११ मन्दसौर—श्री कन्हैयालालजी मुरडिया

१२ जावरा—श्री वापूलालजी राका

१३ जावरा—रतनलाल माधोसिंह चण्डालिया

१४. मन्दसौर (जनकपुरा)—महासती श्री दाखाजी मृगावतीजी

१५ वम्वई (कादावाडी)—श्री व० स्था० श्रावक सघ

१६. धनोप—महासती श्री नानकुवरजी

श्री व० स्था० श्रावक सघ

१७ मल्हारगढ—इन्द्रमलजी बापूलालजी मारू

१८ ब्यावर—प्रवर्तक श्री अम्बालजी म०

श्री व० स्था० श्रावक सघ

१९ अहमदाबाद—श्री सा० सरस्वती वेन शाह, नवरगपुरा

२० वदु—श्री व० स्था० श्रावक सघ

२१ राजकोट—श्री शास्त्रोद्धारक समिति के मेम्बर ।

—:(*):—

श्री वर्द्धमान स्था० जैन श्रावक संघ, जोधपुर.

-: मान-पत्र :-

श्री वर्धमान श्रमग मगीय प्रवर्तक श्री हीरालालजी म०, तरुण तपस्वी प्रखरवक्ता श्री लाभचन्द्रजी म०, प० रत्न श्री मिश्रीलाल जी म०, सेवाभावी श्री दीपचन्दजी म०, मधुर वक्ता श्री ईश्वर मुनिजी म०, विद्या विनोदी श्री रगमुनिजी म०, ठा० ६ एव महासतीजी श्री हगामकुवरजो म०, विदुषी पडिना महासती श्री कमलावतीजी म०, घोर तपस्विनीजी श्री सुगनकुँवरजी म० महासतीजी श्री शान्तिकुँवरजी, श्री पुष्पावतीजी ठा० ५, जुमले ठाणा ११ का चातुर्मास २०२१ का जोधपुर नगर मे हुआ। यह चातुर्मास जोधपुर नगर के लिए ऐतिहासिक चातुर्मास साबित हुआ है। इसी प्रसग पर घोर तपस्वीनीजी जैन साध्वी श्री सुगनकुँवरजी ने आत्म शुद्धि के लिये केवल गर्म जल के आधार पर ५६ दिन की कठोर तपस्या की जिसकी पूर्ति दि० २३ ९-६४ को थी। उस रोज आप सभी (कसाई) भाईयो ने अपना रोजगार बिना मुआवजा लिए बन्द रखकर जो आदर्शता दिखाई वह शतश प्रशंसनीय है। दि० २३-९-६४ शाम को ४ बजे सिहपोल मे आपने उस पवित्र महानात्मा महासती के दर्शन किये तथा आपने महासती जी से अर्ज की थी कि हम आपके दर्शन व तपश्चर्या से प्रभावित होकर यह तप समाप्ति का दिन चिर स्मरणीय रहे इस हेतु प्रतिवर्ष २३ सितम्बर के रोज हम अपनी स्वेच्छा से यह प्रतीज्ञा करते हैं कि— हमारी पुस्त दर पुश्त इस रोज हिंसा नही करेगी। तथा कत्लखाने बन्द रक्खेगे। इसने उपरात भी अगर कोई व्यक्ति इस रोज किसी प्रकार की हिसा करेगा या पिछले रोज का बचा हुआ मास भी बेचेगा तो तीन माह की स्वजाति सजा

एव १५१) रु० उस पर जुर्माना खेरात होगा। इस प्रकार की पवित्र प्रतीज्ञा आप सभी भाइयो (कसाई) ने की उसके लिये हम आपको श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक सघ की ओर से यह मान-पत्र अर्पित करते है। तथा कोटि कोटि धन्यवाद देते हैं तथा भगवान मे हम प्रार्थना करते हैं कि आपके इन पवित्र भावो मे उत्तरोत्तर वृद्धि होती रहे और आपको वीर प्रभु सुख शाति एव आनन्द प्रदान करे।

भवदीय ·

माधोमल लोढा — मत्री

सूरजमल सकलेचा — उपाध्यक्ष

श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक सघ, जोधपुर,

ता० ११-१०-६४ स्थान हीराचन्द भिकमचन्द का बगला, उम्मेदमन्दिर

—( )—



दि० ११-१०-६४ को सेठ हीराचद भीकमचद(उम्मेद मदिर)के बगले पर कसाई भाइयो को प्रतिज्ञा दिलाते हुए तपस्वी मु श्री लाभचदजी म

ज्योति और ज्वाला

जीवन के कुछ खट्टे - मीठे संस्मरण

मङ्गलाचरण

सवैया :

शान्ति सदा जिनके मुख की कमनीय छवि अपने उर धारे।
त्याग विराग अहा! जिनके दिन रात रहे तन के रखवारे॥
जा पद-पंकज सेवत ही भव-पाप पलायन ह्वै परवारे।
वीर वही पर-पीर निवारक नित्य वसो उर बीच हमारे॥१॥

मेरे जीवन के कुछ संस्मरण

जन्म

आक और जवास को छोडकर अन्य सभी छोटे वडे तरु (वृक्ष) फल और फूलो से लहलहा रहे थे। पुष्पलताओ पर भौंरे अपना मधुर गुजार कर रहे थे। जन-जन के मन मन्दिर मे इच्छित आनन्द का अनुभव हो रहा था। विक्रम सवत् १९८३ मे इस प्रकार ऋतुराज वसन्त का विमल विकाश सभी दिशाओ को प्रमुदित कर रहा था। मासो मे उत्तम माधव (वैशाख) मास था। भक्तराज प्रह्लाद को जन्म देनेवाली चतुर्दशी के पहले अपना पावन प्रभाव प्रकट करनेवाली तथा अनपूछे मुहुर्तों मे शुभ समझी जानेवाली त्रयोदशी तिथि थी। ऐसे सुन्दर और सुखद समय में मेरा जन्म, ग्वालियर राज्यान्तर्गत—चिता खेडा में हुआ। मेरे एक ज्येष्ठ बन्धु और दो बहिनें भी थी। भाई श्री मांगीलाल स्वभाव के अत्यत भोले थे।

पिताश्री का नाम श्री नाथूलालजी और मातुश्री का नाम प्यारी वाई था। विचारशील, समयज्ञ और कार्य-कुशल तथा धर्मानुरागी होने के कारण पिताश्री की ख्याति केवल अपनी (ओसवाल) जाति में ही नहीं, अपितु अन्य सभी सभ्य-जातियो में अच्छी थी। पूर्वजो के प्रसाद और अपनी विशुद्ध दिनचर्या के कारण दपति-जीवन सुखमय व्यतीन होता था।

कृपि-कर्म के द्वारा आय का उपार्जन होने के कारण यथा सम्भव अपने कुएँ और खेतो को सम्भालने का उनका कार्य था, किन्तु कुएँ

और खेत अधिक होने के कारण उन सबकी सार-सम्भाल अकेले पिताजी नही कर पाते थे, इसलिए ग्राम के नजदीक के खेतो की सार-सम्भाल मेरी मातुश्री ही किया करती थी।

जलप्लावन से रक्षा

धार्मिक प्रेम से प्रमुदित हुए मेरी जन्म-भूमि के बड़े-बूढ़े बहुत से सज्जन समय-समय पर धर्म गोष्ठी करने के हेतु मेरे निकट प्राय आया-जाया करते हैं और "होनहार बिरवान के होत चीकने पात" इस सूक्ति का संकेत करते हुए कहा करते है कि—यह जो आज हम लोग अभूतपूर्व आनन्द का अनुभव आपके साथ कर रहे हैं, वह आपके पूज्य माता और पिता के अनन्य धर्मानुराग का ही प्रतिफल है—जो आप अपनी शैशवास्था (दूध मुँही अवस्था) मे कुएँ मे गिरजाने पर भी जलशायी की तरह जीवित रह गये।

कूएँ मे गिरजाने की बात मेरे पूछे जाने पर, वे कहा करते हैं कि—एक समय आपको पालने मे लेकर आपकी मातुश्री मजदूरो द्वारा धान्य की कटवाई करवाने के लिए अपने खेत मे गई थी। उस खेत के पास कूआ भी था और कूएँ पर विशाल वट का वृक्ष भी। उस वट की एक डाली कूएँ के बिल्कुल किनारे पर झुकी आई हुई थी, उस डाली से पालने को बाँध कर, उसमे आपको अच्छी तरह सुलाकर वह (मातुश्री) अपने कार्य मे दत्तचित्त हो गई। दुर्दैव के प्रकोप से वह पालना उस डाली से छिटक कर कुएँ मे जा गिरा।

कुछ समय पश्चात्—कार्य से अवकाश पाकर, आपको धवराने (दूध पिलाने) के हेतु सवत्सा सुरभि के समान प्रमुदित होती हुई मातुश्री उस वट वृक्ष के निकट आई और डाली से पालने को बन्धा हुआ नहीं देख कर विह्वल-मना हो, कुएँ मे झांका, और पालने सहित

आपको जल पर तैरते हुए देखा, तो वह जोर–जोर से चिल्लाने लगी। उसकी चिल्लाहट को सुनकर समीपस्थ लोक अविलम्ब दौड कर वहाँ पर आये और वडी सावधानी के साथ आपको कूएँ से वाहर निकाला। सानन्द वाहर निकले हुए आपको देख कर, प्रेम–प्रलाप करती हुई मातुश्री ने चट से आपको अपनी गोदी मे ले लिया और आपके शरीर के प्रत्येक अङ्ग को अपने कोमल–करो से दबोच–दबोच कर यह देखने लगी कि—कही पुत्र के किसी एक अङ्ग मे गुप्त चोट तो नही आई हो।

ज्यों–ज्यो मातुश्री आपके अङ्गो को अपने कोमल–करो से दवोचा, त्यो–त्यो आप मन्द–मन्द हास्य–युक्त अपनी तोतरी वाणी से मधुर–मधुर किलकारियें करने लगे। मातुश्री ने निर्वेदनीय आपकी उक्त क्रीडा का अवलोकन कर, परमानन्द प्राप्त किया तथा महामन्त्र नवकार का स्मरण कर बोली कि— बेटा! देख, देव–गुरु और धर्म का यह प्रताप है, जो दुर्दैव के प्रकोप से तू वाल–वाल बच गया।

परोक्ष नहीं,—प्रत्यक्ष में इस प्रकार अचम्भेकारी घटना को देख कर, उपस्थित सज्जनो के मुख से सहसा यह सूक्ति (सुन्दर आवाज) निकल पडी कि—

"धर्म एव हतो हन्ति, धर्मो रक्षति रक्षितः"।

माता की मृत्यु

तदनन्तर, पूर्वसंचित शाता वेदनीय और अशाता वेदनीय कर्मों के प्रताप से विविध भाँति के सुखों और दुःखो मे झूलता हुआ मैं पाँच वर्ष और छ. महीने का हुआ था कि अकस्मात् ज्वर के भयकर प्रकोप से क्षुभित हुए मेरी मातुश्री मुझे बिलखते ही विसार कर सहसा स्वर्ग को प्रयाण कर गई।

ज्येष्ठ–बन्धु श्री मागीलाल, स्वभाव के अत्यन्त भोले होने के कारण, मेरे लालन-पालन और घर के काम–काज तथा व्यावसायिक कार्य की सार–सम्भाल करने आदि का सारा भार अकेले पिताजी पर ही आ गिरा।

किले पर से गिर जाना और हाथ टूट जाना

एक समय का उदन्त है कि—निजी स्वभाव की चचलता के वशीभूत हुआ मैं अपने साथियो के साथ गाँव के किले पर क्रीडा करता था कि—अकस्मात् प्रचण्ड–पवन का एक झोका आया और मैं नीचे गिर गया। मेरा हाथ टूट गया और शरीर के अन्य अङ्गो मे भी खासी चोटें आई। पिताश्री को मेरे गिरजाने की खबर लगते ही वे भगे–भगे आये और मुझे घर मे सुला कर, दवाई लाने के लिए ग्राम मे गये।

पुत्र प्रेम से प्रवाहित हुए मातुश्री के भव्य–दर्शन

मैं अपने टूटे हुए हाथ की वेदना से व्यथित हुआ प्रलयकारी प्रलाप कर रहा था कि—सहसा मुझे मातुश्री के दर्शन हूए। वे आते ही चट से, मुझे अपनी गोदी मे लेकर बोले कि—बेटा!, विलाप मत कर, तेरा हाथ जो टूट गया है, उसे मैं अभी ठीक कर देती हू। यो कह कर उन्होंने मेरे हाथ पर शनै शनै अपना हाथ फेरा। उनके ऐसा करने पर अविलम्ब मेरा हाथ ठीक हो गया। शरीर की समस्त वेदना भी दूर हो गई और मुझे निद्रा आ गई। वह दिव्य–द्युति अपने अगज की आपदा का अपहरण कर तत्काल अन्तर्ध्यान हो गई। स्वल्प समय के बाद, पिताजी जब दवाई लेकर घर को आये और मुझे निद्रा मे निमग्न देखा, तो वे चुपचाप मेरे निकट आकर बैठ गये।

मेरे गिर जाने की खबर पाकर, स्वजन-सम्बन्धी और पिताजी के प्रेमी आदि सभी लोग दौड-दौड कर मेरी सुख-शान्ति पूछने के हेतु मेरे घर पर आये और मुझे चैन से सोता हुआ देखकर, वे भी पिताश्री के समीप आकर बैठ गये। घण्टे भर के बाद जब मैं जगा, तो पिताश्री ने मुझ से पूछा—बेटा! तेरे हाथ की पीडा कैसी है?

पिताश्री के यों पूछने पर, जब मैं अपने टूटे हूए हाथ को इधर-उधर घुमाकर, हँसता हूआ अपनी तोतली आवाज से बोला—पिताजी! आप तो दवाई लाने के लिये चले गये और पीछे से मेरे माताजी मेरे पास आये—वे मेरा हाथ देखो ठीक कर गये। मेरे इस प्रकार कहने और हाथ को बिल्कुल ठीक हुआ देखने पर उपस्थित सभी सज्जन सहसा (एक स्वर से) यो बोल उठे कि—"धन्य हो स्वर्गस्थ सती"।

अध्ययन करने के लिये मैं हाटोला ग्राम में

चिता खेडा मे मेरे अध्ययन करने की अनुकूलता नही देख कर पिताश्री ने मुझे अध्ययनार्थ अपने परम-स्नेही यति श्री नेमीचन्दजी जो हाटोला ग्राम (बडी सादडी के निकट) मे रहते थे। उनके यहाँ पर रख छोडा। यतिजी के आईचुकी नाम की एक लडकी ही थी, लडका नही था। एतदर्थ उन (दम्पति) ने मेरा लालन-पालन निजि पुत्रवत् करना प्रारम्भ किया। मैं भी उनको माता-पिता मानने लगा और स्वल्प समय मे ही मुझे चौथी कक्षा का विद्यार्थी बना दिया।

दादेवराय के दिव्य-दर्शन

पूर्व संचित पुण्य के प्रताप से एक दिन ऐसी घटना घटी कि—अनुमान के दो या तीन घडी रात्रि व्यतीत हुई होगी। मैं अपने मकान की चबूतरी पर खड़ा था। मकान ग्राम के बिल्कुल किनारे पर है।

मकान के दो तीन फर्लांग की दूरी पर एक बहुत बड़ा तालाब है, उस तालाब पर बड़े-बड़े इमली के वृक्ष हैं। उन वृक्षों से कुछ ही दूरी पर अकस्मात् मेरी दृष्टि मे भव्य-प्रकाश दिखाई दिया। स्वल्प समय के बाद फिर मैं क्या देखता हू कि—उस प्रकाश मे से श्वेत वस्त्रधारी अनुमान के १५०(डेढ सौ) गज का लम्बा पुरुषाकार दिखाई दिया। ऐसा देखने पर तत्काल ही मेरे हृदय मे यह भावना जागृत हुई कि—इस प्रमोदकारी दर्शन का लाभ मेरे गुरु और गुराणीजी को भी मिले, तो अति उत्तम् हो एतदर्थ चट से मैंने उनको आवाज दी। मेरी आवाज को सुनते ही, विना विलम्ब के वे (दोनो) बाहर आये और अनुमान के पांच मिनट के पर्यन्त उक्त दिव्य-दर्शन का लाभ हम तीनो ने लिया।

दिव्य देव के दर्शन हमारी दृष्टि से दूर हो जाने पर, यतिजी ने अपनी अर्द्धांगिनी को सम्बोधन कर के यो कहा कि—आईचुकी की माँ! अपन यहाँ रहते हुए वृद्ध हो गये हैं, परन्तु आज से पहले यहाँ ऐसा दिव्य-दर्शन का लाभ अपने को कभी भी नही मिला। यह लाभ तो "यथा नाम स्तथा गुण" की सूक्ति के अनुसार इस लाभ नामक लड़के के पुण्य के प्रभाव से ही मिला है।

भगवती दीक्षा की भव्य-भावना

विक्रम सम्वत् १९८९ मे हुए अजमेर के वृहद् साधु सम्मेलन का आनन्दानुभव कर, पूज्यपाद, जगद्वल्लभ, जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज, भावुक भक्तो की भव्य-भावना के वशीभूत होकर ग्रामानुग्राम विचरते हुए बड़ी सादड़ी से छोटी सादड़ी पधार रहे थे। रास्ते में हाटोला ग्राम आता है, और छोटी सादड़ी जाने का रास्ता मेरे मकान के बिल्कुल नजदीक होकर ही गुजरता है। अतएव गुरुदेव को आते हुए दूर से ही देख कर, मेरी मातुश्री ने मुझको सम्बोधन करके कहा—

बेटा !, देख, वे गुरुदेव पधार रहे हैं, चलो अपन भी—"घर बैठे आई हुई गगा का"— दर्शन करने चले ।

हम (*माँ और बेटा) दोनों अविलम्ब घर से भगे-भगे उस रास्ते पर आ खडे हुए कि—जिस रास्ते से गुरुदेव पधार रहे थे । गुरुदेव के निकट जाकर मातुश्री ने तिखुत्ता के पाठ से सविधि वन्दना की और मुझे आज्ञा दी कि—जा बेटा !, —गुरुदेव के पद-पकजो मे गिर जा ।

मातुश्री का आदेश प्राप्त कर, मैं गुरुदेव के पद-पकजो मे ऐसा लिपटा-चिपटा कि मानहु दूधमुँहा बच्चा अपनी माता से स्नेहवश लिपटता है । गुरुदेव ने—मेरे मन-मन्दिरस्थ भाव को पहचान कर—हँसते हुए अपना वरद दाहिना हाथ मेरे सिर पर रख कर बाँये हाथ से मुझे खडा कर दिया और मगलीक प्रदान कर आगे को रवाना हो गए ।

गुरुदेव के पधार जाने के बाद मेरी मातुश्री ने मुझको कहा—बेटा !, देख, इन मुनि-महात्माओ का जीवन कैसा निर्मल है । ये न तो किसी किस्म की सवारी पर बैठते हैं और न सोना-चाँदी आदि द्रव्य को अपने समीप रखते हैं । शरीर की सुश्रुषा के लिये, इत्र-तैल आदि सुगन्धित वस्तु का स्पर्श भी नही करते हैं । चाहे जैसे कन्ट का-कीर्ण रास्ते से चलना (गुजरना) हो, पैर मे जूती, खडाऊ आदि भी नही पहनते हैं । गुरु भक्ति से प्रमुदित हुआ कोई भक्त-जन, इनके निमित्त को लेकर यदि पक्वान्नादि बनाये और इन्हे उस बात का सकेत हो जाय

---

* यहाँ से आगे इस सस्मरण मे जहाँ कही "माता" इस शब्द का प्रयोग किया गया है, वह गोद की माता यानि गुराणीजी के लिये ही किया गया है ।

तो उस पक्वान्न को भी ये नही लेते हैं। पलग, पथरने और गलीचे आदि पर ये पैर भी नही रखते हैं। रात्रि मे भोजन करना तो दूर ही रहा, किन्तु पानी भी ये नही पीते हैं। अधिक तो क्या, हज्जाम से हजामत भी नही कराते हैं। सिर पर वढे हुए केशो और दाढी-मूंछ आदि के केशो को ये अपने हाथ से ही उखाडते हैं, जिसे सभी लोग लुचन (लोच) करना कहते हैं। कवि की यह गीतिका सोलह आना सत्य ही है कि—

गीतिका-छन्द

वोलना भी यत्न से अरु चलना भी यत्न से,
शयन, भोजन आदि सब ही कार्य करत प्रयत्न से।
लुंचनादिक कार्य उसमें घोर दु खदाई सही,
सयमी जीवन विताना खेल बच्चों का नहीं ॥१॥

जगद्वल्लभ, जैनदिवाकरजी के दर्शन कर, उनके पद-पकजो मे लुभाया हुआ मेरा चित-चञ्चरीक, मातुश्री के मुख से निकले हुए ऐसे सुन्दर और सुखद वचनो को सुनकर मैं खिल उठा और सहसा कर-वद्ध होकर मैंने निवेदन किया कि—जननी ! आप यदि प्रसन्न चित्त होकर आज्ञा प्रदान करे, तो मैं भी इस पथ का पथिक वनूं।

मेरे उक्त निवेदन को सुनकर, पहले तो न मालुम पुत्र-प्रेम में वन्धी हुई अथवा मेरी धारणा की दृढता का निरीक्षण करती हुई वह (मातुश्री) बोली—अरे वेटा !, यह तू क्या कह रहा है। तेरे मुख चन्द्र को देख-देख कर ही तो हम हमारे पुत्र-विहीना दु ख के दिन सुख की आशा से विता रहे हैं। पुत्र सुख की लालसा से ही तुझको हमने गोद भी लिया तथा तेरे से हमको वडी-वडी उम्मीदें हैं। हमने

तो यह भी तय कर रक्खा है कि---आईचुकी की शादी भी तेरे साथ ही करना है। फिर तू यह क्या बोल रहा है।

उत्तर मे मैंने निवेदन किया---अम्बे! सुख और दुःख के प्रदाता तो सुकृत और कुकृत ही हैं न। यदि सुख का प्रदाता सुकृत ही है तो, मैं आपसे पूछता हू कि---मेरा जो ध्येय है, वह सुकृत (सुखद) है, या कुकृत (दुःखद) है ?।

मेरे उक्त निवेदन के उत्तर से प्रमुदित हुई वह (मातुश्री) बोली---लाल!, मैं तो तेरी इस बाल्यावस्था और संयमी-जीवन की दुर्ज्ञेय-ज्ञेय व्यवस्था की ओर ध्यान धर कर, मना कर रही हूं। अन्यथा सच्चा सुख तो, तेरे कथनानुसार सुकृत में ही समाया हुआ है।

उत्तर मे मैंने कहा---जननी!, द्वितीया का बालचन्द्र जितनी वृद्धि और कीर्त्ति पाता है, उतनी वृद्धि और कीर्त्ति पूर्णिमा का पूर्ण-चन्द्र पाता है क्या ?। माता!, मैं आपको विश्वास दिलाता हू कि---यदि, आप खुश-दिल होकर मुझे सद्गुरु-चरण-शरण का प्रसाद प्राप्त करा देंगे तो---मेरे द्वारा जिस सुख की वाञ्छा आप रखतें हैं---वह (सुख) शत, सहस्र, लक्ष, कोटि-गुणा ही नहीं,--- असंख्य-गुणा आपको ही प्राप्त होगा।

उत्तर मे मातुश्री ने कहा--- वत्स ?, तू जानता ही है कि--- मैं भी इस परम-पुनीत जैन-धर्म की सच्ची अनुरागीनी हूँ। अतः इस बात को अच्छी तरह से जानती हू कि---

शार्दूलविक्रीडित छन्द

भोगे रोग भयं, कुले च्युति भयं, वित्ते हि भूभृद्भयम्।
माने म्लानि भयं, बले रिपु भयं, रूपे जराया भयम्॥

शास्त्रे वादि भय, गुणे खल भयं, काये कृतान्ताद्भयम् ।
सर्वं वस्तु भयान्वितं भुवि नृणा, वैराग्यमेवा भयम् ॥१॥

परन्तु मेरे मना करने का मुख्य कारण यह है कि— इस पवित्र धर्म मे बतलाये हुए, श्रावक के बारह व्रतो को धारण करने मे बड़े दाने और स्याणे सज्जन भी घबराते (हिचकिचाते) हैं। तो भला साधु के पञ्च—महाव्रत पालन करने मे तुझ से बालक का उत्सुक-होना कहाँ तक उचित माना जाय। इन व्रतो को पालन करना, लोहे के चने चबाने के तुल्य है। तलवार की तीखी धार पर नगे पैरो नृत्य करने के समान है। इसलिये मैं मना कर रही हू कि—मन—मगर को काबू मे कर, मोह—ममता रूपी सलिल से भरे हुए इस भव—समुद्र को तैरने का यह कार्य करना तुझ जैसे बालक की शक्ति के बाहर की बात है। मेरे इस प्रकार से मना करने पर भी अगर तू आग्रह पूर्वक मेरी आज्ञा चाहता ही है तो मैं तुझे निम्नोक्त सूक्ति के शर्त पर सहर्ष आज्ञा देती हू कि—

"अगीकृतं सुकृतिनः परिपालयन्ति" ।

उत्तर में मैंने निवेदन किया कि—मातेश्वरी !, चिन्ता मत कर। देव, गुरु और धर्म के प्रताप से यदि यह तेरा लाल, तेरी शुभाकांक्षा पूर्ण कर पायेगा तो ही तेरी नजर मे आयेगा, अन्यथा नही।

हम (माँ और बेटा) दोनो का इस प्रकार पारस्परिक वार्त्तालाप होने के पश्चात् एक मत होने पर, सहर्ष मुझे अपने साथ मे लेकर मातेश्वरी रतलाम आई। वहाँ पूज्यपाद, वादि—मान—मर्दक, श्रद्धेय सद्गुरु श्री नन्दलालजी महाराज और आचार्यदेव श्री खूबचन्दजी महाराज आदि मुनिवरो के दर्शन किये। तत्पश्चात् शास्त्रविशारद आचार्य श्री खूबचन्दजी महाराज की सेवा मे मातुश्री ने निवेदन किया

कि—गुरुदेव !, मैं मेरे इस बालक को सहर्ष आपके पद–पकजो का आश्रय दिलाना चाहती हू। एतदर्थ मेरी प्रार्थना है कि—यह बालक विद्याध्ययन करने के बाद आपको अपना शिष्य होने के योग्य प्रतीत हो तो आप इसे भगवती दीक्षा प्रदान करने की कृपा करें। अन्यथा मै इस बालक को अपने घर पर वापिस ले जाऊँगी।

आचार्य श्री की सेवा मे इस प्रकार मातुश्री के निवेदन करने पर, उपस्थित श्रावको ने अति हर्ष प्रकट किया तथा धन्यवाद देने के साथ–साथ उन (मातुश्री) से अनुमति पत्र लिखवा लिया और सप्रेम मुझे सम्बोधन करके वे (श्रावक) यो बोले—

॥ दोहा ॥

रागी–पन की छोर रुख, बने विरागी वीर ! ॥
भाग्य–दशा जागी अहो !, भागी भव की भीर ॥ १ ॥

पूज्यपाद आचार्य श्री ने अब मुझे सयम स्वीकृत करने मे सर्व–प्रथम जिस अध्ययन की पूर्ण आवश्यकता रहती है, वह (अध्ययन) प्रारम्भ कराया। गुरु की कृपा से मैंने नौ महीनो मे ही,— समायिक प्रतिक्रमण, दशवैकालिक सूत्र सम्पूर्ण, उत्तराध्ययन सूत्र के अठारह अध्ययन, पच्चीस बोल का थोकडा, पुच्छिसुणं और साधु की गोचरी के १०६ बोल आदि सीख (कण्ठस्थ कर) लिये। इस (अध्ययन) के साथ–साथ केश लुंचन करने का शनै–शनैः कुछ अभ्यास भी मैंने किया।

सिंह का सम्मिलन

विक्रम सम्वत् १९९० का चातुर्मास सानन्द मन्दसोर से उठाकर आचार्य देव मुनि मण्डल के साथ कजेरडा की ओर किया और भाटखेडा

पधारे। यहाँ कजेरड़ा के पाँच श्रावक आचार्य श्री के स्वागतार्थ मे उनके सामने आये। यहाँ से विहार कर कुछ आगे का मार्ग तय करके घाटा चढ़ने का था। यह रास्ता ककर-पत्थरो से अति विकट और जगली जानवरो से भयावना (भयप्रद) होने के कारण, राहगीरो को सुभीता और निर्भयता मिले एतदर्थ सरकार की ओर से पुलिस की चार चौकियें लगा रक्खी है। मैं स्वागतार्थ आये हुए उन श्रावको के साथ-साथ आगे को रवाना हो गया। आचार्य श्री आदि मुनिवर्य कुछ पीछे रह गये। दो चौकियें पुलिस की तो मैंने उन श्रावको के साथ-साथ पार करली। परन्तु अन्ते छोटी अवस्था होने के कारण विकट घाटा की चढाई चढ़ते-चढते मैं थक गया। इसलिये धीरे-धीरे चलने लगा। वे श्रावक आगे निकल गये और मैं अकेला ही उस निर्जन वन मे रह गया। ऐसी परिस्थिति मे दाहिनी ओर से आते हुए वनराज (सिंह) को मैंने देखा। चित्र मे सिंह तो मैंने अनेक देखे थे, किन्तु साक्षात् वनराज को विलोकने का मेरा यह पहला ही अवसर था। अत उसके प्रलयकारी प्रभाव को देख कर मैं धूजने लगा, और सहसा मेरे हृदय मे यह भाव उत्पन्न (जागृत) हो आया कि—यह मेरा काल आ गया।

किंकर्त्तव्य-मूढ बने हुए ऐसे विपत्ति-ग्रस्त समय मे मुझे सद्गुरु के सिखाये हुए धार्मिक-शिक्षण के साथ नैतिक-शिक्षण का यह श्लोक स्मरण हो आया कि—

"विपदि धैर्य मथाभ्युदये क्षमा, सदसि वाक्-पटुता, युधि विक्रम" ।

अत मैंने धैर्यता के साथ नवकार महामन्त्र का स्मरण करके वनराज से निवेदन किया कि—हे हर्यक्ष !, आप यहाँ के राजा हैं। अत अतिथि-स्वरूप आये हुए आपके साम्राज्य मे मुझ अबोध बालक की आप रक्षा करें। मेरे इस प्रकार सद्भाव प्रकट करने पर—वह

वनराज अपना रास्ता काटता हुआ और मेरी ओर दयार्द्र दृष्टि का अवलोकन करता हुआ चला गया। भय से मुक्त हुआ मैं तीसरी चौकी पर सानन्द पहुच गया और पुलिस वालो से सारा वृत्तान्त कहा। उत्तर मे उन्होने मुझसे कहा कि—इसीलिये तो सरकार ने ये चौकियें यहाँ पर बिठाई है। यह तेरे पूर्व कृत पुण्य का ही प्रताप है, जो कि तेरी जान बच गई। इस प्रकार परस्पर मे हम बातें कर ही रहे थे कि—इतने मे आचार्य श्री भी वहाँ पर पधार गये, और सानन्द हम सभी कजेरडा पहुच गये।

स्पर्शनानुसार कुछ दिन वहाँ विराज कर आचार्य श्री कंकडेश्वर होते हुए रामपुरा पधारे। रामपुरा के श्रावक–सघ ने मेरा दीक्षा–महोत्सव रामपुरा मे ही हो, इस बात की अत्याग्रह पूर्वक प्रार्थना आचार्य श्री से की। आचार्य श्री ने उनका अति–आग्रह अवलोकन कर "अहा सुवख" (सुह) की विमल–वाणी द्वारा अनुमति दे दी।

दिव्य–दीक्षा

भव–भय–भजनार्थ विक्रम सम्वत् १९९१, चैत्र सुदि प्रतिपदा, सूर्यवार के सहस्त्ररश्मि का उदय मेरे लिये अति–सुखद और सुहावना था। मध्याह्न के तीन वजे, जगद्वल्लभ, जैन दिवाकरजी के सान्निध्य में भगवती दीक्षा मैंने धारण की। मेरे साथ–साथ श्री हीरालालजी और हगामकुंवरजी तथा उनकी सुपुत्री कमलादेवी ने भी भगवती दीक्षा को धारण की। इस शुभ अवसर पर धार्मिक प्रेम से प्रमुदित हुए अनेक ग्रामो और नगरो के श्रावक–श्राविकाओ का सम्मिलन तथा उनके द्वारा किये गये त्याग–प्रत्याख्यानो का प्रदर्शन बहुत ही सुन्दर रहा। शास्त्रविशारद शान्त–मूर्ति श्री हजारीमलजी महाराज का शिष्य मुझे घोषित किया, जो श्रद्धेय आचार्य श्री खूबचन्दजी महाराज के शिष्य थे।

प्रथम चातुर्मास और प्रथम लुंचन (लोच)

पहला चातुर्मास मैंने वादि-मान-मर्दक, स्थविर-पद-विभूषित श्रद्धेय श्री नन्दलालजी महाराज की सेवा मे किया। उन (श्री नन्द-लालजी महाराज) की महती कृपा से अनेक सिद्धिओ की जानकारी मुझे हुई। जब केश-लुंचन करने का समय आया, तब मेरे गोद के माताजी भी वहाँ आ गये। मेरी नन्ही अवस्था की ओर ध्यान धर कर उन्होंने श्री नन्दलालजी महाराज और श्री हजारीमलजी महाराज को मेरे केशो का लुंचन न करके मुण्डन करवाने की ही सलाह दी। यह बात जब मेरे जानने में आई तो मैंने आग्रह पूर्वक सद्गुरु की सेवा में निवेदन किया कि— "मैं तो लुंचन ही कराऊँगा, मुण्डन नही"। मेरी मातुश्री ने मेरे आग्रह का समर्थन किया और गज सुखमाल आदि मुनिवरो के सुन्दर दृष्टान्तो द्वारा मेरे साहस को प्रोत्साहन दिया। सानन्द लोच हो जाने पर, उसकी खुशाली में मातुश्री ने आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन करने की प्रतिज्ञा कर एक आदर्श माता के रूप मे—अपना कर्त्तव्य पूर्ण किया।

दिल्ली प्रस्थान

सद्गुरु श्री हजारीमलजी महाराज की ससारावस्था की छोटी सहोदरा (बहिन) सती श्री लज्जावतीजी और उनके गुरुणीजी विदुषी महासती श्री चन्दाजी ने मेरे गुरुदेव को दिल्ली पधार कर दर्शन देने की आग्रह पूर्ण प्रार्थना की, अत हम दिल्ली गये। वहाँ पर महा सतीजी से मैंने उर्दू एव प्राकृत का अध्ययन किया।

तदनन्तर दो चातुर्मास के बाद सद्गुरु का आधा अङ्ग रह गया। पूज्य श्री खूबचन्दजी महाराज भी वहीं पर विराजते थे। अनेकों उपचार करने कराने पर भी वेदना शान्त नहीं हुई। अन्ते सन् १९४९

विक्रम सम्वत् १९९७ मे मुझे बिलखता ही विसार कर सद्गुरु श्री स्वर्ग को सिधार गये। गुरु-वियोग से व्यथित हुआ मैं सहभोगी मुनिवरों के साथ विचरता हुआ रतलाम आया। वहाँ पर पण्डितरत्न श्रद्धेय स्वामी श्री सहस्त्रमलजी महाराज का सुयोग मिला। तीन वर्ष पर्यन्त श्रद्धेय श्री स्वामीजी की सेवा मे रह कर मैंने संस्कृत और हिन्दी का अध्ययन किया।

फोटू है या व्यक्ति ?

एक समय का उदन्त है कि—मध्याह्न के समय मे, मैं स्थानक में बैठा हुआ पेपर पढ़ रहा था। उस पेपर में एक फोटू (चित्र) था। उस समय दर्शनार्थ एक भावुक-भक्त आया और मुझे पेपर पढते हुए देख, उसमे जो फोटू था, उसके लिये उसने मुझसे पूछा—महाराज!, यह कौन है ?। तो उत्तर मे मैंने कहा कि—यह जवाहरलाल नेहरू है। वह बोला—महाराज!, साधु मर्यादा के अनुसार ज्ञातव्य दृष्टि से इस प्रकार की भाषा बोलना, आपके लिये उचित नही है। तब मैंने उनको कहा—आप ही वतलाइये, कैसे बोलना ?। तब उन्होंने कहा कि—"यह जवाहरलाल नेहरू का फोटू है"। ऐसा बोलना चाहिए। मैंने उनके उक्त कथन को सहर्ष मान्य किया और अपनी गलती पर पश्चात्ताप किया।

प्रथम-अट्ठाई-तप

मैंने, विक्रम सम्वत् २००० का चातुर्मास पण्डितरत्न श्रद्धेय, स्वामी श्री सहस्त्रमलजी महाराज के साथ मेरे दीक्षित-ग्राम रामपुरे में किया, और आत्म-निर्जरा के हेतु पहले-पहल अट्ठाई-तप मैंने यहाँ पर ही किया। यहाँ पर, तप के प्रभाव से होने वाले दैविक-चमत्कार को भी मैंने देखा है।

आचार्य श्री का (सदा के लिये) वियोग

विक्रम सवत् २००१ का चातुर्मास (ब्यावर) का समाप्त होने पर पौष महीने मे दैवज्ञ–शिरोमणि, पण्डितरत्न श्री किस्तूरचन्द्रजी महाराज ने नागौर (मारवाड) की तरफ विहार करने का इरादा किया। तव आचार्य श्री ने मुझे बुलाकर यो फरमाया कि—वत्स !, तुझे यहाँ रहते हुए दो वर्ष व्यतीत हो गये। इसलिए अब तू मुनि श्री किस्तूरचन्द्रजी महाराज के साथ कुछ भ्रमण कर आ। मेरा हृदय आचार्य श्री की सेवा–सुश्रुषा करने से अलग होने को नही चाहता था,—एतदर्थ मैंने श्रद्धेय आचार्य श्री की सेवा में यो निवेदन किया कि—पूज्यपाद !, मेरी सद्भावना आप श्री की सेवा मे रहने की ही है। इसलिये कृपा कर आप मुझे आपकी सेवा मे ही रहने दें। गुरुदेव मुझे ऐसा लगता है कि—इस बार आप से अलग होने पर मैं आप श्री के दर्शन पुन नही करने पाऊंगा। इस प्रकार मेरे स्पष्ट निवेदन करने पर भी आचार्य श्री ने मुझे नागौर की तरफ जाने के लिए वाध्य किया, और सप्रेम—मेरे सिर पर अपना वरद कर–कमल रख कर यो बोले कि—वत्स !,

॥ दोहा ॥

वहता पानी निर्मला, पडा गँधीला होय।
साधु तो रमता भला, दाग न लागे कोय ॥ १ ॥

होनहार की प्रवलता के कारण आचार्य श्री के उक्त आदेश को सुन कर, तत्काल मुझे महर्षि सद्गुरु श्री वशिष्ठ के प्रति कही हुई मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्रजी की इस सुक्ति का स्मरण हो आया कि—

"यच्चिन्तितं तदिह दूरतर प्रयाति,
यच्चेतसापि न धृतं तदिहाभ्युपैति।"

हृदयेच्छा न होने पर भी, आचार्य श्री का उक्त आदेश पाकर, क्षेत्र–काल और भाव से प्रेरित हुए हम अपने सयमी–जीवन की मर्यादा के अनुसार ग्रामानुग्राम विचरते हुए सानन्द नागौर पहुँचे। वहाँ पर एक वकील साहब के मकान मे उनकी आज्ञा प्राप्त कर हमने विश्राम किया। तप–प्रत्याख्यान आदि धर्म–ध्यान द्वारा सद्गुरु–सेवा–भक्ति का लाभ नागौर के श्रावक–श्राविकाओ ने अच्छा लिया।

देव–प्रकोप

एक दिन का उदन्त है कि—रात्रि मे निद्रा–निमग्न हुए मुझको ऐसा ज्ञात हुआ है कि—मेरे हृदय–पटल पर अतुल वजन आ गिरा है। मैं चट से चौंक उठा और क्या देखता हूँ कि—एक अदृश्य–शक्ति मेरे को दवाये हुए है। मैंने विनम्र वाणी से उसको कहा कि—हे देव !, क्या मैंने आपका कोई अपराध किया है, जो आप मेरे साथ ऐसा दुर्व्यवहार कर रहे हैं ?। उत्तर मे उस अदृश्य–शक्ति की ओर से यह आवाज आई कि—मेरी तुम्हारे साथ पूर्व–भव की शत्रुता है, अतः प्राण–हरण किये बिना मैं तुम्हें छोडने वाला नही हूँ। उसकी उक्त आवाज को सुनकर, मैंने वादि-मान-मर्दक श्रद्धेय सद्गुरु श्री नन्दलालजी महाराज की दी हुई शक्ति का स्मरण किया। उस (शक्ति) का प्रभाव प्रकट होते ही, वह अदृश्य–देव चिल्लाने लगा और यो बोला। महात्मन् !, मेरा अपराध माफ करो, और मुझे बन्धन से मुक्त करो। मैंने उससे यों वचन लेकर मुक्त किया कि—"भविष्य में फिर कभी मैं आपको नही सताऊँगा"।

"तीन दिन बाद आचार्यश्री देवलोक होने वाले हैं" भविष्यवाणी

विक्रम सम्वत् २००२ का नागौर से विहार कर, स्पर्शनानुसार ग्रामानुग्राम विचरते हुए हम जोधपुर आये। वहाँ, खेजडले ठाकुर

साहब की हवेली मे, शास्त्रज्ञ स्वामी श्री केशरीमलजी महाराज आदि मुनिराज विराजते थे, उनके साथ विश्राम किया। अर्द्धरात्रि के पश्चात् जब मैं स्वाध्याय करने को बैठा, तो अकस्मात् एक अदृश्य-शक्ति की यो आवाज आई कि—"तेरे पूज्य आचार्य श्री तीन दिन के बाद देवलोक होने वाले हैं"। प्रात काल होते ही मैंने रात्रि मे आई हुई आवाज को सभी सन्तो के सामने प्रकट की। मेरी बात को सभी सन्तो ने मजाक मे डाल दी। तीसरे ही दिन जब आचार्य श्री के देवलोक होने का तार स्थानीय श्री स्था० श्रावक सघ के नाम पर आया, तब सभी सन्तो ने मुझ से कहा कि—"तुमने कहा था वही हुआ"।

देव-दर्शन

विक्रम सम्वत् २००२ का चातुर्मास श्री हीरालालजी महाराज साहब के साथ पालनपुर में किया और हम लोगो ने सौराष्ट्र की ओर विहार किया। विरमगाँव, वाँकानेर, मोरवी, राजकोट फरसते हुए हम जामनगर पहुँचे। जामनगर के श्री सघ ने चातुर्मास विक्रम सम्वत् २००३ का वही करने की प्रार्थना की, हमने चातुर्मास की मजूरी दी। चातुर्मास के दो महिने (श्रावण व भादवा महिने) निकलने पर आश्विन शुक्ला १० विजयादशमी को रात्रि के बारह बजे के बाद मे, मैं स्वाध्याय कर रहा था कि—अकस्मात् एक विशाल-काय व्यक्ति मेरे सामने बैठा हुआ दिखाई दिया। ध्यान पूर्वक उसकी ओर दृष्टि डालने पर मुझे ज्ञात हुआ कि—यह जवारा का रहने वाला, जैन-धर्मानुरागी, रुगजी जुलाहा है। मैंने उससे कहा कि—रुगजी!, तुम तो स्वर्गवासी हो गये थे। फिर आज जीवित कैसे हो आये। उत्तर मे उसने कहा कि—हाँ, मैं मर कर देव हुआ हूँ और आपके साथ धर्म का राग होने से मिलने के लिये आया हूँ। उसके उक्त कथन के उत्तर मे मैंने सप्रेम यो कहा कि—देव-दर्शन तो कभी निष्फल नही होते। यदि तुम

सचमुच देव हुए हो, और धर्म-राग निभाने के लिये मेरे निकट आये हो, तो मुझे यह वचन दो कि—"मेरी रक्षा तुम हर वक्त करते रहोगे"। मेरे ऐसा कहने पर वह बोला। महात्मन् !, आप स्वय भाग्यशाली है, आपकी रक्षा तो सदैव आपका इष्ट-देव करता ही है, फिर भी मैं आपको यह जाप बतलाता हू, इसके द्वारा जब कभी आप मुझे याद करोगे तब मैं आपके निकट ही हूगा। इस प्रकार वचन-बद्ध होकर वह अदृश्य हो गया।

आकाश-मण्डल और ज्योतिष की जानकारी

जामनगर मे ही, आकाश मण्डल और ज्योतिष शास्त्र के धुरन्धर विद्वान हाथीभाई नेणसी नाम के सद्गृहस्थ निवास करते हैं। मेरे साथ उनका धार्मिक-प्रेम अच्छा हो गया था, एतदर्थ उन्होंने मुझसे कहा—महाराज ! आप सन्त पुरुष हैं और अतिथि के रूप मे मेरे सम्पर्क मे आये हैं, एतदर्थ मेरे हृदय मे यह सद्भावना जागृत हुई है कि—गुरुपदत्त आकाश-मण्डल और ज्योतिष शास्त्र के जानकारी की शिक्षा-स्वरूप भिक्षा जो मेरे निकट है, उसे आप अवश्य ग्रहण करें। सज्जन-शिरोमणी, विद्वद्वर श्री हाथीभाई नेणसी के स्नेहभरे शब्दो का समादर करने के साथ उपरोक्त शिक्षा की भिक्षा मैंने उनसे ग्रहण की।

चातुर्मास में हिजरत

ईसवी सन् १९४७ मे हमारा (मेरा) चातुर्मास वेरावल मे था। जब हिन्दुस्तान और पाकिस्तान का बटवारा हुआ तो जूनागढ़ के नवाब ने पाकिस्तान मे जाने का निर्णय किया। इस निर्णय को सुनकर जूनागढ राज्य मे निवास करनेवाली हिन्दू-प्रजा अति भयभीत हुई और हिजरत करने लगी। वेरावल मे ओसवालो के अनुमान के ५०० सौ घर थे, उनमे से ५ या ७ सद्गृहस्थो को छोडकर अन्य सभी हिजरत कर गये। केवल हमारे वहां ठहरे रहने के कारण ही वे पांच सात

सद् गृहस्थ रुके हुए थे। उस वर्ष दो भाद्रपद मास थे। वेरावल मे होने वाली इस दुर्घटना का वृत्तान्त वायु-वेग के समान यत्र-तत्र पसर गया। इसलिए श्री जैनदिवाकर जी महाराज का तथा श्रद्धेय स्वामी श्री सहस्रमलजी महाराज का आदेश और जैन कान्फ्रेन्स का तार हमारे लिये आया कि—"आप भी वहाँ से विहार करदें"। सद्गुरुओ का उक्त आदेश और कान्फ्रेन्स की सूचना को पा कर, द्वितीय भाद्रपद शुक्ला पंचमी को हमने भी वहाँ से विहार कर दिया। विहार मे हमने देखा कि—ग्राम के ग्राम खाली पडे हैं और घरो के ताले जडे हैं। अति दु:खद इस प्रकार के दृश्य को देखते हुए, हम जब जूनागढ की सरहद पार करने लगे तो वहाँ पर पाकिस्तान की फौज पडी हुई थी। सिपाहियो ने हमको पूछा—आपके पास क्या है, बतलाओ? मैंने कहा, हम जैन भिक्षु (साधु) हैं। सोना, चाँदी; रुपये या पैसा आदि हम हमारे पास नहीं रखते हैं; इसलिये तुम हमे रोको मत, जाने दो। मेरे इस प्रकार कहने पर भी एक सिपाही ने मेरे हाथ मे जो झोली थी, उसको खींस ली। उसकी धारणा थी कि—इनके पास जो कुछ भी माल है, वह सब इसमे ही है। झोली को खोल कर उसने मुझ से पूछा कि—इसमें क्या है। मैंने जवाब दिया कि—इसमे लोचा है। लोचा शब्द के गुजराती मे दो अर्थ होते हैं। धन तथा गीला कपडा। मेरे मुख से निकले हुए लोचा शब्द को सुनते ही प्रमुदित हुआ वह सिपाही चट से उस झोली को खोल कर अन्दर उसमे लोचा टटोलने लगा। जब उसके अन्दर से काष्ठ के पातरे और गीले वस्त्र के सिवाय और अन्य कुछ भी नही पाया, तो वह अति लज्जित हुआ। पार्श्वस्थ सिपाहियो ने उसकी मीठी मजाक करते हुए कहा— ले-ले लोचा।

वहाँ से विहार कर हम वडीया (देवली) आये। आश्विन और कार्तिक ये दो महीने वहाँ पर व्यतीत किये। वहाँ के नरेश ने हमारी सेवा-भक्ति बहुत ही सुन्दर की।

इष्ट अवश्य सहायता करता है।

वडिया मे हम सरकारी उतारा (जो कि नदी के किनारे पर है, उस) मे ठहरे हुए थे। एक दिन की वात है कि—स्थानक के दूसरी मजल पर जब हम आहार कर रहे थे, तब अकस्मात् एक बकरा ऊपर चढ़ आया। वहाँ पर एक पाट पडा हुआ था, उस पर वह चढ गया। वह पाट एक बारी (झरोखे) के नजदीक था। बारी मे लोहे की सलियो लगी हुई नही थी। झरोखे के ऊपर ही नीम की डालियो लह लहा रही थी। बकरा उन डालियो को पकड कर खाने के लिये छटपटा रहा था। मैं आहार करने वैठा ही था और आहार करते हुए मैंने वारी के पास वकरे को देखा। मैंने सोचा, बिचारा अवोध पशु हरी पत्ती के प्रलोभ मे आकर कही आगे न वढ जाये और बारी मे से नीचे को न गिर जाय। ऐसा सोच कर मैं अविलम्ब उठा और रक्षार्थ उसकी ओर जाने लगा। मुझे अपनी ओर आते हुए देख कर वह वकरा भिडक गया। उसने अपने मन मे शायद सोचा होगा कि ये मुझको मारने के लिये आ रहे हैं। पशु जीवन होने के कारण उसको इस वात का ज्ञान नही था कि—जैन साधु षट्काया के रक्षक होते हैं। भयभीत वना हुआ वकरे ने ज्यो ही आगे को कदम बढाया कि तत्काल वारी मे से नीचे जा गिरा। मैंने झरोखे से नीचे को झाँका, तो वह (वकरा) मुझे तडफता हुआ दिखाई दिया। भलाई करते बुराई हासिल होने की लोकोक्ति का ज्ञान मुझे इस घटना से हुआ और मुझे वडा पश्चात्ताप हुआ। मैं अपने मन ही मन मे यो सकल्प विकल्प करने लगा कि यह कलक जीवन भर मेरे हृदय मे शूल की भाँति खटकता रहेगा। देव, गुरु और धर्म के प्रताप से या तो यह बकरा ठीक हो जाय अन्यथा मैं भी इसके साथ—साथ अनशन व्रत धारण कर लूंगा। ऐसा दृढ सकल्प कर, मैंने अपनी आँखो को मूंद कर, मानिन्द पत्थर की मूर्ति सा खडा होकर, महामन्त्र नवकार का स्मरण किया।

थोडी ही देर के बाद आँखें खोल कर मैंने देखा, तो वह (बकरा) सानन्द इधर उधर घूमता फिरता हुआ दिखाई दिया। उस दिन से मुझे यह दृढ विश्वास हो गया कि--"सकट मे इष्ट अवश्य सहायता करता है"।

राजाशाही की समाप्ती

इधर जूनागढ़ पाकिस्तान में जाने की तैयारी कर रहा था। उधर हिन्द को अखण्ड रखने के हेतु मुम्बई मे सांवलदास गांधी की अध्यक्षता मे आरजी हकूमत की रचना की गई थी और वहाँ पर यह प्रतिज्ञा की गई थी कि—"हमारे देश का एक हिस्सा जो पाकिस्तान मे मिलना चाहता है और वह भौगोलिक दृष्टि से भी गलत है। अत उसको हम काबू मे करके हिन्दुस्तान मे ही रक्खेंगे। विजयदशमी के दिन सर्व-प्रथम अमरापुर को सर किया, जो कि बडिया (देवली) के समीपस्थ गाव है। उसके आगे जब आरजी हकूमत के लोग बढे। तो बीच में भावनगर स्टेट का कुछ हिस्सा आता है। वहां पर आरजी हकूमत के सैनिको को रोक दिया। उस वक्त भावनगर का दीवान पटनी था। उसके ऐसा करने पर भी आरजी हकूमत के सैनिकों ने बडी सहनशीलता रखी कि हम भाई-भाई आपस मे क्यो लडें। यह समाचार जब सरदार पटेल तक पहुचे तो उन्होने भावनगर नरेश को बुला कर उसे समय की गति विधि का परिचय सम्यक्तया कराया। भावनगर नरेश समझ गये और तत्काल ही मे अपनी स्टेट सरदार पटेल को सौंप दी। फिर सरदार वल्लभभाई पटेल ने अपने मन में सोचा कि—हमारी भारत-माता के शरीर पर अनुमान के ६०० (सौ) छोटे-मोटे रजवाडे हैं। जो फोडे-फुन्सी के समान हमारे विकास मे रुकावट (बाधा) डालते हैं। अतः इन्हे सर्व-प्रथम मिटाया जाय। इसी धारणानुसार सरदार पटेल ने तत्काल ही राजाशाही का अन्त करने का निर्णय किया।

मारवाड़ी सम्मेलन में

आसनसोल में दिनांक २६-१२-१९५५ को बंगाल प्रान्तीय मारवाडी-सम्मेलन का तीसरा अधिवेशन था। वहां पर करीब-करीब ८०००० के जनता की उपस्थिति थी। मुझे भी उस सम्मेलन मे अध्यक्ष महोदय की ओर से निमन्त्रण मिला। "जैन-धर्म और गौ-रक्षा" के विषय पर भाषण देने को कहा—मैं और बसन्तीलालजी महाराज दोनों एक विशाल पाडाल में पहुँचे और मैंने शास्त्रीय पुरावे के साथ उक्त विषय का प्रतिपादन करते हुए कहा—

(क) हमारी भारतीय परम्परा मे और खास कर जैन परम्परा में पशु रक्षा (प्राणी) का एक बहुत बडा महत्व है। पुराने जमाने में गौ धन की तथा स्त्रियो की सख्या पर से ही मानव के बडप्पन तथा प्रतिभाशाली होने का निर्णय किया जाता था, श्री उपाशक दशा एव अन्तकृत सूत्र इसके बारे मे स्पष्ट है। श्री उपाशक दशा मे दस श्रावको का जिक्र आता है। आनन्द श्रावक ने अनेक गौकुल (दस हजार गायो का एक गौकुल) रक्खे थे। उन श्रावको नें गायो को इसलिये अधिक प्रमुखता दी थी, क्योकि गाय का दूध मादक नही होता है, वह बहुत पौषक व लाभदायक होता है। पशु पालन करने के साथ-साथ मानवों का भी पालन-पोषण होता था। हमारा देश जो कृषि-प्रधान देश है, उसका विकास भी उनके ही द्वारा होता रहेगा। इन्हीं मान्यताओ व सत्यताओ के कारण गौ पालन प्रचलित था व है।

"सराक जाति से परिचय"

(ख) भगवान् महावीर के एक लाख, गुनसठ हजार (१; ५९; ०००) बारह वृत्ति पालने वाले श्रावक थे। प्रभु महावीर ने अन्तिम चातुर्मास जब पावापुरी (पंपा) में किया। उस समय सर्वत्र यह

जानकारी बहुत ही भली प्रकार से की गई थी कि—"भगवान् महावीर" कार्तिक वदी अमावस्या को निर्वाण पधारने वाले हैं। चातुर्मास मे प्रभु के दर्शन करने के लिये १ लाख ५९ हजार श्रावक अपने परिवारो को बैलगाडियो से लेकर अपने ग्रामो से निकल पडे। पुराने जमाने मे मुख्यतया बैलगाडी (रथ) या घोडागाडी (बग्गी) ही यातायात के मुख्य साधन थे। सडकें कच्ची व अस्त व्यस्त थी, आज की तरह सडकें पूर्ण सुरक्षित व समृद्धशाली नही थी। मार्ग मे वर्षा अधिक होने से और कीचड आदि की कठिनाइयो के कारण वे दर्शनार्थी श्रावक रास्ते मे ही ठहर गये और वे वही पर बस गये। इधर भगवान् निर्वाण पधार गये। समय की गति विचित्र है, उनके बाद भारत मे आगे द्वितीय भद्रबाहु स्वामी के समय मे सात वर्षीय एव पाच वर्षीय दो भयकर राक्षसी दुष्काल पडे। उसके परिणाम स्वरूप जैन साधु उधर से पश्चिम एव दक्षिण दिशा की तरफ चले गये।

सन्त तो सरिता के समान है। सरिता के सूख जाने से और सन्तो के परिचय के अभाव से भावुक हृदय अभद्र बन जाता है। उन श्रावको की वश परम्परा की भी स्थिति वही हुई। वे जैन सन्तो के परिचय के अभाव मे जैन धर्म के सस्कारो एव सस्कृति से परे रहने लगे, और वेदान्त सस्कृति का परिचय अधिक मिलने से वे वेदान्ति बन गये, और श्रावक शब्द अपभ्र श होकर श्राक बन गया। अत अब वे लोक श्राक कहलाते हैं।

श्राक जाति मे अभी भी जैन धर्म के सस्कार प्रचुर मात्रा मे विद्यमान है, जातीयगत वे लोग मासाहारी एव शराबी नही है। वे लोग काटो शब्द नही बोलते हैं। दो लाख करीबन अभी भी श्राक लोग है।

श्राक जाति के समपर्क में

मैं दिनाक १६–३–१९५६ को लाल बाजार मे पहुचा, वहाँ पर

श्राक जाति के १३ घर हैं। श्राक जाति के मन्त्री श्री धरेणो-धरमाजी ने श्राक जाति का विस्तृत परिचय कराया और थोडा समय हमे वही देने को कहा उन्होने अपना सहयोग देने का भी आग्रह किया।

मैंने व मन्त्रीजी ने श्राक जाति के प्रचार की योजना बनाई। मन्त्रीजी ने योजना तैयार की व, "कहा कि आपके साथ श्राक जाति के चार व्यक्ति रहेगे। उनमे से दो व्यक्ति, जिस गाँव मे आपको जाना होगा, उस गाँव मे एक दिन पूर्व मे पहुच कर आपके वहाँ पधारने की सूचना, आपका परिचय व आने का उद्देश्य आदि बतला कर वे वापिस साथ आपको आकर उस गाँव की परिस्थिति बतला देंगे"। प्रचार के लिये पुस्तको व पर्चों की काफी तादाद मे व्यवस्था की गई।

हम आगे अग्रसर होने लगे और प्रोग्राम के अनुसार दिनाक १७-३-१६५६ को हम मेथून डेम पहुचे। यहाँ पर श्राक जाति के चार घर है, उनको जैन धर्म का परिचय कराया। इस प्रकार हमारा कदम विकास के पथ पर अग्रसर होता गया, व श्राक जाति से निकटतम सम्पंक बढता गया।

मानस-परिवर्तन

दिनांक २७-३-१६५६ को लाल बाजार (न्यामतपुर, बगाल) से मैं उस प्रान्त मे रहने वाले सराक जाति के लोगो से जो कि वे पहले जैन-धर्मानुरागी थे, उन्हे धर्म-बोध कराने के लिये विहार किया। तो प्राय सभी छोटे-मोटे ग्रामो मे मेरे पहुँचने की तारीख पहले से ही घोषित हो गई थी। उन गाँवो मे एक गाँव ऐसा भी था—जिसका नाम मदनतोड था। जहाँ सराक जाति के लोग स्वय (खुद) तो नवरात्रि मे बलि नही चढाते थे, परन्तु पैसा देकर बलि चढवाते थे। मुझे जिस दिन उस गाँव मे पहुँचने का था, उसके एक दिन पहले ही

उन लोगो को पत्र द्वारा तथा व्यक्तियो द्वारा यो सूचित करवा दिया था कि—कल जैन साधु आपसे सपर्क साधने के लिये आ रहे हैं। उनका समर्पक विवेक युक्त करें और आपको जो भी जानकारी उनसे प्राप्त करनी हो, वह शिष्टता पूर्वक प्राप्त करें। इसके ऐवज में उन्होंने पत्र एव व्यक्तियो द्वारा कहलाया कि—हमारे यहाँ तुम मत आना। यदि हमारे मना करने पर भी तुम यहाँ आओगे तो तुम्हारा बहुत अपमान होगा। काले झण्डे दिखलाये जायेंगे। हो सकता है कि और भी कुछ अघटित घटना घट जाए।

मैंने सोचा, अन्यत्र सभी जगह सन्मान मिलता है, तो कही पर अपमान भी सहन करना चाहिये। किसमिस खाने वाले को कडवी वादाम भी खानी पडती है। ऐसा सोच कर, भगवान् का स्मरण करता हुआ मैं उस गाव मे प्रोग्राम के अनुसार पहुँच गया। वहाँ जाने पर मुझे आश्चर्य हुआ कि—जहाँ से मेरे अपमान होने की सूचना आई थी, वहाँ मेरा सन्मान करने के लिये हजारो नर—नारी खडे हैं। मैं उनके निकट गया तो सभक्ति सभी ने मेरा स्वागत किया और अच्छे स्थान पर मुझे ठहराया, दिन भर प्रेम पूर्वक प्रश्न–उत्तर वार्तालाप के वाद रात्रि मे मेरे भाषण के पश्चात् विविध विषयो पर प्रश्नोत्तर और हुए और सभी लोग वडे प्रसन्न हुए। सर्व–सम्मति से उनके मुखिया ने उठ कर स्पष्ट शव्दो मे यो घोषित किया कि—वलि के लिये हमारी तरफ से जो रुपये दिये जाते थे। वे रुपये आज के वाद हम नही देंगे, और नही ऐसे हिंसक कार्यो मे हमारा किसी प्रकार का सहयोग भी रहेगा। महामन्त्र श्री नवकार के जाप के प्रभाव से इस प्रकार का मानस–परिवर्तन हुआ विलोक कर मेरी श्रद्धा उसके प्रति और अधिक वढ गई। इस प्रकार चालीस गाँवो मे प्रचार किया।

उजड़ा जीवन फिर बसा

विहार के एक प्रसिद्ध ग्राम मे वहुत से अग्रवाल वन्धु भी रहते

हैं, वे सभी लोग वैष्णव धर्मानुरागी है। परन्तु एक कुटुम्व ऐसा था, जो जैन धर्म का रागी नही था, नाम का जैन था। कुछ व्यक्तियो के साथ धर्म–प्रेम हो जाने पर मुझे उस कुटुम्व की जानकारी मिली कि—इसके घर मे कुल चार व्यक्ति हैं। सेठ, सेठानी और पुत्र तथा पुत्र–वधू। परन्तु पिता और पुत्र का व्यवहार जैन–धर्म से विल्कुल विरुद्ध है, कृपा करके यदि आप इन (पिता–पुत्र) को सप्तव्यसनों से मुक्त कर, जैन–धर्मानुरागी बना दें, तो आपका वहुत वडा उपकार होगा। मैंने कहा— आप लोगो का कथन यथार्थ है, मेरा उनके साथ वार्तालाप होने दो। भक्तो की भव्य भावना और स्पर्शना की प्रवलता से हमारा चातुर्मास वहाँ ही निश्चित हो गया। वायो के साथ कभी–कभी उस सेठ की पत्नी अपनी पुत्र–वधू को साथ लेकर व्याख्यान सुनने को आने लगी। एक दिन उस सेठानी ने गोचरी के लिये प्रार्थना की। मैं उसके वहाँ पर गोचरी को गया। ज्यो ही मेरा प्रवेश उसके घर मे हुआ कि—घर के दूसरे रास्ते होकर वह सेठ वाहर को चला गया। विना वन्दना किये ही सहसा पति के वाहर चले जाने पर लज्जित हुई सेठानी ने अपने घर की सारी दु खद भरी कहानी मुझे कह सुनाई। मैंने उत्तर मे सेठानी को कहा— तुम अट्ठाई–तप करो। तप के प्रभाव से सब कुछ अच्छा हो जायेगा। मेरे इस प्रकार कहने पर, सेठानी ने अपनी पुत्र–वधू को अट्ठाई–तप कराया। अट्ठाई–तप पचखाने के लिये वाध्य होकर सेठ और उसके पुत्र को मेरे निकट आना पडा। मैंने उनको मगलीक सुना कर कहा—सेठ !, धर्म का लाभ लेने के लिये आया करो। मेरे कथन के उत्तर मे उस (सेठ) ने अपने मन्तव्य प्रकट किये। गुरु की कृपा से मैंने उन मन्तव्यो का समाधान सम्यकतया किया। जिसको सुनकर वह प्रसन्न हो गया और जैन–धर्म का सच्चा अनुरागी वन गया। सारा कुटुम्व पवित्र वन गया।

———

सिंदरी में मैं

सन्तो का विचरण बहुधा करके जनता के हित के लिये होता है। वे सदा विचारा करते हैं कि—जड और चैतन्य के रस्तो मे फेर-फार होता है, या नही। अगर होता है, तो किस प्रकार से होता है। वैज्ञानिक और सन्त, विश्व मे सेवा का भाव लिये हुए कार्य करते हैं। विज्ञान के कार्य की जानकारी भी बहुधा आर्थिक जीवन के विकास मे सहायक बनती है। सिंदरी मे बहुत बडे पैमाने पर खाद्य का निर्माण होता है। वैज्ञानिको का मन्तव्य है कि—खेती के लिये खाद उतनी ही आवश्यक है कि जितना मनुष्य के लिए आवश्यक भोजन है। यहाँ पर मिट्टी से खाद बनता है और गन्धक भी बनता है। मशीनें ऑटोमैटिक काम करती है। पूरे कारखाने का एक नियन्त्रण कमरा है। उस (कमरे) मे बैठा-बैठा कार्य-कर्त्ता यह जान लेता है कि कौनसी मशीन कितना काम कर रही है। किस मशीन में कहाँ खराबी है, इत्यादि। श्री मेहता साहब जो कि पावर-प्लान के सुपरिन्टेन्डेन्ट (मैनेजर) हैं, उनके आग्रह से, उक्त कारखाने के सभी कार्यकर्त्ताओ की उपस्थिति में—"जीवन का विज्ञान" इस विषय पर मेरा भाषण हुआ। भाषण को सुनकर सभी लोग बहुत प्रसन्न हुए।

ईमानदारी का नमूना

वहाँ (सिंदरी) से विहार कर के भजुडीह होते हुए हम दिनाक ३-१२-१९५६ को तालगडिया स्टेशन पर पहुँचे और वहाँ के स्टेशन मास्टर से मैंने कहा—यहाँ पर हमे विश्राम करना है—अगर आप कहे, तो हम इस मुसाफिरखाने मे ठहर जाएँ। स्टेशन मास्टर साहब तडक कर बोले—यहाँ जगह नही है। इतने मे रेल-गाडी आई। मैंने सोचा—इस गाडी मे कोई जैन-बन्धु हो तो उससे कुछ ।

याचना करे। ऐसा सोच कर मैं रेल-गाडी के सामने निकट जा खडा हुआ। मेरे को खडा देख कर जो जैन-बन्धु उस गाडी मे थे वे नीचे उतरे और मुझे सविधि वन्दना की। मैंने उनसे आहार की याचना की। वे मुझे आहार देकर वापिस उसी गाडी मे बैठ गये। उस स्टेशन से २० या २५ पैसेंजर गाडी मे बैठने वाले थे—और गाडी वहाँ पर बहुत कम समय ठहरती थी, कितनेक व्यक्तियो को तो स्टेशन मास्टर ने टिकट दिये और बहुधा पैसेन्जरो से पैसे लेकर गार्ड बाबू से कह दिया कि इनको अपने-अपने स्टेशनो पर उतार दें। यह कहते हुए कुछ रुपये गार्ड बाबू के हाथ मे रख दिये—मैं खडा-खडा उक्त दृश्य को देखता रहा। गाडी के चले जाने के बाद, मैंने मास्टर-साहब से (उनके किये हुए अनुचित व्यवहार का संकेत करके) कहा—आपके तो कमाई बहुत अच्छी होती है ? मर्म-भेदी मेरी बात को सुनकर मास्टर साहब लज्जित होकर आजीजी करने लगे, और अपनी भूल कबूल की।

विकास विद्यालय में मेरा भाषण

१-३-५७ को मैं विकाश विद्यालय मे पहुँचा। यहाँ पर अनेक जैन-मुनियो का शुभागमन हुआ, परन्तु विद्यार्थियो को इनके प्रवचनो का लाभ नही मिला। उक्त विद्यालय मे प्राय सपत्ति-शाली सेठो के बालक ही पढते हैं। वहाँ के व्यवस्थापक से जब मेरा परिचय हुआ तो उसने आग्रह पूर्वक यो निवेदन किया कि—महाराज !, आपके प्रौढ अनुभव का लाभ विद्यार्थियों को मिले तो अति उत्तम होगा। उनके आग्रह को मैंने स्वीकार किया, और करीब ४०० सौ विद्यार्थियो की उपस्थिति मे—"विद्यार्थियो का कर्त्तव्य" इस विषय पर मेरा भाषण हुआ। भाषण को सुनकर सभी विद्यार्थी प्रसन्न हुए और उच्च-श्रेणी के विद्यार्थियो ने जीवन-पर्यन्त सप्त-व्यसनो से मुक्त (दूर) रहने की प्रतिज्ञाएँ की।

नैसर्गिक दृश्यों के बीच में

विकाश विद्यालय से विहार कर, कई मीलो का रास्ता पार कर, जब मैं रामगढ जा रहा था तो वहाँ एक साथ सात मील पर्यन्त उतार का रास्ता पार करना पडा। उस रास्ते के बीच आने वाले तथा दूर-दूर के पहाड और उनके झरने तथा नदियो के प्रवाह का दृश्य मुझे नन्दन-वन की स्मृति दिलाने लगा। यहाँ चाय के बाग़ान भी देखे।

अभयारण्य में अभयजीव

वहाँ से विहार कर, हजारी बाग जाते समय रास्ते मे अभयारण्य आता है। सरकार ने उस अरण्य एव पशु-पक्षियो (वन) की रक्षा के हेतु कई मीलो तक काँटेदार तारो की बाड बाँध दी है, और जगह-जगह इस प्रकार लिखा हुआ रक्खा है कि—"इन जीवो की प्राण-रक्षा आपके हाथ मे है।" वहाँ पर्वत पर एक विशाल-भवन बना हुआ है, उस भवन से, निर्भय विचरण करते हुए भिन्न-भिन्न भाँति के वन-पशुओ के भी दर्शन हो सकते हैं। मैंने भी उस भवन से सिंह आदि वन-पशुओ को देखा। तदनन्तर हम हजारी बाग पहुँचे।

महारानी ललिता राज्य लक्ष्मी

हजारी बाग से विहार करने पर करीब १६ मील की दूरी पर सूरजपुरा गेट (पद्मा-गेट) नाम का एक दरवजा (स्थान) आता है। यहाँ से अन्दर प्रवेश करने पर हजारीबाग़ के महाराजा के महल आते हैं। हम तो दरवाजे के निकट जो स्कूल है उसके एक मकान (कमरे) मे ही ठहर गये। वहाँ अनेक व्यक्तियो के साथ वार्त्तालाप हुआ—जो यह भी नही जानते थे कि—जैन-साधु कौन होते हैं, और उनकी वेष-भूषा कैसी होती है। वे लोग हमारा विचित्र वेश देखकर

चकित हो, यो पूछने लगे तुम कौन हो, कहाँ रहते हो, कौनसा तुम्हारा देश और धर्म है। इत्यादि। उनके यो पूछने पर, मैंने कहा—

ना मन्दिर है, ना मस्जिद है, ना आश्रम, गुरुद्वारा है।
जहाँ हम बैठे वही आश्रम, और वही गुरुदेव हमारा है॥

हम जैन भिक्षु (साधु) पैदल यात्रा करते हैं। ऐसा कह कर जैन मुनि जीवन का फारम दिया।

जैन मुनि-जीवन

१—ये पैसा वगैरह धातु मात्र पास नही रखते।
२—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य व अपरिग्रह के पूर्ण धारक होते हैं।
३—सवारी मात्र नहीं करते और न पैरो मे जूते, खडाउ आदि ही पहनते हैं।
४—किसी प्रकार की नशीली वस्तु का सेवन नही करते।
५—शुद्ध सुसस्कारित घर मे शुद्धतापूर्वक बना भोजन लेते हैं।
६—सूर्यास्त के बाद न खाते हैं न पीते है।
७—मर्यादित वस्त्रों के अलावा ज्यादा नही रखते।
८—प्रतिपल विश्व-शान्ति की ही कामना करते है।
९—मुंह से निकलती हुई जहरीली हवा से बाहर के जन्तुओ को कष्ट नहीं पहुँचे, इसलिए मुँह पर कपडा बाँधते हैं (जिसे मुख वस्त्रीका) कहते हैं।
१०—एक हाथ मे ऊन का बना हुआ गुच्छा (अहिंसा का प्रतीक) रखते हैं।
११—भोजन के लिये काष्ट के पात्र रखते हैं।
१२—ऊँच-नीच व जातीय भेद से रहित उपदेश देते हैं।
१३—हाथों से बालो का लोचन करते हैं।
१४—राग-द्वेष को जीतने मे सचेत रहते है।

तिर्थंकर भगवान महावीर की वाणी

१—सत्य ही ईश्वर है।

२—दूसरे को नीच समझकर अपने को नीच न कर।

३—पापी से घृणा न कर, पाप से घृणा करना ही मानवता है।

४—सुख-दुःख का देने वाला ईश्वर नही, अपितु अपनी आत्मा ही है।

५—ब्रह्मचर्य से बडा कोई तप नही है।

६—कटु या अप्रिय शब्द से मौन अच्छा है।

७—धर्म, जाति, लिंग, वेश, देश से परे है।

८—गया हुआ समय लाख प्रयत्न करने पर भी वापिस नही आता है।

९—मनुष्य की आयु का एक-एक क्षण अमूल्य है।

१०—जाति से कोई ऊँचा नही, किन्तु अपने कार्यो से है।

११—अहिंसा हमेशा मनुष्य को वीर, साहसी और पवित्र बनाती है।

१२—दुनियाँ के प्राणियो को यदि आप जीवन नही दे सकते है, तो उनके जीवन को हरने का आपको कोई अधिकार नही हैं।

१३—विश्व के प्राणियो के साथ अपने कुटुम्ब सा प्रेम करो।

१४—निष्काम क्रिया ही फलवती होती है।

इस (फार्म) मे एक तरफ, जैन-मुनि-जीवन सक्षिप्त नियम अङ्कित किये हुए हैं और दूसरी तरफ भगवान महावीर की वाणी का सदुपदेश सक्षिप्त मे लिखा हुआ है। उस (पेम्पलेट) को पढकर सभी सज्जन बडे प्रभावित हुए। रात्रि का विश्राम हमने वहाँ किया। प्रातःकाल होते ही हम हमारे प्रोग्राम के अनुसार विहार कर आगे को रवाना हुए। अनुमान से करीब तीन मील तक हम पहुँचे होंगे कि—पीछे से एक सुन्दराकार कार शीघ्रगति से मधुर शब्द करती हुई हमारे

निकट आकर रुकी। एक व्यक्ति उस (कार) मे से नीचे उतरा और अपना परिचय देते हुए यो बोला। मैं हजारीबाग के महाराजा का ड्राईवर हूँ, और आपके दर्शन के लिये राजा, रानी तथा राज-कुटुम्ब अति उत्सुक हैं, उन्होने आपके लिये यह कह कार भेजी है, अत कृपा कर आप वापिस चलिये। उसके ऐसा कहने पर मुझे न तो राजा-महाराजाओ द्वारा इस प्रकार सन्मानित होने का हर्ष हुआ और न उस सन्मान को ग्रहण करने मे इन्कार कर देने का विवाद हुआ। कारण कि, मैं तो उन फकीरो मे से हू, जो सदा प्रभु से यो प्रार्थना किया करते हैं।

"तूँ दे मस्त-फकीरी वह मुझको,
शाहों की भी परवाह न हो मुझको।"

इसलिए उस ड्राईवर को मैंने कहा—आपके राजा-रानी साहिब को कैसे मालूम हुआ कि—हम जैन साधु इधर से गुजरते हुए जा रहे हैं? तब उसने जैन-मुनि-जीवन वाला पेम्पलेट मुझे दिखलाया और कहा इस पेम्पलेट से। तब मैंने उसको कहा—भाई! यह पेम्पलेट महाराजा ने ध्यान-पूर्वक नही पढा है, इसीलिए हमारे हेतु उन्होंने यह कार भेजी है। देखो, इस पेम्पलेट के अन्दर अङ्कित किये हुए तीसरे नियम मे यह साफ लिखा हुआ है कि—जैन-मुनि किसी प्रकार की सवारी मे नही बैठते हैं, और नही पैरो मे जूती या खडाऊ भी पहनते हैं। खैर, हमारी ओर से महाराजा और महारानी तथा राज-कुटुम्ब को धर्म-सन्देश कहना, और कहना कि वे (जैन साधु) आज वरही चट्टी ही टहरेंगे। अगर उनकी इच्छा धर्म-लाभ लेने की है तो वहाँ ले सकते । ऐसा कह कर हमने आगे को प्रयाण कर दिया।

थोडी दूर वहाँ से चलने पर हमारी दृष्टि एक खेत पर जा गिरी, जिसमे ईख पीले जा रहे थे। कल भी हमको आहार पानी

नही मिला था अत भूख और प्यास वहुत सता रही थी इसलिये हमने सोचा, चलो इस खेत मे यदि भक्त की सद्भावना से ईख का रस मिल जाय तो चेतना को कुछ चैन मिल जाय। ऐसा सकल्प सोचकर मैं उस खेत के मालिक के पास गया और ईख रस के लिये याचना की। मेरे करने पर वह खेत-मालिक अपनी भृकुटी तान कर सहसा यो बोला। चले जाओ, यहाँ से। यह तो राहगीरो का आम रास्ता है। हम किस-किस को रस पिलायें। आखिर मैं भी गृहस्थ हू। मुझे तुम्हारी तरह कगाल नही वनना है।

हमने कहा अच्छा भाई तेरी इच्छा ऐसा कह कर हम ज्योही सडक पर पहुचे कि पीछे से दो स्टेशन वेगन मोटरें वायु वेग के समान चलती हुई हमारे निकट आ खडी हुई और उनमे से सनासन स्त्री-पुरुष नीचे उतरे, तथा चारो ओर से हमको घेर कर यो वोले—महाराज!, आपने हमारे पर महरबानी नही की। हम तो आपके दर्शनार्थ लालायित हो रहे थे, किन्तु ड्राईवर ने आकर निराशा के समाचार सुनाये तो हमको बडा दुक्ख हुआ। खैर, जो कुछ हुआ सो हुआ। अव आप कृपा करें और वापिस पधार कर हमारे महलो को पावन करे।

उनके इस प्रकार प्रार्थना करने पर, मैंने कहा—राजमाताजी! साधु के लिये महल और कुटिया समान है। आपकी भावना भव्य है, एतदर्थ प्रशसनीय है। किन्तु हम पाँच मील तो चल कर आ गये हैं, और तीन मील और जाना है। वहाँ से फिर तीसरे पहर मैं चल कर, रास्ते मे जहाँ कही विश्राम की अनुकूलता होगी वहाँ रात्रि भर विश्राम करके कल हमे झूमरीतलैया जाना है। इसलिये हम वापिस आपके साथ चलने के लिये लाचार है।

तव उन्होने कहा, क्या आप पैदल ही यात्रा (भ्रमण) करते हैं? मैंने कहा, हाँ! तव राजमाता ने कहा, आज के इस साधन-सपन्न

युग मे पैदल यात्रा का कोई महत्व नही रहा है। मैंने कहा—ऐसी कोई बात नही। पैदल यात्रा का महत्व हमारे यहाँ बहुत बडा है। राजमाता ने पूछा, वह कैसे? मैंने कहा, हमारे चरम तीर्थंकर भगवान् श्री महावीर प्रभु ने यह स्पष्ट घोषित किया है कि—मेरा शिष्य वही हो सकता है, जो पैदल यात्री हो, अकञ्चित वृत्ति वाला हो, सात्त्विकता के साथ सयमी-जीवन यापन करने की क्षमता रखने वाला हो।

राजमाता ने कहा—पैदल यात्रा का उद्देश्य क्या है?

मैंने कहा—प्रत्यक्ष मे ही परखलो। अगर रेल, मोटर या हवाईजहाज द्वारा मे सफर करता तो राची से सीधा पटना पहुच जाता, आज आपसे जो मुलाकात-वार्तालाप हो रही है वह नही होती। अत जैन साधुओ के पैदल-यात्रा करने का उद्देश्य यही है कि—पाँच-सात घर के छोटे से ग्राम से लेकर बडे-बडे शहरो मे पैदल यात्रा कर, वहाँ की जनता के सपर्क मे आकर, उनके मानस को परख सके, तथा उनकी सस्कृति और रहन-सहन एव विचारो को जान सके कि कौन किस प्रकार से अपना जीवन यापन करता है। पैदल यात्रा के द्वारा जन-सेवा और देश-सेवा जैसी और जितनी होती है वैसी और उतनी अन्य सभी वाहनो द्वारा यात्रा करने से नही होती। पैदल यात्रा के उद्देश्यार्थ किये गये मेरे उक्त विवेचन को सुनकर वे सभी बहुत प्रसन्न हुए, और ऊपरा-ऊपरी नोटो की गड्डियें मेरे भेंट करने लगे। उनकी भक्ति-भावना से भरा हुआ उस समय का वह दृश्य देखने के ही योग्य था, कथन करने के शब्द मेरे पास नही है।

उत्तर मे प्रमुदित हुआ मैं बोला। भद्रपुरुषो!, आपकी सद्भक्ति, सद्भावना और सुन्दर भेंट ने मुझे मुग्ध कर दिया है। एतदर्थ आपकी सद्भक्ति और सद्भावना को तो मैं सहर्ष स्वीकार करता हूँ। किन्तु मैं अकिंचन व्रतधारी साधु होने के कारण आपकी इस सुन्दर भेंट

को स्वीकार करने मे असमर्थ हूँ। जैन-साधुओ का यह नियम है कि—सोना-चाँदी रुपया, पैसा आदि अपने पास वे नही रखते, और नही उक्त प्रकार की—की हुई भावुक भक्तो की भेंट को भी स्वीकार करते।

उन्होंने कहा—इसके स्वीकार करने मे आपको क्या हर्ज है ?

मैंने कहा अनेक आपत्तियो की मूल बुनियाद यही है। इसलिये हम इसे स्वीकार नही करते। इससे दूर ही रहते है। इसके स्वीकृत करने पर भेद-भाव उत्पन्न हो आता है। जैसे एक श्रावक (भक्त) ने तो एक हजार रुपये भेट किये और दूसरे श्रावक ने पाँच पैसे भेंट किये। उस समय स्वय हमारी दृष्टि मे यह भेद उत्पन्न हो आयगा कि—इस भक्त की भावना हमारे लिये बहुत अच्छी है जो हजार रुपये भेंट किये, और इस भक्त की भावना हमारे लिये साधारण ही है जो पाँच पैसे ही भेंट किये। इस प्रकार समदर्शी कहलाने वाले हम साधुओ की दो दृष्टि हो जायगी और पैसे के गुलाम बन जायेंगे। इसलिये जो सच्चा साधु है—फकीर है, वह किसी प्रकार की सम्पत्ति नही रखता है और न रुपया आदि किसी प्रकार के द्रव्य की भेट ही को स्वीकार करता है। निर्ग्रंथ शब्द का अर्थ ही द्रव्यादि सपत्ति की ग्रथी स दूर रहना है। साधु को तो सिर्फ जीवन-निर्वाह के लिये अन्न और वस्त्र चाहिये। वह भी गृहस्थ के यहाँ से जैसा भी समय पर साधु-मर्यादा के अनुसार मिल जाय, उसे लेकर अपना गुजरान चला ले। इस पर भी भगवान् महावीर के आदेशानुसार जैन-भिक्षु (साधुओ) के लिये तो अन्न-वस्त्र आदि जीवन-निर्वाहार्थ लेने मे भी और अधिक कठिन नियम (प्रतिबन्ध) लगाये गये हैं। यथा भोजन के लिये हमारे यहाँ नियम है कि—शुद्ध सस्कारिक घरो मे और स्वच्छता पूर्वक बना हुआ भोजन दो-चार घरो मे से थोडा-थोडा मधुकरो के रूप मे ग्रहण करते हैं। गुरु भक्ति मे विवश हुआ यदि कोई भक्त हमारे लिये ही सरस भोजन बनाये और उसका सकेत हमे हो जाय तो हम उस भोजन को भी ग्रहण नही करते।

कारण कि—भोजन की स्पेशल तैयारी तो मेहमानो के लिये होती है, भिक्षुक (साधु) के लिये नही। साधु तो भिक्षा लेता (करता) है और शरीर को भाडा देता है, उसको तर माल की स्पृहा नही होती। रूखा-सूखा भोजन समय पर मिल जाय उससे शरीर का भाडा चुका कर निर्द्वन्द हो प्रभु-भजन मे मगन रहना ही उस (साधु) का मुख्य ध्येय है।

मेरे द्वारा किये गये साधु-जीवन के विवेचन को सुनकर, राजमाता और उनके साथ आये हुए सभी सज्जन बहुत प्रसन्न हुए, और स विनय बोले। महाराज! जिस प्रकार साधु-धर्म का सुन्दर उपदेश आपने कृपा करके हमको सुनाया है, उसी प्रकार हमारे (गृहस्थ) धर्म का सदुपदेश भी यत्किचित् (थोडा-सा) सुनाने की कृपा करें।

मैंने गृहस्थ-जीवन का उद्देश्य एव उसकी सफलता के विषय पर करीव एक घण्टा उपदेश दिया। जिसको सुनकर सभी सज्जन प्रसन्न हुए और अपनी श्रद्धा के अनुसार त्याग-प्रत्याखान किये। फिर राजमाताजी और सभी सज्जन यो बोले। गुरुदेव! आप हमे कृपा कर यह वचन दीजिये कि—स्पर्शनानुसार जव कभी इस ओर आप पधारे तो, हमे दर्शन देकर कृतार्थ किये बिना आगे को न पधारें।

मैंने कहा—जैन-साधु ही नही, किसी भी सम्प्रदाय का सच्चा साधु आपके कथनानुसार वचन-वद्ध नही होता। वह तो वायु की भाति स्वतन्त्रता पूर्वक ही विचरण करता है। हाँ, भावुक भक्त की सद्भावना उसे अपनी ओर खीच कर ले जाय यह बात दूसरी है, परन्तु साधु अपनी इच्छा से वचन-वद्ध नही होते। आपकी भावना विशुद्ध और उत्तम है, सन्तो की सेवा आपको प्रिय है, और यही भारत की पारम्परिक संस्कृति है। यहाँ पर भोगियो को नमस्कार नही है, किन्तु योगियो (त्यागियो) को नमस्कार है।

राजमाताजी बोली—गुरुदेव ! वरही चट्टी कितने समय तक ठहरेंगे ? मैंने कहा—तीन या चार घण्टे तक ।

राजमाताजी ने कहा—राजरानीजी की भी इच्छा आपके दर्शन करने की है। वे जरूरी कार्य होने की वजह से अभी—मेरे साथ नही आ सकी। कुछ समय के पश्चात् आपके पुनीत दर्शन करने के लिए वे अवश्य आयेंगी।

महाराजा साहब भी इस सद्भावना को लेकर हजारीबाग गये हैं कि—महात्मा मेरे यहाँ पधारेंगे और दो-चार दिन का विश्राम करेंगे। शान्ति के साथ सेवा करने का तथा उनके सदुपदेश का लाभ हमे मिलेगा। उन्हे यह पता नही था कि—आप इतने निस्पृही (निर्मोही) है। इस प्रकार कह कर, राजमाताजी आदि सभी सज्जन हर्ष के अश्रु वहाते हुए, मोटरो मे बैठ कर चले गये।

हम यहाँ से विहार कर के वरहीचट्टी पहुँचे तो गाँव में ठहरने के लिए जगह नही मिली। बाजार मे होकर हम जा रहे थे तो, हमनें क्या देखा कि एक कसाई, सडक के किनारे पर, हाथ मे छुरा लिये वकरे को मारने की तैयारी कर रहा था। अकस्मात् मेरी दृष्टि उसकी ओर जा गिरी। तत्काल मैं उसके निकट गया और प्रेम-पूर्वक उसको यो कहा। भैया ! यह तू क्या कर रहा है। इस प्रकार की घोर हत्या और वह भी जाहिर रास्ते पर, जो कि कानूनन भी एक दम खिलाफ है। ऐसा कहकर, उसके हाथ से वकरे को छुडाकर, वकरे के स्थान पर मैं बैठ गया, और उस कसाई से मैंने कहा, पहले मेरी गर्दन का छेदन कर। आम रास्ता था, सैकडो लोग उक्त दृश्य को देखने लगे। सभी मेरे कृत्य की सराहना करते हुए यों वोलने लगे। महाराज ! हमको यहाँ रहते वहुत वर्ष हो गये, परन्तु किसी ने इस कार्य का विरोध नही किया। कारण कि वहुत से लोग तो मांस-भक्षी

ही हैं, और बहुतो को किसी के जान की क्या परवाह ? आप ही ने आज यह अहिंसा का अनोखा आदर्श उपस्थित किया है। मेरे उक्त कृत्य का उस कसाई पर और उपस्थित जनता पर बहुत बडा प्रभाव पडा। तथा भविष्य मे ऐसी हिंसा वहाँ पर नही होने देने का प्रण (प्रतिबन्ध) किया।

तदनन्तर लोगो ने मुझ से पूछा, आज के लिये अब आपका क्या प्रोग्राम है। मैंने कहा—स्वल्प समय के लिये हम यहाँ विश्राम करके फिर आगे को जाना है। तब एक गृहस्थ बोला—गाँव के बाहर मेरा एक मकान है, वहाँ आप सानन्द ठहरिये। उस सद्गृहस्थ के आग्रह से हमने उस मकान मे विश्राम किया। बहुत से सज्जन हमारे पास आ बैठे और धर्म-चर्चा होने लगी।

ऐसी परिस्थिति मे एक घण्टा व्यतीत हुआ होगा कि एक सुन्दर मोटर वहाँ आकर खडी हो गई। महारानीजी उसमे से नीचे उतरी और सादर नमस्कार करने के बाद हम को सद्भावना पूर्ण यो स्नेहोपालम्भ देने लगी। महाराज ! हम सभी आपकी खूब इन्तजारी कर रहे थे। आजपर्यन्त मेरी तो यह दृढ-धारणा रही है कि—सन्त बडे दयालु होते हैं। परन्तु आज मुझे किये हुए आपके उक्त व्यवहार से यह स्पष्ट अनुभव हो गया कि—सन्त बडे कटोर हृदय के होते हैं।

उत्तर मे मैंने कहा—महारानीजी ! जैन साधु जीवन ही ऐसा जीवन है कि—जिसमे अपनी मर्यादा का पूरा-पूरा पालन करना पडता है। भगवान् महावीर की वाणी के अनुसार जैन-साधु जीवन का संक्षिप्त परिचय मैंने उनको जतलाया, परिचय को सुनकर महारानी बडी प्रसन्न हुई और बोली—गुरुदेव ! भारत को ऐसे ही महान् त्यागियो पर गौरव और अभिमान है। आज भी यह भारत अनेक प्रकार की बुराइयो से जो वचित हैं वह आप सरीखे त्यागी-निस्प्रेही सन्तो का ही प्रताप है। अस्तु।

तत्पश्चात् महारानी ने यो निवेदन किया कि—महाराज ! जनता-जनार्दन की सेवा के सद्भाव मे प्रेरित हुई मैं एलेक्शन मे खडी हुई हू, एतदर्थ शुभाशीर्वाद देने की कृपा करे जो मैं विजयी वनू ।

मैंने कहा—सत्य विचारो की सदा से विजय होती आई है। हाँ, कष्ट अवश्य उठाने पडते हैं, परन्तु अन्त मे—सत्यमेवजयतिनानृतम ।

इतिहास के अवलोकन करने पर यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि—भारत की महिलाओ ने अपने सत्य और देश की मर्यादा-रक्षणार्थ हँसते-हँसते अपना सर्वस्व अर्पण किया है, उदाहरणार्थ महारानी तारा और महारानी पद्मिनी की ओर दृष्टि डालिये । मेरा यह शुभ-सन्देश है कि—आप भी उनके पद-चिन्हो पर चल कर एक अनुपम आदर्श उपस्थित करें । इस प्रकार करीव पौन घण्टे तक मेने "नारी-कर्त्तव्य" पर भाषण दिया । महारानीजी के दर्शनार्थ आने से और उस कसाई के हृदय का सहसा परिवर्त्तन हो जाने की आश्चर्यकारी घटना घटित होने से जन-जन के मन-मन्दिर मे जैन-धर्म की आस्था जागृत हो उठी ।

भाषण समाप्त होने के पश्चात् महारानी ने नोटो का एक वन्डल मेरे सामने भेंट के रूप मे रक्खा । तव मैंने महारानी से कहा—सन्त इन वस्तुओ की भेंट स्वीकार नही करते । इनका तो परित्याग करके हम साधु वने हैं । अगर वास्तव मे आप भेंट देना चाहती हैं तो, आज से लेकर आजीवन शाकाहारी रहने की प्रतिज्ञा करिये । मेरे इस प्रकार कहने पर अनुमान के १००० हजार स्त्री-पुरुषो की उपस्थिति मे महारानी ने यह प्रतिज्ञा धारण की कि—मैं आज से शाकाहारी जीवन व्यतीत करूँगी ।

इस प्रकार की प्रतिज्ञा करने के वाद, महारानीजी ने फिर यो निवेदन किया कि—महाराज ! कृपा करके कभी नेपाल भी पधारें ।

मैं वहाँ की राजकुमारी हूं। आप सरीखे सन्तो के वहाँ पधारने पर धर्म की जागृति अच्छी होगी। यो निवेदन करके, मगलीक ग्रहण कर प्रमुदित हुई महारानीजी अपने निवास स्थान को लौट गई।

(यह घटना ई० सन् १९५७ तारीख ७ मार्च महीने की हैं।)

राजग्रही के उष्ण स्त्रोत्र

वहाँ से विहार स्पर्शनानुसार भ्रमण करता हुआ मैं गुणियाजी पावापुर होकर राजगृही पहुँचा। शास्त्रो मे वर्णित राजगृही का दृश्य वहाँ जाकर यथार्थ रूप से मैं देख पाया। जगह-जगह पर पहाडों मे से गरम पानी के झरने झर रहे है। अनेक देशो से चमडी के दर्दी उन झरनो के उष्ण पानी के प्रभाव से अपना दर्द मिटाने के लिये वहाँ पर आया करते हैं। अत उनकी भीड निरन्तर बनी रहती है। वहाँ के पाँचो पहाडो का नैसर्गिक दृश्य एव उनकी पवित्रता आज भी दर्शनीय है। पाँचवे पहाड पर धन्ना शालिभद्र का समाधि-स्थान तथा पहाडो के बीच मे शालिभद्र का खजाना अभी भी सस्मरण के रूप मे विद्यमान है।

बौद्ध-भिक्षुओं के मध्य में—मैं

वहाँ से विहार कर के मैं नालदा गया। उस दिन वहाँ पर एक प्रतियोगिता का आयोजन था। प्रतियोगिता का विषय था कि—"बौद्ध-धर्म और सस्कृति से आज के युग की समस्याएँ हल हो सकती है।" इस प्रतियोगिता मे विभिन्न प्रकार के विश्व-विद्यालयों के छात्रों ने उसमे भाग लिया। मुझे भी अपने विचार प्रकट करने के लिए अवसर दिया। इस प्रतियोगिता के सचालक थे— "काश्यप भिक्षु"। इस शुभ अवसर पर चीन आदि भिन्न-भिन्न देशो से आये हुए करीव-करीव पच्चास

भिक्षु उपस्थित थे। उनके साथ जैन-धर्म के विषय मे प्रेम-पूर्ण काफी चर्चा हुई।

बिहार के राजयपाल

वहाँ से विहार कर मैं दिनाक १-४-५७ को दाणापुर पहुचा। विहार के राज्यपाल श्री आर० आर० दिवाकर को जव यह मालूम हुआ कि—मैं पटना मे आया हू, तो वे विना किसी आडम्वर के एकाकी मेरे दर्शनार्थ आये। करीव डेढ घण्टे तक उनके साथ धार्मिक वार्तालाप हुआ। उन्होंने अपने किये हुए धार्मिक-प्रश्नो का मेरे द्वारा समुचित उत्तर पा कर, प्रसन्नता प्रकट की। चर्चा के दर्म्यान एक प्रश्न मैंने राज्यपालजी से किया।

राज्यपालजी, सुना है कि—सरकार शिखरजी (बिहार) के पहाड को अपने हाथ मे लेना चाहती है। क्या यह सत्य है, हाँ तो इसकी क्या वजह है।

राज्यपालजी वोले—सरकार का इरादा है कि इसे (शिखरजी) हजारीवाग के अभयारण्य की भाति वनाने की योजना है।

तदनन्तर वे वोले—महाराज ! यहाँ से २३ मील की दूरी पर ही वैशाली नगरी है। वहाँ पर सरकार की ओर से १५ पन्द्रह वर्षों से निरन्तर भगवान् महावीर की जन्म-जयन्ति मनाई जाती है। किन्तु खेद है कि—इतने अर्से में उक्त शुभ अवसर पर न तो किसी जैन-साधु का शुभागमन हुआ और न किसी जैन-गृहस्थ ने भी उस अवसर पर आकर अपना धार्मिक-प्रेम प्रकट किया। इस समय आप निकट पधार गये हैं और जयन्ति का समय भी निकट आ गया है। एतदर्थ इस शुभ अवसर पर आप वहाँ पर पधारने की कृपा करें, तो धर्म का उद्योत वहुत अच्छा होगा।

उत्तर मे मैंने कहा—राज्यपालजी ! आपका कहना उचित है। परन्तु वैशाख सुदी तृतीया–(अक्षय-तृतीया) को मुझे झरिया-कतरा से गढ जाना बहुत जरूरी है। कारण कि—वहाँ करीब दस भाइयो के वर्षी-तप के पारणे हैं।

राज्यपाल बोले—महाराज ! वो प्रसग इतना महत्व नही रखता है, जितना कि—वैशाली का।

मैंने कहा—जैसा द्रव्य, काल और क्षेत्र-स्पर्शना का प्रभाव होगा, वैसा ही करूँगा।

मेरे उत्तर से प्रसन्न हुए तथा राज्यपाल अपने भवन को चले गये और अपने एक खास व्यक्ति को मेरे पास भेजा। उसके साथ यो कहलाया कि—मेरी प्रार्थना को आपने स्वीकार की। इसकी मुझे प्रसन्नता है। अब आप कृपा कर यह सूचित करें कि—वैशाली पधारते समय रास्ते मे आपको किन-किन सुविधाओ की आवश्यकता रहेगी। मैंने कहलाया कि—जैन-साधु अपनी शास्त्रीय-मर्यादानुसार पैदल ही परिभ्रमण करते हैं। उन्हे किसी प्रकार के वाहन की जरूरत नही होती। भोजन के लिये भी, अपने नियमानुसार मधुकरी के रूप मे पाँच-सात घरो से भक्तो की सद्भावना और स्वच्छता को परख कर लेते है। उस (जैन-साधु) के लिये स्पेशल बनाया हुआ भोजन भी वे नही लेते हैं। इसलिये सरकार की ओर से किसी प्रकार की सुविधा की हमे जरूरत नही हैं। इस प्रकार के मेरे उत्तर को सुन कर राज्यपाल और भी अधिक प्रसन्न हुए।

तदनन्तर सात व्यक्तियो का एक शिष्ट-मण्डल फिर आया। जो कि—वैशाली सघ के नाम का था। उस (शिष्ट-मण्डल) ने भी वैशाली की जानकारी देते हुए, जयन्ति के प्रसग पर पधारने का अत्याग्रह

भरी विनती की। इन सभी वातावरणो का सम्यक् विचार करके, झरिया-कतरास जाना स्थगित (मौकूफ) रक्खा, और वैशाली की ओर प्रस्थान किया।

आज हम सोनपुर पहुचें। सोनपुर गङ्गा के उत्तरीय तट पर है। गङ्गा भारत की प्रसिद्धतम नदियो मे से एक है। इस नदी को हिन्दु धर्म मे बहुत महत्व दिया गया है, इस नदी के किनारे बड़े-बड़े मुनियो ने तपस्या की है। एक कवि ने लिखा है—

गङ्गा जिसकी लहरों से, हुंकार जमाना भरता है।
लाभों से खुश मानव जिसके, रौद्र रूप से डरता है॥
गङ्गा जिसने मोह लिया है, भारत का सारा जीवन।
बुला चुकी जो अपने तट पर, अहिन्दी लोगों को अनगिन॥
जिसके उद्गम से लेकर के, मिलने तक की सागर में।
परिव्याप्त है सरस कहानी, पूरे धरती अम्बर में॥
जिसने छूकर हरिद्वार को फिर यू० पी० सर-सब्ज किया।
और इलाहबाद पहुँच कर यमुना को निज प्यार दिया॥
और कानपुर की प्यासा को, गङ्गा ने आधार दिया।
तो काशी में तीर्थ रूप हो, भक्त जनों को प्यार दिया॥
उत्तर और दक्षिण बिहार को, दो भागों में बाट दिया।
पटना से भागलपुर को होकर, मार्ग स्वय का छाट लिया॥
गुजरी फिर बगाल भूमि से, खाडी का पथ अपनाया।
इतने सघर्षों से लडकर, नाम हिन्दु महासागर पाया॥

इस प्रकार की सलिला गङ्गा के उत्तरीय तट पार करके हम एशिया के प्रसिद्ध नगर मे पहुचे। सोनपुर के प्रसिद्धि का कारण कार्तिक मे लगने वाला मेला है इस मेले से प्रभावित होकर ही किसी यात्री कवि ने लिखा है—

रेल्वे प्लेटफॉर्म है जिसका, भारत में लम्बा सबसे।
और एशिया भर का गुरुत्तर, लगता है मेला कब से॥
ऊँट, बैल जैसे भी चाहे, गाय, भैंस, घोडे, हाथी।
सब कुछ मिलता है इस मेले में, मिल जाता खोया साथी॥
पूर्ण एशिया में नकदी पर, इतना पशुओं का व्यापार।
मानव लाखों घुमते इसमें, हो जाती है भीड़ अपार॥

वैशाली में अपूर्व जन-उत्साह एवं समारोह

वैशाली—उत्तर विहार मे, मुजफ्फरपुर जिले मे स्थित है। जैन-शास्त्रो मे जिसे विदेह (देश) कहते हैं। मैं दिनाक ११-४-५७ को वहाँ पहुचा और बावना पोखर (तालाव) पर स्थित धर्म-शाला मे ठहरा। वहाँ पर भिन्न-भिन्न स्थानो से आये हुए दिगम्बर-जैन भाई भी थे। दिनाक १२-४-५७ की रात्रि से कार्य-क्रम चालु हुआ॥ अनुमान के ८० वीघा जमीन मे जनता की बहुत भारी भीड थी। "जो थाली फेंकने पर भी वह जमीन पर नही गिरे"। इस कहावत को चरितार्थ करती थी। लोगो का कहना था कि—इस समय ढाई लाख जनता की उपस्थिति है। "वैशाली और भगवान् महावीर"। इस विषय पर मेरा और राज्यपाल जी का भाषण हुआ। भाषण की प्रशसा उपस्थित जनता ने मुक्त कण्ठ से की।

वैशाली और भगवान् महावीर

सर्वनगर शिरोमणी वैशाली। जहाँ से कि अहिंसा परमोधर्म का सूत्र प्राप्त हुआ। इसी पवित्र नगरी ने भगवान् महावीर "वर्धमान" की जन्म भूमि होने का विशेष गौरव प्राप्त किया है।

वैशाली के इतिहास मे वडे-वडे परिवर्तन हुए हैं। इस नगरी ने वडी राजनीतिक उथल-पुथल देखी। यह वही नगरी है जहाँ

वालिमकी रामायरण मे वरिणत है—"जव राम लक्ष्मरण और विश्वामित्र ने यहाँ पदार्पण किया था तब यहाँ के राजा सुमति ने विशेष स्वागत किया था।" इस नगरी के पश्चिमी तट पर "गण्डक" नामक नदी बहती है। वैशाली को "शाखा नगर" कहते थे।

बुद्ध विष्णु पुराण मे विदेह देश की सीमा वताते हुए लिखा हैं कि—विदेह के पूर्व मे कौशिकी, (आधुनिक कोशी) पश्चिम मे गण्डकी, दक्षिरण मे गगा और उत्तर मे हिमालय है। पूर्व से पश्चिम की ओर २४ योजन लगभग १८० मील। उत्तर से १६ योजन लगभग १२५ मील है।

भगवान् महावीर एव बुद्ध के समय से विदेह की राजधानी वैशाली ही थी। भगवान् महावीर के कुल चातुर्मासो मे से १६ चातुर्मास विदेह मे हुए थे। वारिणज्य ग्राम और वैशाली मे १२, मथिला मे ६ और १ अस्थि गाँव मे।

पुराणों में वैशाली

पुराणो मे इसके विशाल, विशाला तथा वैशाली ये तीन नाम दिये गये हैं। पाटलीपुत्र से भी यह वहुत प्राचीन है। वालिमकी रामायरण मे विशाला के नाम से इसका और इसके सस्थापक तथा इसके वशजो का वर्णन मिलता है। भगवान् रामचन्द्र के समय से लगभग ८-१० पीढी पूर्व विशाला नगरी का निर्माण हो चुका था। यह भगवत् पुराण एव रामायरण मे साबित है। पाटलीपुत्र का निर्माण अजातशत्रु के समय हुआ था।

वैशालो की चर्चा वाल्मिकी रामायरण आदि काड के ४५ वें तथा ४६ वें तथा ४७ वें सर्गो मे की गई है। ४५ वें सर्ग मे यह कहा गया है कि इस स्थान पर देवी-देवता और दानवो ने समुद्र मे मथन की

मत्रणा की थी। ४६ वें सर्ग मे "रानादीति" को उस तपस्या का वर्णन है जो उसने इन्द्रो को मारने वाले पुत्रो की उत्पति के लिये की थी। उसी सर्ग के अन्त मे तथा ४७ वें सर्ग के आरम्भ मे इन्द्र के प्रयत्न से "रानादिती" की तपस्या का विफल होना वर्णित है। इसके पश्चात् ४७ वें सर्ग के अन्त मे वैशाली नगरी के निर्माण का इतिहास दिया गया है।

इस प्रकार केवल चार पुराणो मे वैशाली की चर्चा पाई जाती है। वे ये हैं—(१) वाराह पुराण (२) नारदीय पुराण (३) मार्कण्डेय पुराण और (४) श्री मद्भागवत्।

वाराह पुराण के सातवे अध्याय मे विशाल राजा का गया मे पिंडदान करने से उनके पित्तरो की मुक्ति कही गई है। उसी पुराण के ४८ वें अध्याय मे भी एक विशाल राजा का उल्लेख है पर वे काशी नरेश थे, वैशाली नरेश नही।

नारदीय पुराण के उत्तर काड के ४४ वें अध्याय मे भी विशाला नरेश विशाल की चर्चा की गई है और यह कहा गया है कि वे त्रेतायुग मे था। पुत्रहीन होने के कारण पुत्र प्राप्ती के लिये उन्होने पुरोहितो की राय से गगा मे पिंडदान किया। और अपने पिता, पितामह तथा प्रपितामह का नरक से उद्धार कराया किन्तु वहाँ विशाल के पिता का नाम "सत" वतलाया। सभव है इसका दूसरा नाम "सित" रहा है।

वैशाली की व्यवस्था प्रणाली

ब्राह्मण युग मे मैथीला और वैशाली दोनो राजतन्त्र थे। लच्छवी शासन में ७७०७ पुरुष थे। वे "राजुनम" कहलाते थे। वैशाली गण की स्थापना श्री मद्भागवत के उल्लेखानुसार "राम और महाभारत" युद्ध के वीच हुई। वैशाली मे वहुत से छोटे-वडे न्यायालय

थे। विभिन्न प्रकार के राज पुरुष इनके सभापति होते थे। उस समय की न्याय प्रणाली की विशेषता यह थी कि अभियुक्त को उस समय दण्ड मिलता था, जिस समय सात न्यायालय एक स्वर मे अपराधी घोषित कर देते थे। इनमे किसी एक के द्वारा मुक्त भी कर दिया जाता था। इस प्रकार मानव स्वतन्त्रता की रक्षा भी की जाती थी जिसकी उपमा विश्व के इतिहास मे नही है।

लिच्छिविगण का एक बडा बल था। वज्जिय सघ के अन्य सदस्यो से सयुक्त रहना। जैसा कि भिष्म ने कहा था—"गणो को यदि जीवित रहना है तो उन्हे सर्वदा सघ प्रणाली का अवलम्बन करना चाहिये।" कौटिल्य ने भी इसी प्रकार अपने अर्थशास्त्र मे भी उल्लेख किया है।

गणतत्र राज्य मे एक कौंसिल थी उसमे नव मल्ल और नव लिच्छवी के सदस्य थे। गणतन्त्र करीब आठ सौ वर्ष चला।

वैशाली मे लिच्छवियो के ७७०७ कुटुम्ब थे। हरेक कुटुम्ब का प्रमुख व्यक्ति गण-सभा का सभासद होता था और वह गणराज्य कहलाता था। लेकिन गण-सभा की एक कार्यवाहक सभा होती थी। जिसे अष्ट कुलक कहते थे। आठ प्रमुख गण राजन इसके सदस्य थे। और प्राय गण-सभा इनका चुनाव किया करती थी। अष्ट कुलक मे से प्रत्येक का अलग-अलग रग नियमित था। विशेष उत्सवो और अवसरो पर हर एक अष्ट कुलक अपने-अपने निश्चित रग के वस्त्राभूषण धारण करके उसी रग के घोडे पर सवार होकर जाते थे।

जब गण-सभा की बैठक होती थी तो उसे गण सन्निपत कहा जाता था और उस बैठक के स्थान और सभा भवन का नाम "सस्थागार" कहा जाता था। उस "सस्थागार" के निकट ही एक

"पुष्करिणी" थी जो कि आज "बोनपोखर" के नाम से प्रसिद्ध है। इसमे केवल गण राजन् ही स्नान करने के अधिकारी थे। जब नये गण राजन् का अभिषेक होता था तो वह बडे समारोह के साथ इस पुष्करिणी मे स्नान करता था।

१ वैशाली के सन्निकट एक कुडग्राम था। उस कुडग्राम मे दो बस्तियाँ थी, एक क्षत्रि कुडग्राम, दूसरा ब्राह्मण कुडग्राम। एक में क्षत्रियो की बस्ती अधिक थी। दूसरे मे ब्राह्मण अधिक। इनमे दोनो क्रमश एक दूसरे के पूर्व मे थे। दोनो पास-पास थे। दोनो बस्तियों के बीच एक बगीचा था। जो "बहुशाल" चैत्य के नाम से प्रसिद्ध था। दोनो नगर के दो-दो खण्ड थे। ब्राह्मण कुडपुर का दक्षिणी भाग ब्राह्मणपुरी (ब्रह्मपुरी) कहलाता था। क्योकि यहाँ ब्राह्मणों का निवास था। ब्रह्मपुरी के नायक ऋषभदत्त नाम के ब्राह्मण थे। जिनकी स्त्री का नाम देवानन्दा था। दोनो पार्श्वनाथ के द्वारा जैन धर्म को मानने वाले गृहस्थ थे। क्षत्रिय कुंड के नायक का नाम सिद्धार्थ था। इसके दो भाग थे। इसमे करीब ५०० घर "ज्ञाति" क्षत्रिय थे। तथा राजा की उपाधि से मडित थे। वैशाली के तत्कालीन राजा का नाम चेटक था। जिनकी पुत्री तिशला का विवाह सिद्धार्थ राजा से हुआ था।

२ **कुमार ग्राम :** प्राकृत भाषानुसार "कम्मार" कर्मकार का अपभ्रश है। अर्थात् कर्म का अर्थ है, मजदूरो का गाँव या लुहारो का गाँव। यह गाँव क्षत्रिय कुडग्राम के पास ही था। महावीर स्वामी प्रव्रज्या लेकर पहली रात यहीं ठहरे थे।

३ **कोल्लाक सनिवेश :** यह ग्राम क्षत्रिय कुडग्राम के नजदीक ही था। कुमार ग्राम से विहार कर भगवान् महावीर यहाँ पधारे थे और यही पारणा किया था। उपागकदशा के प्रथम अध्यन मे इस

स्थान की स्थिति का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। यह नगर वाणिग्राम के तथा उस बगीचे के बीच मे पडता है।

४ वाणिय ग्राम : यह जैन सूत्र का "वाणिज्य" बनियो का ग्राम है। गडकी नदी के दाहिने और एक बडी व्यापारिक मण्डी थी। यहाँ बडे-बडे धनाढ्य महाजनो की बस्तियाँ थी। यहाँ का एक करोड पति जिसका नाम आनन्द गाथापति था। जो महावीर का बडा भक्त था।

बौद्ध ग्रथो के विशेषत दीघनीकाय अनुशीलन से पता चलता है कि बुद्ध के समय यह नगरी बडी समृद्धिशाली थी। उसमे ७७७७ महल थे। यहाँ एक वेणू ग्राम था। जहाँ बुद्ध ने वर्षो तक निवास किया।

जैन ग्रथ श्री कल्प सूत्र मे भगवान् महावीर को विदेहे, विदेह-हन्ने, विदेह-जव्वे, विदेह-सूमाला अर्थात् विदेह, विदेह-दका, विदेह जात्य। विदेह-सुकुमार लिखा था। वे वैशालिक भी थे। जमाली भी इसी ग्राम को रहने वाले थे जिन्होने ५०० राजकुमारो के साथ दीक्षा ली थी।

भगवान् महावीर ने प्रथम पारणा कोलाग-सन्निवेश में किया था। जैन सूत्रो के हिसाब से दो ग्राम होते हैं। एक कोलाग सन्निवेश वाणीज्य ग्राम के पास दूसरा राजगृही के पास। एक दिन मे चालीस मील जाना कठिन है क्योकि राजगृही नामक स्थान यहाँ से ४० मील पडता है। अत यही कोलाग सन्निवेश है।

भगवान् महावीर ने प्रथम चातुर्मास अस्थिक ग्राम मे दूसरा राजगृही मे किया। राजगृही जाते समय श्वेताम्बिका नगरी से होकर गये और तदनन्तर गगा को पार कर राजगृही में पहुँचे। बौद्ध ग्रयो

से मालूम होता है कि श्वेताम्बिका श्रावस्ति से कपीलवस्तु की ओर जाते समय रास्ते मे पडती थी ।

भगवान् महावीर

भगवान् महावीर का निर्वाण "पावापुरी" मे माना जाता है। वह पावापुरी जो अभी मानी जाती है। उससे पहले बिल्कुल विपरीत बौद्ध ग्रथो के अनुशीलन से मालूम पडता है कि यह जिला गोरखपुर के पडरोना के पास पप-उर दी है। उस पावापुरी के अन्दर मल्ल गणतन्त्र राज्य था। गणतन्त्र की सीमा विदेह देश मे मानी जाती थी। राजगृही अग देश मे है। और वहाँ का रास्ता अज्ञात शत्रु गणतन्त्र राज्यो के बिल्कुल विरुद्ध था। सगीत परियासुत से पता चलता है कि यह मल्ल नामक गणतन्त्र लोगो की राजधानी थी। जिसके नये सस्थागार मे बुद्ध ने निवास किया था यह भी पता चलता है कि बुद्ध के आने के पहले ही "निगट्ठ नात पुत्र" का निर्वाण हो चुका था। बौद्ध ग्रथो मे महावीर "निगट्ठनात पुत्र श्री के नाम से प्रसिद्ध है। भगवान् महावीर का जन्म ई० स० ५९९ वर्ष पूर्व हुआ था। निर्वाण ५२७ ई० पूर्व ।

विदेह दत्ता महावीर की माता का नाम था। आचारग सूत्र मे इस प्रकार लिखा है—"समणस्मण भगवओ माहवीरस्स अम्मा वासिट्ठस्स गुतातिसेण तिन्नि नाम तजह। तिशलाइस्वा, विदेह दिन्नावा पियकारिणी इवा।" यह नाम उनकी माता को इसलिये मिला था। कि उनकी माता त्रिशला विदेह देश की नगरी वैशाली के गण सत्तानक राजा चेटक की पुत्री थी। यह घराना वैशाली के नाम से प्रसिद्ध था। इसी कारण माता त्रिशला को विदेहदत्ता कहा गया है।

निरावलियायो के अनुसार राजा चेटक वैशाली का अधिपति था और उसे पारमर्श देने के लिये नो मल्लि और नो लिच्छिविगण राजा

रहा करते थे। मल्ल जाति काशी मे व लिच्छिवि जाति कौशल मे, इन दोनो जातियो का सम्मिलित गणतन्त्र राज्य था जिसकी राजधानी वैशाली और गणतन्त्र का अध्यक्ष चेटक था। वैशाली नगरी में विदेह वश मे राजा चेटक का जन्म हुआ। इस राजा की भिन्न रानियो से ७ पुत्रियाँ उत्पन्न हुई। (१) प्रभावती (२) पद्मावती (३) मृगावती (४) शिवा (५) ज्येष्टा (६) सुज्येष्टा और (७) चेलणा। प्रभावती वीतिभय के उदयन से, पदमवती चम्पा के दधिवाहन से, मृगावती कोशाम्बि के शतानिक से, शिवा उजयनी के प्रद्योत से, ज्येष्टा कुंडग्राम के वर्धमान के बडे भाई नन्दिवर्धन से, सुजेष्टा और चेलणा उस समय कुमारी थी।

अहिसा के अवतार सत्य के पुजारी, शान्ति के अग्रदूत भगवान् महावीर का जन्म दिन चेत्र सुदी १३ के मध्य रात्री के पश्चात् हुआ था।

अर्वाचीन वैशाली

वैशाली बहुत ही प्रतिष्ठा प्राप्त स्थान है। यह तो निर्विवाद वस्तु है। जैन धर्म की अपेक्षा बौद्धो ने इस नगरी को बहुत महत्व दिया है। अभी भी बौद्ध राष्ट्रो मे अनेक स्थानो मे सुना है कि वैशाली नाम के नगर इसकी स्मृति के रूप मे बसाये हैं। विदेशो से प्रति वर्ष हजारो की सख्या मे बौद्ध-भिक्षु व गृहस्थ वैशाली की यात्रा को आते हैं और वहाँ की धूल पवित्र मानकर अपने सिर एव शरीर पर लगाते हैं। पूछने पर वे कहते हैं कि यह धूल तथागत के चरणो से पवित्र बनी हुई है। वर्तमान समय मे वैशाली छोटे से ग्राम के रूप मे है। पटना मे उत्तर की ओर २३ मील आगे बढने पर यह ग्राम आता है। अभी भी यहाँ महाराणा चेटक का अजयदुर्ग भग्नावशेष के रूप मे अतित की वीर गाथायें और पवित्रता का नाद गूजा रहा है। इस दुर्ग मे से

सरकार द्वारा खुदाई करने पर कुछ महत्वपूर्ण वस्तुएँ प्राप्त हुई है। जिनको सुरक्षित म्युजियम बना कर रखा है।

दुर्ग से पश्चिम की ओर निकटतम एक तालाब है जिसमे लिच्छवी गणतन्त्र के निर्वाचित अधिनायको को ही स्नान करने का अधिकार था। इसका अभी भी नाम बामपोखर है।

वैशाली से पूर्व मे आधा मील आगे बढने पर एक हाई स्कूल आता है। जिसका नाम तीर्थङ्कर भगवान् महावीर हाई स्कूल रखा गया है यह हाई स्कूल स्थानीय व्यक्तियो द्वारा सचालित है और वैशाली के अन्दर एक जनता द्वारा वैशाली सघ स्थापित किया हुआ है जो कि इस ग्राम के विकाश के लिये प्रतिपल प्रयत्नशील रहता है।

भगवान् महावीर का जन्म स्थान

हाई स्कूल के उत्तर मे २ मील की दूरी पर एक वासुकुंड नामक ग्राम है। यही वह ग्राम है जो कि क्षत्रियकुंड ग्राम के नाम से प्रसिद्ध था। यहाँ पर भगवान् महावीर के वश के कुछ लोग रहते हैं। उनके पास यहाँ परम्परा से कुछ एकड जमीन थी जिसका कि वे सरकार को भूमि कर तो देते थे किन्तु उस पर खेती नही करते थे। सरकारी कर्मचारियो के पूछने पर उन्होने कहा—यहाँ पर भगवान् महावीर का जन्म हुआ है। परन्तु उन्हे यह ज्ञात नही था कि महावीर कौन है? क्योंकि महावीर हनुमानजी को भी कहते हैं।

सरकार के इतिहास विभाग ने इतिहास एव कल्पसूत्र आदि ग्रथो का अवलोकन किया और निश्चय किया कि यहाँ सिद्धार्थ पुत्र महावीर का जन्म हुआ है। यह शुभ समाचार विस्तार पूर्वक भगवान् महावीर के वशजो को मालूम हुआ तो बहुत ही उत्साह से वह जमीन विहार सरकार को उसके विकास के लिये दे दी। करीब ४ वर्ष

पूर्व उसी स्थान पर भारत गणतत्र के राष्ट्रपति स्व० डा० राजेन्द्रप्रसाद के कर कमलो द्वारा एक विशाल कार्य का शिलान्यास किया गया है। जिसके एक तरफ हिन्दी मे भगवान् महावीर के जन्म का वर्णन है और दूसरी तरफ प्राकृत भाषा मे।

सरकार द्वारा जयन्ती समारोह

वैशाली मे करीब १५ वर्ष से प्रत्येक चैत्र सुदी १३ के दिन भगवान् महावीर का जन्म विहार सरकार की तरफ से मनाया जाता है। इस प्रसग पर १॥ से २ लाख तक आदमी बडे हर्ष के साथ इकट्ठे होते हैं। और भगवान् महावीर के प्रति अनन्य श्रद्धा व्यक्त करते हैं। मुझको भी दिनाक १२-४-५७ ई० को विहार सरकार के गवर्नर श्री आर० आर० दिवाकर एव वैशाली सघ के अति आग्रह पर इस जयन्ती समारोह मे सम्मिलित होने का एव जनता को भगवान् महावीर का सन्देश सुनाने का सुअवसर प्राप्त हुआ।

जैन प्राकृत इन्स्टीट्यूट

भारत मे मुख्यत. तीन सस्कृतियों का उद्गम स्थान है जैन, बौद्ध एव वैदिक सस्कृति। भारत सरकार तीनो सस्कृतियो को जीवित रखने के लिये तीन इन्स्टीट्यूट चला रही है। बौद्ध सस्कृति के लिये नालन्दा, वैदिक सस्कृति के लिये मैथिला (दूरभगा) एव जैन सस्कृति के लिये वैशाली, जैन प्राकृत इन्स्टीट्यूट मुजफ्फरपुर मे चला रही है। इसके लिये प्रतिवर्ष हजारो का खर्च सरकार करती है। इस इन्स्टीट्यूट के लिये निजी भवन बनाने का वैशाली सघ का निर्णय करने पर वासकुंड ग्राम की जनता ने ३३ बीघा जमीन सरकार को भेंट दी है। जिस पर कि हमारे राष्ट्रपति राजेन्द्रबाबू ने करीब चार वर्ष पूर्व शिलान्यास किया है। और शाह शान्तिप्रसाद जैन तथा

अन्य सद्गृहस्थ यहाँ अतिथि गृह, उपासना गृह आदि-आदि की योजना बना रहे हैं।

इस प्रकार वशाली जैनियो के लिये सभी तीर्थ स्थानो की अपेक्षा बहुत ही महत्त्व रखती है। अत समस्त जैनो से अनुरोध है कि वे अपनी-अपनी कान्सफ्रेंसो से आग्रह करें कि सम्प्रदायिक ममत्व दूर कर इस पवित्र भूमि के विकास के लिये जल्दी से जल्दी प्रयत्नशील बनें अन्यथा बौद्ध धर्मालम्बी इस पवित्र भूमि को अपने हस्तगत कर लेंगे। इसमे कोई शका नही है क्योंकि वे हजारो की सख्या मे विदेश से आते हैं और कुछ न कुछ निर्माण कार्य करके जाते हैं। किन्तु जैन अभी तक इस तरफ जागृत नही हुए हैं। अत इस ओर अपना ध्यान आकृष्ट करें। ऐसी आशा है।

"तीर्थंकर भगवान् महावीर हाई स्कूल

वैशाली से विहार कर दिनाक १४-४-५७ को हम आगे बढे, तो एक माइल की दूरी पर हमारी दृष्टि में एक विशाल-भवन दिखाई दिया। नजदीक जाकर देखा तो, उस (भवन) के मुख्य द्वार पर लिखा हुआ था—"तीर्थंकर भगवान् महावीर हाई स्कूल"। मुझे बडा आश्चर्य हुआ कि—जहाँ जैन का एक घर भी नही वहाँ इस नाम की हाई स्कूल कैसे ? इस बात का विचार मैं कर ही रहा था कि—इतने मे पाँच-सात व्यक्ति हाई स्कूल मे से निकल कर हमारे निकट आये और नमस्कार करके हमारे सामने खडे हो गये। मैंने उनसे उनका परिचय पूछा तब उन्होंने अपना परिचय देते हुए कहा—महाराज ! मैं यहाँ का हैडमास्टर हूँ, और ये यहाँ के टीचर हैं। हम लोगो ने रात्रि मे आपका भाषण सुना, तभी से हमारे और छात्रो के हृदय मे यह लालसा जागृत हो आई कि—मुनिजी के निकट जाकर प्रार्थना करें जो हाई स्कूल में पधार कर अपने प्रवचन-पीयूष का पान कराने की हम पर कृपा करें।

अच्छे भाग्य हमारे कि आप स्वय पधार गये। अब आप हमारी प्रार्थना स्वीकार कर अन्दर पधारें और हमे कृतार्थ करें। हम उनके आग्रह को स्वीकार कर अन्दर गये और सामान रख कर एक विशाल हाल मे बैठ गये। सभी विद्यार्थी और अध्यापक वर्ग हमारे सामने व्यवस्थित रूप से बैठ गये।

मैंने उन (अध्यापक और विद्यार्थियो) को सबोधित करते हुए कहा—भाईयो! आपका निवास आज एक ऐसे विशिष्ट-व्यक्ति के जन्म-स्थान पर है, जिसने कि विश्व को अहिंसा का महान् सिद्धान्त बतलाया। इसलिये—उन्ही के पद-चिन्हो पर चल कर आप लोग अपने जीवन को अहिंसा के साँचे मे डालेंगे, तो ही आपका यहाँ निवास करना सफल (योग्य) माना जायेगा। आप हमारे से अधिक भाग्य-शाली है जो आपका निवास ऐसे पवित्र-स्थान पर है और हमारा सैकडो मील की दूरी पर। इसलिये-मेरा कहना है कि—आप अपने कर्त्तव्य को भली भाति समझ कर पूर्णरूप से निभाने का प्रयत्न करें। किम्बहुना।

प्रवचन से प्रभावित होकर, आधे से अधिक अध्यापको ने और विद्यार्थियों ने तीन प्रतिज्ञाएँ ली।

१ जीवन-पर्यन्त मांस नही खायेंगे।
२. मदिरा नही पीयेंगे।
३ विना अपराध के चलते-फिरते प्राणियों के प्राण का हरण नही करेंगे।

प्रभु की पवित्र जन्म भूमि में—में

उक्त स्कूल से करीब दो मील की दूरी पर, वासु-कुण्ड नामक एक स्थान है। हम वहाँ पर दिनाक १४-४-५७ को गये। वहाँ पर

जैन पण्डित पन्नालाल जी मिले। उन्होने कहा—मुनिवर! आप यहाँ दो तीन दिन का विश्राम करें, तो आपको भगवान् महावीर के सम्बन्ध मे काफी जानकारी मिलेगी। हमने अपना सामान एक घास की झोपड़ी मे रख दिया और पण्डित जी के साथ गये। अनुमान के दो फर्लांग पहुँचने पर एक विशाल-काय शिला देखी। उस (शिला) के एक तरफ प्राकृत भाषा मे और दूसरी तरफ हिन्दी-भाषा मे लिखा हुआ है कि—यहाँ पर जैन तीर्थंकर भगवान् महावीर का जन्म हुआ है। इस शिला की प्रतिष्ठा स्वर्गीय भारत के राष्ट्रपति श्री राजेन्द्र बाबू ने की है। मेने पूछा—आप लोगो को यह कैसे मालूम हुआ कि—यहीं पर तीर्थंकर भगवान् महावीर का जन्म हुआ है। मेरे प्रश्न के जबाब मे उन्होने कहा—

यहाँ पर, कुछ व्यक्तियों के पास, कुछ एकड जमीन थी। उसका लगान तो वे लोग सरकार को देते थे। परन्तु उस जमीन मे खेती नही करते थे। कार्यकर्ताओं ने उनसे ऐसा करने का कारण पूछा—तो उन्होने कहा कि—"यहाँ भगवान् महावीर का जन्म हुवा है"। कार्य-कर्ताओ ने सोचा कि—महावीर दो हुए हैं। एक तो जैनियो के अन्तिम तीर्थंकर महावीर, सिद्धार्थ पुत्र। दूसरे, पवनजी के पुत्र हनुमान। हिन्दू साहित्य देखने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि—हनुमान का जन्म तो यहाँ होने का प्रमाण कही नही मिलता है। परन्तु जब कल्पसूत्र, आचाराग सूत्र आदि जैनागमो का अवलोकन किया, तो मालूम हुआ कि उनमे महारानी त्रिशला के पाँच नाम पाये गये। दूसरी बात यह भी मिली कि—भगवान् महावीर जो जैनियो के अन्तिम तीर्थंकर हुए हैं। उनका जन्म विदेह-देश में हुवा है। बौद्ध-ग्रथो मे देखा कि—विदेह-देश इधर गडक नही, उधर दरभगा और नेपाल की तराई और गगा के उत्तरी किनारे तक है। अत जैनियों के अन्तिम तीर्थंकर श्री महावीर का ही जन्म यहाँ हुवा है। तब कार्यकर्ताओ ने उन (स्थानीय-

व्यक्तियो) से कहा कि—यहाँ जैनियो के चौवीसवें तीर्थंकर भगवान् महावीर का जन्म हुवा है। यह सुनकर, वे स्थानीय-व्यक्ति जिनके पास वह भूमि थी। बडे खुश हुए और वह जमीन सरकार को दे दी। सरकार ने उस जमीन को समतल करके, राष्ट्रपति के हाथ से शिलालेख स्थापित करवाया।

हाँ तो—हिन्द की तीन सस्कृतियों मुख्य है। जैन, बौद्ध और वेदान्त। ये तीनो सस्कृतियें जीवित रहे, इस हेतु सरकार प्रयत्नशील है। ये तानो सस्कृतियें विभिन्न भाषाओ मे हैं। बौद्ध सस्कृति की पाली भाषा है। जिसका अध्ययन नालदा (राजगृही) मे कराया जाता है। हिन्दू सस्कृति की भाषा सस्कृत है, जिसका अध्ययन दरभगा मे कराया जाता है। अब रही, जैन सस्कृति की भाषा, जो प्राकृत है, उसके अध्ययन कराने के हेतु वैशाली मे एक युनिवर्सिटी बनाने का सरकार ने निश्चय किया है। जनता ने उसके लिये अपना ओर से तेतीस बीघा जमीन सरकार को देकर यह आग्रह किया है कि—उक्त युनिवर्सिटी को स्थापित करने के लिये, वैशाली का यह स्थान ही उपयुक्त है। कारण कि—यहाँ पर ही भगवान् महावीर का जन्म हुवा है। जो प्राकृत वाणी के भाग्य-विधाता थे। जनता के उचित आग्रह की ओर अपना ध्यान धर कर, सरकार ने वहाँ पर ही उक्त युनिवर्सिटी को बनाने के लिये कार्यारम्भ कर दिया है। वर्त्तमान मे—प्राकृत इन्स्टीट्यूट के रूप में मुजफ्फरपुर में यह सस्था चल रही है।

पवित्र भूमि की विस्मय प्रद पवित्रता

उपरोक्त स्थान के कुछ ही दूरी पर एक विशाल वट वृक्ष के नीचे छोटा-सा देवी का स्थान है। वहाँ पर नवरात्रियो मे करीव दो से तीन हजार पशुओ की वलि दी जाती थी। मैंने अपने विज्ञान द्वारा उसे रोकने के लिये जगह-जगह पर सभाएँ की। यहाँ के निवासियों के

मानस-परिवर्त्तन करने का प्रयत्न भी किया। परिणाम मे वहाँ की जनता ने मुझे आश्वासन दिया कि—इस वर्ष से ही बलि का देना अधिकाश मे बन्द कर दिया जायेगा। हम (जिन्होने कि आपके प्रवचन-पीयूष का पान किया है, वे) तो आपके पद-पंकजों में यह अटल प्रतिज्ञा करते हैं कि—आज से बलि चढायेंगे नही। परन्तु दूरी वाले कोई भी बलि चढाने के लिये आयेंगे, तो उन्हे भी समझायेंगे। हमे आशा है कि—सन् १९५८ के बाद यहाँ पर बलि का होना सर्वथा के लिये बन्द हो जायेगा।

ता० १९-४-५७ को प्रात सात मील का विहार कर हम पतोही ग्राम मे पहुँचे कुछ प्यास लगी हुई थी और कुछ पैरों को थकान भी थी। पतोही ग्राम मे ठहरने का प्रोग्राम होने से हमने स्थान की याचना की तो उत्तर मिला सामने एक मारवाडी की बगीची है उसमें ठहर जाइये। हम बगीची मे पहुँचे, माली ने हमको देखा और देखते ही वह भडक उठा और कहने लगा, बाबाजी यह धर्मशाला नही है, आप आगे जाइये, मैंने कहा हम थके हुए हैं थोडी देर विश्राम करके हम आगे चले जावेंगे। माली ने कहा—नही, तुम्हारे बाप का मकान नही हैं, चले जाओ। मैंने कहा अच्छा भाई नाराज मत हो, हम जाते हैं।

हम ज्योही रवाना हुए और दो कदम आगे भरे ही थे कि, न मालूम माली को क्या सूझा कि—वह तुरन्त सामने आकर चरणो मे गिर कर रोने लगा और बोला—महात्माजी ! माफ करना मेरी भूल हुई कि—मैंने आपके साथ गलत व्यवहार किया। आप यहाँ पर ठहरो, मेरी कोई मनाही नही है। मैंने कहा—अच्छा भाई, हम यहाँ पर ठहर जाते हैं। हमने अपना सामान एक कमरे मे रक्खा और बाहर बरामदे मे आकर बैठे। थोडी ही देर मे गाव के दो चार लोग आये और हमसे परिचय प्राप्त करना चाहा। उनको जैन मुनि जीवन वाला पेम्पलेट दिया और वे पढ़ ही रहे थे। इतने में एक मोटर आई और

एक युवक उसमे से उतरा और शिष्टाचार पूर्वक नमस्कार करके वह बैठ गया। परन्तु उसके चेहरे से भयभीती का आभास हो रहा था। मैंने उसे जैन मुनि के जीवन वाला पेम्पलेट दिया और पढ कर बोला कि—क्या आप ढू ढिया साधु तो नही हो? मैंने कहा—हाँ, लोग हमे ऐसा भी कहा करते हैं। मैंने पूछा—तुमको यह कैसे मालूम हुआ कि—हम जन-साधु हैं। तब उस युवक ने कहा कि—हमारे यहाँ पर पूरणमल जी नाम के एक सज्जन हैं, वे मेरे पिताजी के सामने कभी-कभी आप लोगो की चर्चा किया करते है। उसी वजह से मैं यह कह रहा हू।

मैंने पूछा—आपका परिचय, उसने कहा कि—मैं नागरमलजी यका का लडका हू, और मेरा नाम ईश्वरलाल है। यह बगीचा हमारा ही है। उसने कहा कि—आप यही पर ठहरिये, मैं गाव मे जाकर एक रसोइये को तथा आटा दाल सामान (भोजन की सामग्री) अभी लेकर आ रहा हू। मैंने कहा कि—आपकी श्रद्धा भाव भक्ति अति ही प्रशसनीय हैं। किन्तु हम जैन-साधुओ का यह नियम है कि—हमारे लिये बनाया हुआ तथा लाया हुआ भोजन को हम ग्रहण नही करते हैं। यह सुनकर वह युवक (ईश्वरलाल) बहुत प्रसन्न हुआ और वन्दना करके बोला कि—मैं अपने पिताजी व पूरणमलजी को समाचार देकर, अभी लौटता हूँ। यह कह कर, वह युवक वहाँ से चला गया। कुछ ही समय के वाद एक मोटर हमारे सामने आकर रूकी और उसमे से वही सज्जन व तीन अन्य लोग भी उतरे। वे सब लोग नमस्कार करके वहाँ पर बैठ गये। उस युवक ने अपने पिताजी (नागरमलजी) का हमसे परिचय कराया व पूरणमलजी का परिचय कराया। जिनके वारे मे वह पहले ही कह चुका था।

पूरण वावा वोला कि—आप ढूँढिया साधु यहाँ पर कहाँ से आ गये! मैंने तो आप लोगो को कभी भी इधर नहीं देखा। मैंने कहा कि—हाँ! आज से पन्द्रह सौ वर्ष पूर्व इस क्षेत्र मे साधु लोग रहते

थे और इन क्षेत्रो मे भी विचरते थे। उसके वाद सात व वारह (१२) वर्षीय दुष्काल पडने से इधर से जैन-साधु अन्य क्षेत्रो मे चले गये। अत इन क्षेत्रो मे जैन साधुओ का अभाव हो गया है। अत अब बिल्कुल ही यहाँ नही दिखते हैं।

हमारी वातें सुनने के वाद सेठ नागरमलजी वोले कि—अब आप कहाँ जाना चाहते हैं। मैंने कहा—डॉक्टर हीरालाल जैन के वहाँ, जूरन छपरा रोड नम्वर ३ पर हम जाना चाहते हैं। नागरमल सेठ ने कहा कि—आपसे उनका क्या परिचय है। मैंने कहा—हम वैशाली आये थे, वहाँ पर वे हमसे मिले थे। उन्होने कहा था कि—मैं मुज्जफ्फरपुर मे प्राकृत जैन विद्यापीठ चलाता हूँ। अत उसका आप अवश्य निरीक्षण करे। अत हम विद्यापीठ देखने के लिये आये हैं। यह सुनकर नागरमलजी बोले—पहले आप गाँव मे पधारें। सुतापट्टि मैं मारवाडी धर्मशाला मे ठहरें वाद मे वहाँ पधार जाना, मैंने कहा ठीक है। तारीख १६-४-५७ को हम मुजफ्फरपुर पहुँचे व मारवाडी धर्मशाला मे ठहरे।

प्राकृत जैन विद्यापीठ मे पहले पहल जैन साधु का प्रवेश

मुजफ्फरपुर मे एक "जैन-प्राकृत विद्यापीठ" सरकार की ओर से चलता है। मुजफ्फरपुर मे अग्रवाल-भाईयो के करीब-करीब ६०० सौ घर हैं। दिनाक २१–४–१९५७ को उक्त विद्यापीठ मे—"भारतीय-सस्कृति"—इस विषय पर भाषण हुआ। भाषण को सुनकर प्रमुदित हुए सज्जनो ने मुझे वहाँ पर कुछ दिन और ठहरने की साग्रह विनती की।

पन्द्रह सौ वर्षों के बाद चातुर्मास

भाई-वहनो का मनो-भाव उत्तरोत्तर वढता ही गया। भावुक लोगो ने चातुर्मास का आग्रह किया। विनति पत्र वङ्गाल प्रान्त के मत्री मुनि श्री फूलचन्दजी मा० सा० की सेवा मे भेजा गया। उसी

प्रकार श्री आचार्य श्री आत्मारामजी म० सा० की सेवा मे भी भेजा गया। मत्री मुनिजी का उत्तर आया कि मुनि श्री लाभचन्दजी इस वर्ष के चातुर्मास के लिये कलकत्ता, सैंथिया कत्रास, वेरमो भागलपुर तथा मुजफ्फरपुर आदि की विनतियाँ आई हुई है। इन सभी स्थानो के विनति पत्रो पर खूब विचार विनिमय करने पर मन्त्रीजी म० ने मुजफ्फरपुर की विज्ञति पर अधिक ध्यान दिया है, क्योकि इस क्षेत्र मे सैकडो वर्षों से किसी जैन सन्तो के चातुर्मास नही हुए हैं अत यह चातुर्मास मुजफ्फरपुर मे हो ऐसी मन्त्री महा० की इच्छा हुई। अत इसी प्रकार के आशय का पत्र आचार्य श्री आत्मारामजी म० सा० की ओर से भी प्राप्त हुआ अत मुजफ्फरपुर चातुर्मास ही करना निश्चित हो गया। उस समय चातुर्मास आरम्भ होने मे काफी समय वाकी होने से हमारा विचार (नेपाल की सरहद नजदीक होने से) काठमाँडु तक विहार करने का तय हुआ। इसी निश्चय पर से हमने सितामढी की ओर विहार कर दिया। वहाँ से गौर पहुचे।

"भद्रबाहु स्वामी के पश्चात् १५०० सौ वर्षों के नेपाल में स्थानक वासी साधु"

दिनाक २-५-५७ को मैं गोर पहुँचा। गोर, नेपाल की सरहद का गाव है। यहाँ से ही नेपाल राज्य मे प्रवेश करना मैंने चाहा था। जिसका मुख्य कारण यही था कि—वहाँ की जनता के सम्पर्क मे आकर, वहाँ के रीति-रिवाज की जानकारी हासिल करना, और जैन-धर्म की जागृति करना। उक्त उद्देश्य को लेकर ज्यों ही मैंने गोर ग्राम से आगे कदम वढाया कि—सामने दो हाथी सजे हुए विशालकाय हमारे सामने आते हुए दिखाई दिये। हमारी ओर उन हाथियो की दृष्टि जैन-साधु के लिये पास-पोर्ट लेने की जरूरत नही रहा करती है। वह हमेशा अप्रतिवन्ध विहारी होता है।

जब एक साथ मिली। तो उन दोनो हाथियो ने अपनी-अपनी सूड को एक साथ इस तरह ऊँची उठाई कि—मानो वे हमारा अभिवादन कर रहे हैं। मैंने अपने सहचारी सन्तो से कहा कि—देखिये, व्यवहारिक दृष्टि से शकुन तो श्रेष्ठ दिखाई दे रहे हैं।

पास-पोर्ट की पूछ-ताछ

भीम-फेरी से दिनाक ११-५-५७ को हमने प्रयाण किया। यहाँ से पहाड की चढाई प्रारम्भ होती है। चढाई अति विकट है। काठमाडु शहर मे, तार के सहारे पर चलने वाली ट्रालियो द्वारा सामान पहुचाया जाता है। हम विकट पहाड की चढाई चढकर गढी ग्राम में पहुँचे। यहाँ पर एक पुलिस का थाना भी है। प्रत्येक यात्रियो से यहाँ पर पास-पोर्ट की पूछ-ताछ होती है। मेरे से भी पास-पोर्ट के लिये पूछ-ताछ किया गया। मेने कहा—हाँ, है! पुलिस के अधिकारी ने कहा—बतलाओ! मैंने कहा—देखलो, यह मुह पर लगा हुआ है। तब पुलिस अधिकारी ने कहा—यह तो कपडा लगा हुआ है। पास-पोर्ट नही है। तब मैंने उससे कहा—भाई साहब! यह एक विशिष्ट-प्रकार का पास-पोर्ट है। यह पास-पोर्ट जिसके पास होता है, वह लुच्चा, लफगा और बदमाश नही हो सकता है। पैसा आदि द्रव्य वह अपने पास नही रखता है और नही वह चोरी-जारी भी करता है। पैदल ही परिभ्रमण करता है। किसी प्रकार की सवारी मे भी नही बैठता है। रात्रि के समय में भोजन करना तो दूर रहा, पानी भी नही पीया करते हैं। पैरो मे जूती या खडाऊ आदि भी नही पहनते हैं। मेरे इस प्रकार कहने पर, पुलिस के अधिकारी ने मुझसे फिर पूछा कि—आप कौन हैं! मैंने कहा—मैं एक जैन-भिक्षुक (साधु) हूँ। जैन-साधु के नियम विशिष्ट-प्रकार के होते हैं। वे किसी एक देश के लिये नहीं, सारे ससार मे मुक्त रूप (निर्बन्धस) से विचरण करने वाले होते हैं।

इधर के व्यक्ति अधिकाँश मे ईमानदार होते है। इन्हे आज के युग की हवा स्पर्श नही कर सकी। श्रम और ईमान ये दो इनके मुख्य सिद्धान्त है। खेती छोटे-छोटे क्यारो मे होती है वह भी पहाड के ढलकाव मे। सिचाई के लिए झरनो का पानी काम मे लेते है। मछली इनका मुख्य भोजन है।

नेपाल की मुख्य नगरी (राजधानी) काठमाडु है। अनुमान के चौबीस २४ मील के घेरे मे दूर-दूर तक बसी हुई नेपाल की इस रमणीक नगरी मे सैकडो मन्दिर बौद्ध और वैदिक धर्मानुयियो के है। जैन-सस्कृति तो वहाँ से सैकडो वर्षों से मानो विदाई ले गई है। वैसे, नेपाल का पूरा क्षेत्रफल अनुमानतया ५४,३८३ वर्ग मील है, जिसमे ३१,८२० गाँव हैं, और लगभग एक करोड की आबादी है। नेपाल का हृदय काठमाँडु है, जो चारो ओर से पहाडो से घिरा हुआ है। धर्मधुरीण नेपाल नरेश ने किसी युग मे अपने श्रद्धेय गुरुदेव के लिये एक ही वृक्ष की लकडी का एक काष्ठ-मण्डप तैयार करवाया था जो पाँच मजिल का है। उसके बीच के हॉल मे आराम से अनुमान के चार हजार मनुष्य बैठ सकते हैं। इस मण्डप की अलौकिक प्रभा के प्रभाव से इस नगर का विशुद्ध नाम भी काष्ट-मण्डप ही था जो आज अपभ्र श के रूप मे काठमाडु कहलाता है।

यहाँ हिन्दुओ का एक, विश्व-विख्यात, पशुपतिनाथ का विशाल मन्दिर है, जिसके सामने वाघमती नाम की नदी अपने स्वच्छ प्रवाह के साथ बहती है। कहते हैं कि—इस नदी मे ग्रीष्मकाल मे भी बर्फ-सा ठण्डा पानी रहता है। नीलकण्ठ की एक सुषुप्तावस्था की प्रतिमा भी यहाँ पर है। जिसके दर्शन के लिये यात्री जलकुण्ड के बीच जाते हैं। लोगो के मुँह से सुना है कि—वहाँ निरन्तर बावीस धाराएँ गिरती हैं।

काठमाण्डु के बीच बाजार मे या वाहर आकर देखें तो उत्तर एव पूर्व मे महान् पर्वत, कुन्दन जैसा हिमाच्छादित स्वच्छ और हिमालय सा ऊँचा, मानो गगन से बातें कर रहा हो, दिखाई देता है।

जैन इतिहास कहता है कि आठवी शताब्दी के समय आचार्य श्री भद्रबाहु स्वामी ने नेपाल मे जैन-धर्म का झण्डा फहराया। पश्चात् जैन-साधुओ का भ्रमण उधर नही होने के कारण जैनियो का नाम भी वहाँ नही रहा।

नेपाल मे द्वितीय भद्रबाहु स्वामी जब विचरते थे, जिनको कि दस पूर्व का ज्ञान था, तब उनसे ज्ञान सपादन करने के लिये श्री स्थूलीभद्र मुनि अपने दो साधुओ को साथ लेकर नेपाल की ओर प्रयाण किया था। वहाँ जाते हुए रास्ते मे नेपाल की विकट पहाडियो की उतार चढाई से घबरा कर साथ के दोनो साधु तो वापिस लौट आये और एकाँकी श्री स्थूलीभद्र मुनि ही श्री भद्रबाहु स्वामी की सेवा मे पहुँचे।

काठमाँडु (नेपाल) मे—मैं अपने सहचारी साधुओ के साथ ता० १३-५-५७ को पहुँचा। वहाँ पर ता० १४-५-५७ को बुद्ध-जयन्ती २५०१ वी मनाई जा रही थी। उसमे मुझे भी अहिंसा के विषय पर बोलने का निमन्त्रण मिला। उस जयत्युत्सव मे करीव अस्सी हजार मनुष्यो की उपस्थिति थी। यह समारोह एक विशाल मैदान (जिसका नाम टुडी खेल है, उस) मे मनाया गया था। मैंने अहिंसा का विवेचन जैन, बौद्ध और वैदिक धर्म के सिद्धान्तानुसार जनता के सामने रक्खा। जिसको सुनकर उपस्थित सभी धर्मानुयायी सज्जन वहुत ही प्रसन्न हुए।

उसके वाद दिनाक १८-५-५७ को अहिंसा—सम्मेलन मेरी प्रेरणा द्वारा भराया गया। उसमे अहिंसा की परिभाषा जैन धर्म की दृष्टि से तथा वेदान्त तथा वौद्ध धर्म की दृष्टि से क्या है और अहिंसा का

परिमार्जन किन्होंने किस प्रकार किया। इस विषय पर, भिन्न-भिन्न देशो से आये हुए विद्वानो के प्रभावशाली भाषण हुए। मैंने अपने भाषण मे उपस्थित सज्जनो को सम्बोधित करके कहा—बन्धुओ! इस प्रकार के सम्मेलनो की आज कितनी आवश्यकता है। यह जतलाने की जरूरत ही नही है। कारण कि—आज के वातावरण से अपन सभी सुपरिचित हैं। धर्म के नाम पर भिन्न-भिन्न सम्प्रदायो के छोटे-छोटे मत-भेदो को लेकर परस्पर मे लडने-झगडने का यह युग नही है। आज इस सम्मेलन मे तीनो दर्शनानुयायी विद्वानो का "अहिंसा परमो धर्म" इस विषय मे एक मत को देख कर मुझे बढा ही आनन्द हो रहा है। मेरी सद्भावना है कि—जिस प्रकार हम उक्त विषय के लिये अपना एक-मत प्रकट कर रहे हैं। उसी प्रकार अन्य छोटे-मोटे व्यर्थ के विवाद-ग्रस्त विषयो को छोड कर अपनी एकता प्रकट करके विचलित हुई—मानव की भव्य कीर्ति-पताका को पूर्ववत पुन फहरायें।

इस सम्मेलन मे भी करीब-करीब ५०,००० पच्चास हजार जनता की उपस्थिति थी। उसमे सभी सज्जनो ने भाषण की अत्यन्त भूरी-भूरी प्रशसा की।

पास-पोर्ट के लिये किये गये उपरोक्त स्पष्टीकरण को सुनकर, वह पुलिस अधिकारी बहुत ही प्रसन्न हुआ, और बोला कि—पास-पोर्ट का अर्थ ही यह होता है कि—यह व्यक्ति चोर नही है, और बागी नही है। महाराज! आप सानन्द जाइए और इच्छा हो उतने दिन और नेपाल में विराजमान रहिये।

नेपाल का कुछ अनुभव

इतिहास के अवलोकन करने पर, यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि—किसी युग में नेपाल, हिन्दुस्तान का ही एक अङ्ग था। बर्मा, सिलोन

और अफगानिस्तान तक भारत की सीमाएँ थी। तथा यहाँ पर जैन-धर्म का बोल-बाला था। परन्तु आज का यह एक ऐसा युग है कि—नेपाल आदि उक्त देशो मे बिना प्रतिबन्ध के मुक्त (स्वतन्त्र) प्रवेश करने का अधिकार नही है। सम्पूर्ण मानव जाति एक है, एतदर्थ, प्रत्येक सज्जन पुरुष को सारे संसार मे स्वतन्त्रता पूर्वक विचरण करने का अधिकार प्राप्त हो, ऐसी मेरी सद्भावना है।

भीम-फेरी से चित्तलाग तक रास्ते मे पानी के झरणो का अपरिमित आनन्द मिलता है। नदियो पर झूलने वाले ६ पुल बने हुए हैं। इन पुलो के नीचे से गुजरने वाली नदियो का मुक्त गुन्जार करता हुआ निर्मल जल बहता है। एक झरने की शब्द-झंकृतियाँ कानो मे गूंजती रहती है कि—दूसरा झरना आ जाता है। इन (झरनो) की संख्या इतनी अधिक है कि—उनकी गिनती करना भी सम्भव नही है। जैसे कोई वाद्य बज रहा हो या स र ग. म का आलाप होता हो। ऐसा यहाँ भान होता है।

इस क्षेत्र के लोग सूर्यास्त होने के पहले-पहल सब काम समाप्त कर अपने-अपने घरो मे घुस जाते हैं। बाजार का और अन्य व्यवसाय का जीवन इन गाँवो मे नही के बराबर है। इन लोगो के लिये रात्रि, चिर-शान्ति-चिर विश्राम का सन्देश लेकर आती है।

नेपाल के इस प्रदेश के लोग किस प्रकार से खेती करते हैं—वह विशेष ढग की होती है। ऊँचा, नीचा पहाडी-प्रदेश होने के कारण हल-बैल से तो खेती हो ही नही सकती। सारी खेती हाथो से ही होती है। उनका पौधो से सीधा सम्बन्ध रहता है।

वीरगज से चितलाग तक का नैसर्गिक दृश्य नन्दनवन की झलक दिखलाने वाला है। ऊँचे-ऊँचे उतग मेरुशिखर, उन पर लम्बे-लम्बे

सागवान के वृक्ष मानो वे आकाश से बातें कर रहे हैं, ऐसा भासता है। थोडी-थोडी दूरी पर ही नदियाँ, नालो के उद्गम स्थान दृश्यमान होते हैं, दिखाई पडते है। इन पहाडो पर से वर्षाकाल मे जब ये नदियें अपने पूर्ण जोश से होश खो कर बहती है, तब सौ-सौ टन के पत्थरो को तो तिनके के समान बहाकर ले जाती है।

मैंने, भेंसिया की नदी के पुल को देखा, जो लोहे की बनी हुई थी। इस तूफानी नदी ने उस (अखण्डनीय) विशाल-काय पुल को अपने तूफान से उखाड कर अनुमान से एक फलांग की दूरी पर ले जा पटका।

इस प्रकार इस रास्ते मे एक तरफ नदियाँ, उनके एक किनारे पर पर्वत स्थित है, और दूसरी ओर नदी के किनारे सडक है और सडक के पास फिर पर्वत है, इस प्रकार का दृश्य अधिक जगह यहाँ देखा गया।

बीरगज और अमोलखगज के जगल मे पानी के नल डाले हुए हैं। और जगह-जगह विशाल फूवारे लगाये हुए है। ये फूवारे जब चलते हैं तब यही महसूस होता है कि—हम एक सुन्दर बगीचे मे हैं।

भीमफेरी से लानकोट तक करीब २२ मील का पहाडी मार्ग (रास्ता) है। इस मार्ग मे हजारो फीट की ऊँची पहाडियो को पार करनी पडती है। भीमफेरी से थानकोट तक का रास्ता तय करने के लिये १०) रुपये मे एक मजदूर मिलता है, वह एक टोकरी मे एक आदमी को उठाकर करीब २० घण्टो मे २२ मील ले जाता है।

इस २२ मील के रास्ते मे तीन जगह धर्मशालाएँ हैं जो अस्त व्यस्त हालत मे हैं। इन (धर्मशालाओ) के अलावा भी यदि यात्री को कही विश्राम करना हो तो दो-चार आने के पैसे देकर किसी एक की झोपडी में विश्राम कर सकता है। वहाँ उस यात्री को चोरी आदि

किसी प्रकार का खतरा नही रहता है। हजारो रुपयो की सपत्ति मजदूर के सिर पर लाद दो, आपको कोई खतरा नही। पुलिस से भी ज्यादा आपकी रक्षा वह मजदूर करता है।

तदनन्तर दिनाक २५-५-५७ को महाराजा श्री महेन्द्र वीर विक्रम ने अपने महलो मे मेरा प्रवचन करवाया।

दिनाक १३ से लेकर दिनाक २६ तक प्रतिदिन प्रवचन होते रहे। तथा नेपाल के प्रधानमत्री श्री टकाप्रसाद आचार्य, खाद्य मन्त्री श्री सूर्यबहादुर साहब, मालपोत उपमन्त्री श्री देवभान जी, प्रधान न्याया-धीश श्री अनरूद्र प्रसाद जी, भारतीय राजदूत श्री भगवानसहायजी, जनरल कर्नल केशर शमसेर "जग बहादुर राणा तथा नगरपालिका धीश आदि नगर के अग्र-गण्य पुरुषो ने भी दर्शन और प्रवचनो का लाभ लिया।

रक्सोल क्लब में मेरा प्रवचन

नेपाल की दुर्गम घाटियो को पुन लाघ कर दिनाक ५-६-५७ को मैं रक्सोल पहुचा। रक्सोल दोनो देशो के मध्य मे होने के कारण एक व्यापारिक मन्डि सा है। यहाँ से नेपाल और मुजफ्फरपुर तक का सीधा राज-मार्ग का निर्माण हो रहा है। यहाँ से सीतामण्ढी, दरभगा, समस्तीपुर और मुजफ्फरपुर आदि के लिये रेलें जाती हैं। हमने उत्तरी-नेपाल की करीब-करीब परिक्रमा दरभगा पहुँचने पर पूर्ण हो जाने की सोची। दरभगा भी इधर का प्रख्यात शहर है। श्रीचन्दजी भारतीय आदि ने आग्रह किया कि—रक्सोल निवासियो को जैन सन्तो के दर्शन कभी नही हुए हैं। यह पहला ही अवसर है कि—हमारे भाग्य-वश आप श्री का यहाँ पर शुभागमन हुआ है। अत आम जनता को आपके प्रवचनो का लाभ मिल सके। एतदर्थ रक्सोल क्लब की तरफ से आपका भाषण करवाने का आयोजन किया गया हैं। इस

लिए हमारी विनती को स्वीकार कर आप वहाँ पधारने की कृपा करें और अपने प्रवचन को सुना कर जनता को कृत-कृत्य करें।

मैंने उनके आग्रह को स्वीकार किया। और रात्रि मे "विश्व को जैन-धर्म की देन" इस विषय पर भाषण दिया। बहुत बडी सख्या मे जनता की उपस्थिति थी। सभी ने प्रवचन की मुक्तकण्ठ से प्रशसा की।

रीगां में मजदूरों के साथ—मैं

रक्सोल से विहार कर चेनपुर आदि गावो मे होते हुए हम रीगा पहुँचा। रीगा मे सुगर मील है। श्री सूरजकरणजी पारिख जोधपुर वाले इस मील के मैनेजर हैं। ता० ११-८-५७ की मैं उनके निवास स्थान पर गया तो उनकी धर्म-पत्नी और बाल-बच्चे ही मकान पर थे। सेठजी, मील-सम्बन्धी आवश्यकीय कार्य के लिये सीतामढी गये हुए थे। मुझे अकस्मात् अपने यहाँ आया हुआ देखकर, सेठजी के बच्चो ने अपने माताजी को कहा कि—माँ! अपने गुरुदेव पधारे हैं। बच्चो की कही हुई बात को सुनकर, चकित हुई सेठानी अविलम्ब उठकर द्वार पर आई और सविधि वन्दना कर हमको (गेस्ट हाउस) मे ठहरा दिया। बच्चे अपने आप गुरु-भक्ति से प्रमुदित हुए दौडे और पिताजी को फोन किया कि—अपने यहाँ गुरुदेव पधारे हैं, अत सभी कार्य को छोडकर अविलम्ब आप वापिस आजावें। फोन के द्वारा उक्त शुभ-समाचार को सुनते ही तुरन्त कार मे बैठ कर मैनेजर सा० आ गये। सविधि वन्दना करने के पश्चात् सेठजी बोले—गुरुदेव! आज का सूर्य मेरे लिये स्वर्ण का उदय हुआ है। आज मुझे इतना आनन्द हो रहा है कि उसका वर्णन मैं मेरी जिह्वा से नही कर सकता। इस प्रकार अपनी प्रसन्नता प्रकट करते हुए सुराणाजी अपने भवन मे गये।

पथ की थकावट से थके हुए हमने गोचरी लाकर, आहार करके कुछ आराम किया।

गाँव मे जब एक-दूसरे से कथोपकथन करते यह बात पसरी की, सेठजी के गुरुजी आये हैं तो, लोग भगे-भगे हमारे विश्राम स्थान पर आने लगे और अपना-अपना मन्तव्यानुसार धर्म-सम्बन्धी प्रश्न करने लगे। मैंने उनके प्रश्नो का समाधान उन्ही के माननीय ग्रन्थो के आधार पर किया, जिसको सुनकर वे सभी अत्यन्त प्रसन्न हुए। पश्चात् सुराणा सा० ने मुझसे निवेदन किया कि—गुरुदेव ! कृपा कर, आप अपने प्रवचन का लाभ यहाँ के मजदूरो को भी दे तो अति उपकार होगा। उत्तर मे मैंने कहा—सेठजी ! धोबी और सन्त एक से होते हैं। धोबी मेले-कुचेले कपडो को साफ करने के लिये श्रम करता है और सन्त अज्ञानी के हृदयान्धकार को दूर करने के लिये (अबोध को बोध देने के के लिये) श्रम करते हैं। मजदूरो मे प्रवचन 'जीवन का लक्ष्य' इस विषय पर हुआ।

रात्रि मे "मनुष्य कर्त्तव्य" मेरा प्रवचन हुआ। ग्राम-वासियो ने और मील के कार्य-कर्त्ता मजदूर एव बाबू लोगो ने बहुत बडी सख्या मे प्रवचन का लाभ लिया। प्रवचन से प्रभावित होकर उपस्थित बन्धुओ मे से बहुत से बन्धुओ ने अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार मास, मदिरा और ससव्यनो का त्याग (प्रत्याखान) किया।

तुम यहाँ क्यों आये ?

रीगा से विहार कर के हम ता० २० जून को दरभगा पहुचे। वहाँ भीनासर वाले सेठ जेठमलजी लूणिया की दुकान है, उनके ऑफिस में हम ठहरे। मध्यान्ह मे—पाँच-सात व्यक्ति जो कि सस्कृत के ज्ञाता थे—हमारे पास आये और बोले। तुम यहाँ क्यो आये हो ? मैंने कहा—मैं अपने भाइयो से मिलने के लिये आया हूँ। प्रमुख विद्वान् बोला—यहाँ तुम्हारे भाई कौन हैं। यहाँ सिर्फ एक ये लूणियाजी ही हैं जो तुमको जानते हैं। इनके सिवाय यहाँ तुमको याद करने वाला

कौन है, बतलाइये। उत्तर मे मैंने कहा—विज्ञवर! नमस्कार की हुई भाषा के प्रखर विद्वान् होने पर भी आप अपनी जिह्वा मे अक्षरो (वर्णो) चारण के स्थान को त्याग कर क्या बोल रहे हैं। यदि आप अपनी उच्चारण की हुई भाषा-भावना के अनुसार ही मुझ से उत्तर चाहते हैं तो, आप जानते ही हैं कि—

एकेनापि सुपुत्रेण—सिंही स्वपिति निर्भयी।
दशेनापि कुपुत्रेण—भार वहति गर्दभी ॥१॥

परन्तु मैं जैन-भिक्षुक (साधु) हूँ, इसलिए आपके किये हुए प्रश्न का उत्तर उक्त रीति मे देना उचित नही मानता। इसके अलावा जैन-साधु के लिये ही नही, षट्-दर्शनानुयायी प्रत्येक साधु के लिये नीति का यह आदेश है, जिसे आप भी जानते ही हैं कि—

"विद्या विवादाय, धनंमदाय, शक्तिः परेषा परिपीडनाय।
खलस्य साधो विपरीतमेतत, ज्ञानाय, दानाय च रक्षणाय ॥१॥"

इसलिये मैं तो फिर भी यही कहूगा कि—आप भी मेरे बन्धु हैं, अतएव मैं आपसे मिलने के लिये आया हू।

विज्ञवर! इतिहास का अध्ययन करने पर यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि—भगवान महावीर का जन्म लच्छवी गणतत्र के सभ्य-नरेश सिद्धार्थ के यहाँ हुआ है और उनका धर्म-प्रचार क्षेत्र भी विशेष रूप से विदेह-देश ही रहा है। तथा विदेह देश एव लिच्छवी गणतत्र के मर्यादा-क्षेत्र मे दरभगा भी है। इस प्रकार जैन-धर्म का महान् गढ यह देश रहा है। यह बात अलग (दूसरी) है कि—बारह वर्षीय दुष्काल मे श्री भद्रबाहु स्वामी इस देश को छोडकर सघ सहित अन्य देशो में चले गये। ऐसा होने पर आपका और हमारा सम्बन्ध-विच्छेद हो गया। आप हमको भूल गये और हम आपको। लेकिन इतिहास (साहित्य) तो बोल रहा है कि—इस देश की करीब-करीब जनता

जैन थी। और जैन—जैन का भाई है। समझिए कि—मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र चौदह वर्षों के लिये वनवास मे गये तो क्या वे अयोध्या के नही रहे। बस, यही बात हमारी और आपकी है।

मेरे इस प्रकार कहने पर वे विद्वान् प्रसन्न हुए यो बोले—महाराज! आपका यहाँ विराजना कितने दिन होगा। मैंने कहा—दो दिन। विद्वानो ने कहा—प्रवचनो का विषय क्या रहेगा। मैंने कहा—आज रात्रि को—"आज के युग की समस्याएँ कैसे हल हों।" और कल मध्यान्ह को—"व्यवहारिक जीवन मे अहिंसा की आवश्यकता।" यो सुनकर प्रसन्न हुए वे (विद्वान्) चले गये। और प्रवचन कराने के प्रचार करने मे अन्तःकरण से सहयोग दिया। परन्तु कुछ सस्कृत के विद्वानो को मेरा दरभगा आना अखरा और उन्होने सारे शहर मे ऐसा वातावरण फैला दिया किया कि—प्रवचन करना (भाषण देना) तो दूर रहा हम उन (जैन-साधु) को एक अक्षर भी बोलने नही देंगे। उन विद्वानो के फैलाये हुए उक्त वातावरण को देख-सुन कर दो व्यक्तियो ने मुझको आकर कहा—

महाराज! व्याख्यान में बडी गड-बडी हो जायगी और लाभ की बजाय नुक्सान अधिक हो जायगा। इसलिये प्रवचन देने का प्रोग्राम स्थगित (बन्द) कर दीजिये।

उन बन्धुओं के इस प्रकार निवेदन करने पर, उत्तर में मैंने कहा—

बन्धुओ! लाभ के बजाय नुक्सान अधिक करने के लिये मैं आपके यहाँ नही आया हू। आप निश्चित रहिये। मैं वहाँ जाकर अवश्य भाषण दूँगा और देव, गुरु तथा धर्म के प्रताप से उनका मानस परिवर्तन होगा।

सूर्यास्त होने के पहले ही मैं, प्रवचन के लिए निश्चित किये हुए स्थान पर चला गया। प्रवचन सुनने की हार्दिक-सद्भावना से उत्कण्ठित हुए अनुमान के चार या पांच हजार स्त्री-पुरुष एकत्रित हो गये। मैंने अपना प्रवचन शुरू किया और षट्-दर्शनीय सिद्धान्तो के आधार पर जनता के घोषित किये हुए विषय का विवेचन करीब-करीब दो घण्टे तक किया। वे पण्डित भी वहाँ उपस्थित थे—जिन्होने कि—नगर मे मेरे विरूद्ध एक वातावरण विकसित किया था। मेरे भाषण के विरूद्ध जब कोई कुछ नही बोला—तो, प्रवचन की समाप्ति मे मैंने कहा—मैंने तो सुना था कि—प्रवचन होना तो दूर रहा, तथा उनको जैन-साधुओ के सभा मे बैठने ही नही देंगे और चर्चा मे हरा देंगे। किन्तु दो घण्टे के प्रवचन के बाद भी आप कुछ भी नही बोल रहे हैं—क्या कारण है? खैर! मेरे निकट एक घण्टे का अभी और समय है। अत मेरे दिये हुए भाषण मे से किसी को कुछ भी शका हो, तो उसका निराकरण कर सकते हैं। तथा जैन-धर्म से सम्बन्धित प्रश्न पूछना हो, तो पूछ सकते हैं। मेरे ऐसा कहने पर—एक व्यक्ति खडा होकर यो बोला—मुनि महाराज! आपने उक्त विषय का विवेचन एक ऐसी तटस्थता से किया है कि—उस पर किसी को कुछ भी बोलने का अवकाश ही नही मिला। किन्तु कल तो हम आपको हराए बिना नही रहेंगे। विद्वान यो कहते हुए व सभी लोग अपने अपने स्थान को वापस चले गये।

दूसरे दिन फिर मध्याह्न के तीन बजे निश्चित किये हुए विषय पर मैंने प्रवचन प्रारम्भ किया। आज जनता की भीड इतनी अधिक हो गई थी कि—व्याख्यानार्थ प्रबन्ध किये हुए स्थान मे वह न समा सकी। फिर भी शान्ति अपार थी। बडे-बडे पण्डितो की उपस्थिति प्रचुर मात्रा मे थी। अहिंसा के प्रभाव का उतार-चढ़ाव भारत मे कब-कब और किस-किस के द्वारा हुआ। इसका विवेचन शास्त्रीय

पद्धति एवम् लोक-प्रचलित दलीलो के द्वारा ही दो घण्टे तक मैंने किया। जिसको सुनकर युवक और वृद्ध सभी गद्गद हो गये। अधिक तो क्या, जिस पण्डित-मण्डली के हृदय मे मेरे प्रति नही, वल्कि जैन-धर्म के प्रति जो दुर्भावना थी। वह सद्भावना के रूप में जागृत हो उठी। और एक पण्डितजी जो कि—वयोवृद्ध एवम् विद्यावृद्ध थे, वे उठ खडे हुए और यो बोले—

मुनिवर! हम यह नही समझ पा रहे हैं कि—जैन-धर्म के लिये इतिहास मे हमने देखा तथा प्रचलित लोक-किम्वदन्तियो से सुना, वह ठीक है या आपने आज अपने भाषण मे फरमाया कि—वह ठीक है। आज आपके द्वारा इस प्रकार जैन-धर्म की महानता एवम् उसकी "वसुधैव कुटुम्बकम्" की विमल भावना की जानकारी से भरा प्रवचन को सुनकर हम वहुत ही प्रभावित हुए है।

महात्मन्! हमारा सभी का अनुरोध स्वीकार करके कल तक यहाँ पर ही विराजने की कृपा करें और एक व्याख्यान और भी फरमा कर हमे कृतार्थ करें।

मैंने पण्डितजी के तथा सभी सज्जनो के अनुरोध को स्वीकार किया। दूसरे दिन एक विशाल स्थल पर प्रवचन देने का प्रवन्ध किया गया। मैं ठीक समय पर वहाँ पहुँच गया। जनता ने हर्षनाद से मेरा स्वागत किया। मानव-कर्त्तव्य पर प्रवचन हुआ। प्रवचन की समाप्ति पर मैंने कहा—

वन्धुओ! मुझे अत्यन्त हर्ष होता है कि—आप सभी भाई और वहिनो ने मेरे विचारो को खूव ध्यान पूर्वक एवम् शान्ति पूर्वक तीन-तीन दिनो तक सुने हैं। अव आने वाले प्रभात मे—मैं आप लोगो से विछुडने वाला हू। इसलिये मैं आपसे एक वात की भिक्षा माँगता हू। वह भिक्षा यह है कि—जिस भाँति आप इस समय प्रभु-भक्ति, गुरु-सेवा

और अतिथि-आदर करने मे तल्लीन है, उमी भाँति मदा के लिये तल्लीन रहने की प्रतिज्ञा धारण करें।

मैंने उक्त कथन का समादर करते हुए वहुत से भाई और वहिनों ने प्रसन्नता पूर्वक प्रतिज्ञाएँ ली और गद्गद् होते हुए यो कहने लगे कि—भक्त-शिरोमणि श्री नाभाजी की यह सूक्ति सोलह आना सत्य ही है कि—

॥ दोहा ॥

"भक्ति, भक्त भगवन्त गुरु, चतुर नाम वपु एक।
इनके पद वन्दन किये, नाशत विघ्न अनेक ॥१॥"

आप मच्चे निर्मोही हैं, मत्य भाषी है, आपने अपने भाषण मे कभी किसी धर्म और सिद्धान्त की अवहेलना (निन्दा) नही की है। एतदर्थ सच्चे गुरु हैं। इसलिये हम सव लोग कर-वद्ध होकर यह प्रार्थना करते हैं कि—इस आने वाले चातुर्मास की स्वीकृति तो आपने मुजफ्फरपुर के वन्धुओ को दे दी है। परन्तु उसके आगे के चातुर्मास की स्वीकृति हमें प्रदान करने की कृपा करें। सभी भाई-वहनो के इस प्रकार की प्रार्थना करने के वाद, एक भाई फिर यो वोला कि—गुरुदेव! यदि आप हमारी प्रार्थना को जो हमारे यहाँ चातुर्मास कराने के लिये की गई है, उसको स्वीकार करके हमे कृतार्थ करें, तो मैं सवा वर्ष पर्यन्त सात व्यक्तियो के द्वारा प्रभु-भजन की अखण्ड धुन लगाने के लिये उद्घाटन आपके कर-कमलो द्वारा ही कराऊँ और पाँच-लाख रुपयो का व्यय धार्मिक कृत्यो के लिये करूँ।

उन (भाई और वहिनो) की इस प्रकार अनन्य गुरु-भक्ति को देख कर, मेरा हृदय प्रसन्नता से गद्गद् हो उठा और धर्म-प्रेम से अवरुद्ध हुए कण्ठ से मैं यो वोला कि—सज्जनो! आपका धर्म-राग वहुत

प्रशमनीय है। परन्तु हमारा जीवन, गुरु-आज्ञा का जीवन है। गुरुदेव जैसा आदेश देते हैं, वैसा ही हम करते हैं। इसलिये चातुर्मास की स्वीकृति देने मे—मैं असमर्थ हू। ऐसा कह कर मैंने प्रवचन को समाप्त किया।

सच्चे देश भक्तों के साथ मेरा सम्मिलिन

उत्तर बिहार मे पूसा रोड स्टेशन अधिक मात्रा मे प्रसिद्ध है। यहाँ पर गाधीवादी कार्यकर्त्ताओ के बहुत बडे दो केन्द्र बने हुए हैं। एक तो "कस्तूरबा महिला विद्यालय" और दूसरा "खादी ग्रामोद्योग कार्यक्रम"। इन दोनो मे बहुत बडी सख्या मे भाई और बहिनें काम करते हैं।

"कस्तूरबा महिला विद्यालय", महिलाओ के शिक्षण का और उन्हे ग्राम-सेविका बनाकर ग्रामो मे सेवार्थ भेजने का आदर्श कार्य कर रहा है। इस विद्यालय की बहनें इस प्रान्त के प्रत्येक गाँव मे जाकर वहाँ की अशिक्षित महिलाओ को, शिक्षा देना, ग्रामोद्योग सिखाना, सिलाई का कार्य सिखाना आदि कार्य करती है। इनका सचालन, बिहार शाखा कस्तूर बा स्मारक की निधि से होता है। यहाँ की सचालिका सु श्री सुशीला अग्रवाल, ऊँचे विचार की और सेवा—त्यागमय जीवन बिताने वाली ब्रह्मचारिणी, तरुणी है। सुना है कि—यह नागपुर के किसी कॉलिज मे प्रिन्सिपल थी। और काफी धन-राशि वहाँ इसको मिलती थी। फिर भी सेवा-धर्म के मर्म को सर्वोपरि समझ कर वे वहाँ का कार्य छोडकर यहाँ काम करती है। एक यहाँ माताजी हैं, जिन्हे सभी लोग गायो के माताजी के नाम से पुकारते हैं कहते हैं कि—कैसी भी कमजोर और व्याधि-व्यथित गाय को इनके पास रखदो, ये उसे अपनी कार्य कुशलता से ठीक कर देंगी, हृष्ट-पुष्ट बना देंगी। जिस गाय की आयु ही खतम हो गई है तो यह बात दूसरी है।

यहाँ की दूसरी मुख्य संस्था खादी ग्रामोद्योग की है। खादी तैय्यार करने के लिये आरम्भ से लेकर अन्त तक के समस्त कार्य का प्रदर्शन यहाँ होता है। जैसे—कपास पैदा करना, धुनना, कातना कपड़ा बनाना, और अम्बर चरखे तैय्यार करना आदि। उक्त कार्य को सीखने की यदि किसी की इच्छा हो तो उसको सिखलाया भी जाता है। यह संस्था गाव की तरह बहुत बड़े पैमाने पर बसी हुई है। अम्बर चरखे द्वारा स्वावलम्बी बनने के लिये, गरीबी मिटाने के लिये यह प्रयोग यहाँ बड़े जोर-शोर से कर रहे हैं। राष्ट्र के नेताओ का कथन है कि—देश मे जो बेकारी का भूत घुसा हुआ है, उसको भगाने के लिये इस संस्था की स्थापना की गई है।

अजैन समाज में मेरा चातुर्मास

ता० ६-७-५७ को मुजफ्फरपुर चातुर्मासार्थ हम पहुँचे। स्वागतार्थ हमारे सामने केवल कान्ति भाई गुजराती अकेले ही आये। ठहरने के लिये मारवाडी धर्मशाला के ऊपर का हॉल निश्चित किया गया था, इसलिये सीधे हम वहाँ गये तो उस हॉल के लिये भी ना मंजूरी। कान्ति भाई के कहा-सुनी करने पर, धर्मशाला के व्यवस्थापक ने बड़ी मुश्किल के साथ नीचे की कोठरी मे एक दिन के लिये ठहरने की इजाजत दी। हम वहाँ ठहरे और गोचरी लाकर आहार किया।

मैंने सोचा कि—पहले हम यहाँ आये थे तब तो सैकडो की संख्या मे नर, नारी दर्शनार्थ आते थे, प्रेम, भक्ति श्रद्धा पूर्ण उत्साह के साथ चातुर्मास की स्वीकृति भी इसी आधार पर दी थी परन्तु आज एक साथ उस सब प्रेम मय वातावरण सफाचट्ट होने का कारण क्या? इस प्रकार मैं सोच ही रहा था कि—श्री नागरमलजी बका—"जो कि वहाँ के प्रतिष्ठित पुरुष हैं"—मेरे पास आये। मैंने उनके सामने मनोभाव व्यक्त किया और कहा—कि—चातुर्मास लगने के लिये सिर्फ

चार दिन ही अब बाकी है, और यहाँ की परिस्थिति यह आपके सामने हैं कि एक भी व्यक्ति दिखाई नहीं देता तथा चार मास पर्यन्त ठहरने के लिये न कोई व्यवस्थित स्थान ही मिला। चातुर्मास की स्वीकृति कराने के समय तो सैकड़ो की सख्या मे नर और नारी सम्मिलित थे, परन्तु आज आपके और कान्ति भाई तथा आपके सिवाय एक भी नहीं दिखाई दिया इसका क्या कारण है ?

मेरे इस प्रकार कहने पर, बकाजी बोले—महाराजजी ! इसमें मुख्य कारण ब्राह्मणो का है। हमारी जाति पर ब्राह्मणो का प्रभाव प्रबल है, और अधिकतर ब्राह्मण जैन-धर्म के विरोधी हैं। पहले आप आये थे तब काफी लोग आपके पास आते थे, जिससे वे ईर्ष्यावश जल गये। आपके सामने तो उनका कुछ वश नही चला। किन्तु आपके विरुद्ध उन्होंने लोगो को बहकाया-भडकाया। इसी से लोग बहके हुए हैं। आप धैर्य रखिये, शनै शनै सत्य सामने आयगा। इस समय आपको धैर्य और विवेक से काम लेना होगा। मैं आपको एक युक्ति बतलाता हूँ। यहाँ से दो मील की दूरी पर गगा-नदी है, उसके किनारे पर एक विशाल वट का वृक्ष है, उस वृक्ष के नीचे आप जाकर बैठ जाइये। मैं वहाँ मोटर मे कुछ व्यक्तियो को लेकर आता हूँ और आप अपने विचार उस वक्त व्यक्त करना। (उपदेश सुनाना)

मैं बकाजी के कथनानुसार वट वृक्ष के नीचे जाकर बैठ गया। थोडी ही देर के बाद कुछ व्यक्ति जो कि मेरा चातुर्मास कराने की विनती मे शामिल नही थे और मेरे से बिल्कुल ही अपरिचित थे उनको साथ लेकर बकाजी वहाँ आये और अनजान की भाँति हमारे सामने आकर बैठ गये। मैंने करीब आधा घण्टा उनको प्रवचन सुनाया। मेरा प्रवचन सुनकर बकाजी के साथ के सभी सज्जन बहुत प्रसन्न हुए और यों बोले।

महाराज ! आप किधर से पधारे हैं। मैंने कहा—नेपाल से समस्तीपुर होकर यहाँ आया हूँ। चार महीने पहले भी मैं यहाँ आया था। वे (जो बकाजी के साथ आये थे) बोले—अब आप यहाँ कितने दिन ठहरेंगे। मैंने कहा—चार महीने। उन्होंने कहा—चार महीनो मे आपका क्या कार्यक्रम होगा। मैंने कहा—मैं आप लोगो की सेवा करूंगा। वे बोले—हमारी क्या और किस प्रकार की सेवा करेंगे। मैंने कहा—मुझे जो जैसा भी गुरुदेव से ज्ञान प्राप्त हुआ है वह आपके सामने समय-समय पर रखता रहूंगा। इसी वट-वृक्ष के नीचे सप्ताह मे दो दिन (रविवार और गुरुवार को) प्रवचन सुनाता रहूँगा। वे बोले—आपकी भेंट क्या होगी। मैंने कहा—मेरी भेंट वैसे तो बहुत बडी है, किन्तु इस समय मैं सेवा भाव से ही प्रवचन सुनाता रहूंगा। वे बोले—नहीं, भेंट तो आपको खोलनी (बतानी) ही होगी। मैंने कहा—मेरी भेंट सोना, चाँदी, रुपया, पैसा, नोट आदि की तो नही होगी, कारण कि—इनको तो त्याग करके ही मैं साधु बना हूं। किन्तु आप अपनी शक्ति के अनुसार कोई किसी प्रकार का त्याग करेंगे, बस यही मेरी भेंट होगी। उपरोक्त बात-चीत मे वे बडे प्रसन्न हुए। और चातुर्मास मे सेवादि करने का उन्होंने अपने मन मे दृढ संकल्प कर लिया तथा सादर वंदना करके नगर को वापिस लौट गये।

उन लोगो का बकाजी ने सहयोग प्राप्त कर, हमारे ठहरने के लिये श्री नागरमलजी बका ने धर्मशाला के ऊपर के दो हाल और दो कमरे धर्मशाला के मालिक से चार महीने के लिये दिलवा दिये।

दो दिन के बाद रविवार आया, तो पच्चीस, तीस भाई लोग निश्चित् समय पर व्याख्यान-भाषण हेतु उस वट-वृक्ष के नीचे आ खडे हुए। मैं भी निश्चित् समय पर वट-वृक्ष के नीचे उपस्थित हो गया। प्रवचन सुनाया तथा प्रवचन को सुनकर वे लोग काफी प्रभावित हुए।

इस प्रकार श्रोताओ की संख्या दिन व दिन बढते-बढते ४०० सौ से ५०० सौ तक की होने लगी। इस प्रकार सवा महीना निकल गया।

पर्यूषण-पर्व का समय निकट आया। तो मैंने अपने केशो के लुचन करने की तारीख एक महीने पहिले से ही घोषित करदी थी। इससे ही केश-लुचन करने के विषय से जनता मे विविध-भाँति की चर्चा होने लग गई। कोई कहने लगा कि—पाउडर लगा लेंगे। किसी ने कहा कि—कोई दवाई ऐसी होगी, जिसको प्रयोग मे लायेंगे। किसी ने कहा कि—जैन-साधु जीवन ही महान् है। उसमे किसी भी प्रकार की पोल-पाल चल नही सकती है। इत्यादि।

लुचन करने के दिन, धर्मशाला के ऊपर के दोनो हॉल, दोनो बरामदे तथा कमरे पूर्ण भर गये। लुचन करने के पहिले मैंने कहा कि—जैन-साधु ही एक ऐसे हैं, जिन्होने अपनी पुरातन संस्कृति की रक्षा की है और करते जा रहे हैं। लुचन करना ही जैन-धर्म का मुख्य नियम है। इसके लिये किसी भी प्रकार का पाउडर, साबुन या दवा का प्रयोग नही किया जाता है। हाँ, सिर्फ राख को तो अवश्य ही काम मे ली जाती है। और वह भी हाथ मे पसीना न हो जाये और पसीना होने से लुचन करते समय हाथ मे से केश छूट न जाय तथा बाल छूट जाने से रूँ-तोड की बिमारी होने की सम्भावना न रहे। राख सिर पर लगाने से सेप्टिक नही होता। आपको अगर इस राख में पाउडर आदि किसी वस्तु का सम्मिश्रण कर देने का भ्रम हो तो, थोडी राख ले लीजिये और लिबोरेटरी में टेस्ट करवा लीजिए तथा मेरे सिर पर हाथ फेर कर देख लीजिए कि—किसी भी प्रकार की दवाई का लेप तो नही लगाया गया है। इस प्रकार कह कर—मैंने अपना लुचन करना आरम्भ कर दिया।

लुचन क्रिया को देख कर सभी लोग चकित हो गये। लोच सिर्फ ४५ मिनट में हो गया। तत्पश्चात् एक घण्टा प्रवचन किया।

सभी सज्जन वडे ही प्रसन्न हुए और जैन-धर्म की वहुत वडी प्रभावना हुई। जैन-धर्म की, जैन-साधु की क्षमता, धैर्यता और त्याग वृत्ति की वहुत ही भूरी-भूरी प्रशसा होने लगी।

सांस्कृतिक–सप्ताह

दिनाक २५–८–५७ से दिनाक २–८–५७ तक का एक विशिष्ट सास्कृतिक–सप्ताह मनाया गया। जिसमे मेरे और विद्वानो के भिन्न-भिन्न विपयो पर भापण हुए।

दिनाक २५-८-५७ को भारतीय सस्कृति और जैन-धर्म की देन।
दिनाक २६-८-५७ को वेदान्त–दर्शन।
दिनाक २७-८-५७ को वैदिक–सस्कृति।
दिनाक २८-८-५७ को वर्त्तमान–युग मे धर्म का स्थान।
दिनाक २९-८-५७ को अहिंसा एवम् विश्व–मैत्री।
दिनाक ३०-८-५७ को वर्त्तमान–युग मे धर्म की आवश्यकता।
दिनाक ३१-८-५७ को ईसाई–धर्म।
दिनाक १-९-५७ को वौद्ध–धर्म।
दिनाक २-९-५७ को सैंधव–सभ्यता।

दिनाक ३-९-५७ को विश्व-शान्ति के हेतु एक सामूहिक-प्रार्थना का आयोजन किया गया था।

उपरोक्त कार्य-क्रम मे मुजफ्फरपुर की जनता ने आशातीत सख्या में भाग लिया। जितने भी कॉलिज यहाँ पर हैं, उन सभी कॉलिजो के प्रिन्सिपलो ने और करीव-करीव विद्यार्थियो ने भी खूव रस लिया।

इस वात को तो प्रत्येक विचारशील पुरुप अच्छी तरह से जानता है और मानता ही है कि—सस्कृति ही जीवन के विकास की सीढ़ी है।

मानव—समाज प्रकृति की ओर बढ़ें, यह परम आवश्यक है। परन्तु आज तो चारो ओर विकृतियाँ दिखाई दे रही है। खान-पान, रहन-सहन, वेष-भूषा, बोल-चाल आदि सभी कामो मे ऐयाशी, दिखाऊ-पन, आडम्बर, स्वार्थ और अवास्तविकता का समावेश बडे समारोह के साथ हो रहा है। कवि का यह कथन सर्वथा सत्य ही प्रतीत हो रहा है कि—

जमाना है मिलावट का कि, चीजों में मिलावट है।
रहा कुछ भी नहीं खालिस कि, बीजों में मिलावट है॥
जब इस दुनिया में आता है तो खालिस, कुछ नहीं पाते।
बने हैं इसलिए झूठे कि—घूट्टी में मिलावट है॥
न असली घी नजर आया, न खालिस दूध ही चक्खा।
अनाजों में मिलावट है, मसालों में मिलावट है॥
कहा बिमारियों ने, आओ, मिल कर करें हमला।
कि अब कोई नहीं खतरा, दवाओं में मिलावट है॥
ये धुंधले नयन, हिलते दाँत, यूं फरियाद करते हैं।
कि, अजन में मिलावट है, और मजन में मिलावट है॥
ये स्कूल और कॉलिज में, कि विद्या की दुकानें हैं।
मजे की बात विद्या में, अविद्या की मिलावट है॥
तरक्की कर रहे हैं दिन ब दिन, फिर क्युं है ये बे-चैनी।
वह एटम बम्ब बताता है, तरक्की में मिलावट है॥
मिलावट इस कदर अब रच गई है, अपनी आदत में।
कि टकसाली जो सोना था, अब उसमें भी मिलावट है॥
नहीं होती है हल मुश्किल, करे लाखों जतन कोई।
वजह यह साफ जाहिर है, विचारों में मिलावट है॥

यह दिशा सस्कृति की नही, किन्तु विकृति की है। अतः जगह-जगह सास्कृतिक सप्ताहो के द्वारा जनता को शिक्षित बनाने की पूर्ण आवश्यकता है।

मुजफ्फरपुर मे उक्त सास्कृतिक सप्ताह के आयोजन ने अकथनीय वैचारिक जागृति उत्पन्न की और लोगो को यह अनुभूति हुई कि, अपने जीवन मे सयम, स्वाध्याय, आध्यात्मिकता आदि को प्रश्रय अवश्य देना चाहिये और प्रत्येक प्रवृत्ति के पीछे एक निश्चित उद्देश्य होना चाहिए। इस सास्कृतिक सप्ताह के मनाने से मुजफ्फरपुर की जनता ने जैन-धर्म की, एव उसके सर्व-धर्म समन्वयकर्त्ता स्याद्वाद सिद्धान्त की भूरि-भूरि प्रशसा की।

महिला सम्मेलनों की धूम

इस चातुर्मास में बहुत से मोहल्लो मे और बाजारो मे मेरे प्रवचन होते रहे और जनता को सद्प्रेरणा मिलती रही। इसके साथ ही महिला जागृति की ओर भी ध्यान दिया गया। कारण कि स्त्री पुरुष ये दोनों समाज रूपी रथ के दो चक्के हैं। इन दोनो चक्को के स्वच्छ हुए विना यह रथ चल ही नही सकता। आज भारतीय समाज मे, जिसमे भी फिर उच्च और मध्यम वर्ग मे महिलाओ की दशा अत्यन्त शोचनीय है। उनमे शिक्षा का तथा अच्छे सस्कारो का अभाव है। उन्हे किसी भी प्रकार की स्वतत्रता नही है, एतदर्थ वे हर एक क्षेत्र मे बहुत पिछडी हुई है। इसलिये मैंने इस पहलू की ओर विशेष ध्यान दिया।

पहला महिला-सम्मेलन ता० १३-१०-५७ को गगाप्रसाद पोद्दार स्मृति-भवन मे हुआ। दूसरा ता० १८-१०-५७ को महिला समाज साहुजी पोखर कीर्तन मण्डल की ओर से महिला-मण्डल मे हुवा। ता० २४-१०-५७ एव ता० ३१-१०-५७ को भी विराट महिला-सम्मेलन गगाप्रसाद पोद्दार स्मृति-भवन मे हुए व ता० ४-११-५७ को नागरमलजी वका की दुकान के विशाल-प्रागण मे हुआ। इन सम्मेलनो मे मेरे

और नगर की विदुषी सु श्री विमलानन्दाजी, सु श्री भगवतीदेवी वका, सु श्री वीणाकुमारी शर्मा आदि के ओजस्वी भाषण हुए।

इस प्रकार के आयोजनो (सम्मेलनो) से नारी जागृति के लिए विशेष रूप से प्रेरणा मिली। और अनेक भाईयो तथा वहिनो ने मुझसे कहा कि—महात्माजी! अनेको महन्त और सन्त यहाँ आये तथा विविध भाँति के उपदेश सुनाये परन्तु हमारे क्या कर्त्तव्य है और महापुरुषो के प्रवचनो को जीवन मे उतारने से पहले किस प्रकार पात्र वनना, यह तो आप ही ने प्रेम-पूर्वक उदारभाव से वतलाया, जिसकी कि हमारे लिये पूरी-पूरी आवश्यकता थी।

इस प्रकार मुजफ्फरपुर मे सानन्द चातुर्मास समाप्त कर ता० ८-११-५७ को प्रात आठ बजे हमने विहार किया। विहार का दृश्य देखने योग्य था। 'प्रेमाश्रुभरी' हजारो आँखे मूक भाव से वडी श्रद्धा के साथ हार्दिक वन्दना समर्पण करती हुई तीन मील तक हमारे साथ आई। मैंने श्री नागरमलजी वका के विशाल उद्यान मे विश्राम किया। सभी जनता भी बैठ गई। तब श्री गोपीकृष्णजी जौहरी खडे होकर यो बोले।

महात्माजी! आप श्री का यहाँ पधारना जीवन-पर्यन्त हमे याद रहेगा। सैकडो सन्त महन्त यहाँ आये किन्तु आपका आना बहुत ही महत्वपूर्ण रहा। आपको जो सम्मान मिला वह किसी बडे महन्त को भी नही मिला। यो तो आप विशिष्टताओ के वारिधी ही है। फिर भी आपकी दो विशिष्टताओ ने जन-जन के मन को मुग्ध कर दिया। एक तो यह कि—कनक का सर्वथा त्याग। दूसरी यह कि—कामिनी के परिचय मे नही आना। मैंने स्वय अनेक व्यक्तियो के साथ खानगी मे (स्पेशल रूप से) आपकी इन दो विशिष्टताओ की जानकारी प्राप्त की तो आप सभी तरह से महान् मान्नित हुए इसमे रत्ती-भर सदेह नही। अत आपसे सानुरोध प्रार्थना है कि—हमारी सार सभाल समय-समय पर करते रहे—निम्वहुना।

पोखरेरा में मेरा प्रवचन

मुजफ्फरपुर से विहार कर स्पर्शना से प्रेरित हुआ—मैं अनेक ग्रामो मे विचरण कर पोखरेरा पहुँचा। वहाँ मुझे अगले गाँव मे यह कहा गया था कि—पोखरेरा मे मधु-मगलप्रसादजी वडे सज्जन है। उनके निवास स्थान पर ही आप पधार जाना। इसी आधार पर हम उनके निवास स्थान पर पहुँचे। उन्होने हमको देखा तो वो गरज उठे और कहने लगे कि—तुम कौन हो, यहाँ पर क्यो आये हो ! तुम्हारे उद्देश्यो की पूर्ति यहाँ पर होने वाली नही है। मैं अभी पुलिस को बुलवा कर पकडवा देता हू। तुम लोग अपना मुंह वांध कर सारी दुनिया को लूटते फिरते हो। इत्यादि वातो की उन्होने झडी लगा दी। मैंने कहा—मैं जैन-साधु हू ! पैदल यात्री हूँ ! पैसा आदि द्रव्य मेरे पास मैं नही रखता हू ! मुजफ्फरपुर में मेरा चातुर्मास था। वहाँ से मैं विहार कर, पैदल यात्रा करता हुआ, भगवानपुर, चढी, करना आदि ग्रामो को स्पर्शता हुआ यहाँ पर आया हू। मैंने सुना है कि—आप सन्त प्रिय सज्जन व्यक्ति हैं। इसीलिये मैं यहाँ पर आया हू, वाकी हम जैन-साधु तो जगल मे भी रह सकते हैं। तव मधुमगलजी वोले कि—आपका नाम लाभचन्दजी है क्या ?। आपका नाम पेपरो मे छपा हुआ मैंने पढा है और कई व्यक्तियो के द्वारा भी सुना है। आपने इस वर्ष मुजफ्फरपुर को एक जिन्दा-जागता तीर्थ-क्षेत्र वना दिया। मेरी अनेक वार आपके दर्शन करने की इच्छा हुई। किन्तु दर्शन नहीं कर सका। किन्तु सन्त वडे दयालु होते हैं, वे अपने भक्तो की सुधि लेने मे सदैव ही तैयार (तल्लीन) रहते हैं। अच्छा हुआ, श्री राम शिवरी की सुधि लेने के लिये स्वय चलकर उसके यहाँ गये। इसी प्रकार आप स्वय मेरी सुधि लेने के लिये यहाँ पर पधार गये। आओ, विराजो इस कुटिया मे। और हम उनके मकान पर ठहर गये।

हाँ, तो हमारे वहाँ पर ठहर जाने से वे इतने खुश हुए कि—वे स्वय अपने यहाँ के प्रत्येक प्रतिष्ठित पुरुष के घर-घर जाकर यह शुभ-सन्देश दिया। और कहा—चलो ! बहुत उच्चकोटि के सन्त भाग्यवश अपने यहाँ पर पधारे हैं। उनके दर्शन करो और प्रवचन भी सुनो।

उनके शुभ-सन्देश को सुन कर, काफी दर्शनार्थ लोग आये और रात्रि मे प्रवचन सुनाने की प्रार्थना भी की। तो उनकी प्रार्थना को स्वीकार करके—मैंने "साधु-जीवन" इस विषय पर रात्रि मे भाषण भी दिया। जिसको सुन कर सभी सज्जन प्रमुदित हुए और कुछ दिनो के लिये और ठहरने की प्रार्थना की। मैंने कहा—इस समय अधिक स्थिरता करने की आपकी प्राथना को स्वीकार ने का अवसर नही है। मैं समयाभाव के कारण विवश हूँ, फिर भी कल के लिए एक दिन यहाँ और ठहर जायेंगे।

खादी पहनने की प्रतिज्ञा

पोखरेदा से विहार कर, मैं सरैया कोठी मे दिनांक १०-११-५७ को पहुचा। वहाँ पर सामान रख कर वासुकुण्ड चला गया। जो पर भगवान् महावीर का जन्म स्थान है। वहाँ के निवासियो से देवी के सामने बलि चढाने के सम्बन्धी चर्चा हुई। वे बोले—महाराज ! गत महावीर जयन्ती पर आप यहाँ पर पधारे थे और हिंसा को रोकने के लिये आपने काफी प्रयत्न किया था। परिणाम स्वरूप रुपये मे चौदह आना तो हिंसा का होना बन्द हो ही गया है। किन्तु दूर के गाँव वालो को इस बात की जानकारी नही होने से वे जरूर बलि चढाने के लिये यहाँ पर आये थे। उनमे से कुछ व्यक्ति जो हठग्रही थे, उन्होंने जरूर बलि चढाई है। पर अब से वह भी बन्द हो जायेगी। ऐसा कह कर—उन बन्धुओ मे से, पाँच बन्धुओं ने उसी समय यह प्रतिज्ञा

मेरे सामने ली कि—पहले हमारे सिर की बलि होगी और फिर बाद मे पशु की। उनके इस प्रकार जागृत हुए, धर्म-प्रेम को देख कर, मैंने भी यह प्रतिज्ञा धारण करली कि—साधु मर्यादा के अनुसार शुद्ध खादी के वस्त्र मिलते रहे तो आज के पश्चात् मैं भी विशुद्ध खादी के वस्त्र ही पहनूगा अन्य भाँति के वस्त्र नही पहनूगा।

जैन-धर्म की तीन धाराओं का सम्मिलन

सरैया कोठी—वासुकुण्ड से विहार कर, स्पर्शनानुसार ग्रामानुग्राम विचरता हुआ मैं आरा गया। आरा एक प्रसिद्ध शहर है। इसमे जैन-दिगम्बर समाज के काफी मकान हैं। कई विद्वान भी है। जैन-दिगम्बर समाज की ओर से महिला-शिक्षण और महिला-जागृति का जो कार्य यहाँ पर हो रहा है वह आदरणीय एवम् उल्लेखनीय है।

यहाँ का सरस्वती-पुस्तकालय देखने योग्य है। वास्तव मे पुस्तकें मानव-जाति की सबसे बडी निधि है। मनुष्य का ज्ञान-कोष पुस्तक-मन्जूषा मे ही प्राय सचित रहता है। आदमी चला जाता है, परन्तु पुस्तक मे प्रतिष्ठापित उसका अनुभव-ज्ञान सदा के लिये अमर (कायम) रहता है। आज पुस्तकें विद्यमान न होती तो आज जो भी, हजारों वर्षों पहले का प्राचीन (पुराना) साहित्य और आगम (ज्ञान) उपलब्ध है, वह कहाँ से मिलता। इसलिये ज्ञान-भण्डार, आगम-भण्डार, पुस्तकालय आदि का बहुत महत्व होता है। यहाँ (सरस्वती-पुस्तकालय मे) भी महत्वपूर्ण ग्रन्थो का सग्रह, हिन्दी साहित्य के अलावा कन्डी भाषा मे करीब-करीब १५००० हस्त-लिखित पुस्तकें ताड-पत्र पर विद्यमान हैं। सस्कृत-साहित्य मे भी बहुत-सी है।

मूर्ति-पूजक समाज के आचार्य श्री चन्द्रसागरजी महाराज साहब पटना का चातुर्मास समाप्त कर, यहाँ पधारे। आपके साथ अति प्रेम-पूर्वक वार्तालाप हुआ।

श्री शान्तिनाथ जैन-मन्दिर मे श्री आदिसागरजी महाराज साहब विराज रहे थे। दुपहर के समय उनका प्रवचन हो रहा था। इतने मे एक पण्डितजी ने आकर कहा—यहाँ पर दिगम्बर मुनि विराज रहे हैं, क्या आप उनके शामिल प्रवचन कर सकेंगे। मैंने कहा कि—हाँ, बडी खुशी से। सन्तो के साथ, सन्तो का प्रवचन होना बहुत ही आवश्यकीय एव प्रशसनीय है। दोनो के सम्मिलित प्रवचन हुए। जनता पर इस प्रकार हमारे परस्पर प्रेम-पूर्वक सम्मिलन और एक साथ भाषण देने का प्रभाव अत्यन्त अनुकूल पडा।

हम, सभी जैन-सम्प्रदायो के जैन-मुनि, अनेकान्तवादी भगवान् महावीर के पुजारी हैं। हमे परस्पर मे प्रेम-पूर्ण व्यवहार रखना, भगवान् महावीर के सिद्धान्तो का पालन करना है। मान्यता का मत-भेद हमारे मे अवश्य है। फिर भी मूल-सिद्धान्तो मे तो करीब-करीब हम-सब एक ही हैं।

सहसाराम में—मैं

आरा से विहार कर, मैं सहसाराम गया। सहसाराम उस समय मुगल-युग (सत्ता) मे एक महत्वपूर्ण नगर था। आज भी इसका ऐतिहासिक-दृष्टि से बहुत बडा महत्व है। शेरशाह ने १५४५ मे एक सुन्दर जलाशय यहाँ पर बनवाया था। वह अभी भी, इतिहास वेत्ताओ के चित्ताकर्षक का केन्द्र है। इस जलागार के बीच मे वह "रोजा" बना हुआ है। जिसको देखने के लिये बहुत दूर-दूर से हजारो की सख्या में प्रति वर्ष लोग आते हैं।

वाराणसी में—मैं

वाराणसी भारत का एक प्रसिद्ध तीर्थ ही नहीं, बल्कि यहाँ की विद्या, सस्कृति और साहित्य का एक अनूठा केन्द्र भी बना हुआ है।

एक ही शहर मे दो विश्व विद्यालय और वे भी अपने-अपने ढग के अद्वितीय ।

मैंने हिन्दू-विश्व-विद्यालय और सस्कृत-विश्व-विद्यालय का निरीक्षण करके यह महसूस (अनुभव) किया कि—काशीनगरी सचमुच विद्या की नगरी है ।

हिन्दू-विश्व-विद्यालय ने तो अपने आप मे एक सुन्दर नगरी का-सा निर्माण कर रक्खा है । इसकी स्थापना माननीय पण्डित मदन-मोहन मालवीय के सद्प्रयत्नो का परिणाम है । उन्होंने दिन-रात एक करके इस विद्यालय को खडा किया । ४ फरवरी ईस्वी सन् १९१६ में तत्कालीन वाइसराय लार्ड हार्डिग ने इसका शिलान्यास किया था । ईस्वी सन् १९२१ मे ग्रेट-ब्रिटेन के राजकुमार प्रिन्स ऑफ वेल्स ने इसका उद्घाटन किया है । पाँच स्क्वायर मील की परिधि के अन्दर लगभग १३०० एकड भूमि मे विश्व-विद्यालय बना हुआ है । जिसमे छात्रालय, महा विद्यालय, अध्यापको के निवासालय, पुस्तकालय, चिकित्सालय, भोजनालय आदि की इमारतें शिल्प-कला की दृष्टि से उत्कृष्ट नमूने की हैं । विश्व-विद्यालय के मध्य मे लाखो रुपये खर्च करके, विश्वनाथ का एक सुन्दर मन्दिर भी बनवाया गया है । यहाँ पर जैन-दर्शन के अध्ययन का भी विशेष प्रबन्ध किया गया ।

विश्व-विद्यालय से सम्बन्धित एक और सस्था भी यहाँ पर है, जो पजाब के श्री सोहनलाल जैन-धर्म प्रचारक-समिति की ओर से चलती है । इस सस्था का नाम श्री पार्श्वनाथ-विद्याश्रम है । इस सस्था की ओर से यहाँ पर बहुत बडा पुस्तकालय भी है । जैन धर्म विषयो पर एम० ए०, आचार्य, अ० पी० एच० डी० आदि पदक प्राप्ति के अध्ययनार्थ यहाँ पर निवास करने वाले छात्रो को, छात्रवृत्ति, निवास, पुस्तकालय आदि की सुविधाएँ मिलती (दी जाती) हैं ।

काशी, जैन, बौद्ध, हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई आदि सभी धर्मावलम्बियो का बडा धाम हैं।

बौद्धो का तीर्थ-स्थान सारनाथ है। ऐसा बताया जाता है कि—तपस्या करते समय महात्मा बुद्ध के पाँच शिष्य, उन्हे छोड कर यहाँ पर (वाराणसी-सारनाथ मे) आ गये थे। उसके बाद बौद्ध गया मे महात्मा बुद्ध को जब बोधि (आत्म-ज्ञान) मिला। तब महात्मा बुद्ध ने सोचा कि—सब से पहले मुझे अपने उन पाँचो शिष्यो को ही उपदेश देना चाहिये, जो अभी वाराणसी मे है। ऐसा सोच कर वे बौद्ध गया से चलकर वाराणसी आये और सारनाथ मे ठहरे हुए अपने पाँचो शिष्यो को प्रथम उपदेश दिया। यह प्रथम उपदेश ही धर्मचक्र प्रवर्तन के रूप मे विख्यात हुआ। वही स्थान सारनाथ होने के कारण इसका बहुत बडा महत्व माना जाता है।

यहाँ पर स्थानक भी है और श्री वर्द्धमान स्थानक वासी जैन श्रावको के घर भी हैं। यहाँ के लोग बडे भक्तिवान् हैं। यहाँ पर मैं दुबारा ३-१२-५७ को आया।

जैन-धर्म में सर्वोदय

मिरजापुर से रिवा की ओर हमारा विहार हुआ। रास्ते ही मे खट खरी एक गाव आया। सडक के किनारे पर एक स्कूल मे हम ठहरे। उस समय कुछ युवक आये और नमस्कार करके बैठ गये। मैंने पूछा कि—क्या आप इसी गाव के रहने वाले हैं? युवको ने उत्तर मे कहा कि—हम भिन्न-भिन्न गाँवो के रहने वाले । यहाँ पर भारत सेवक समाज की ओर से ट्रेनिंग शिविर दस रोज का चल रहा है। उसी मे हम सब लोग ट्रेनिंग लेने के लिये आये हुए हैं। आप कौन हैं, मेरे से भावुक हृदयशील युवको ने पूछा—मैंने कहा—जैन-साधु। वे

मेरा परिचय पाकर अति प्रसन्न हुए और बोले—क्या आप उपदेश भी दिया करते हैं। मैंने कहा—हमारा काम तो उपदेश देना और लेना ही है। उन लडको के चले जाने पर हमने प्रतिक्रमण किया।

गाव के लोग व शिविर के दो सौ लडके वहाँ पर आये। मैंने कहा—जैन-धर्म का लक्ष्य भी समाज-सेवा है और उसमे सर्वोदय के सिद्धान्त प्रचुर मात्रा मे विद्यमान है। ढाई हजार वर्ष पूर्व तीर्थंकर भगवान् महावीर हुए है और उन्होंने प्राणी मात्र के उदय के लिये मुख्यतया तीन सिद्धान्त बताये है—"अहिसा, अपरिग्रह, अनेकान्त। इन्ही तीन सिद्धान्तो के बारे मे विस्तृत विवेचन सुनकर सभी बहुत ही प्रभावित हुए एवम् अनेक प्रत्याखान करके शिविर मे चले गये।

डाकू समझ कर मुझे मारने आये

पैदल यात्रा मे अनुकूल तथा प्रतिकूल अनेक परिस्थितियो मे जैन-साधु को गुजरना पडता है। वाराणसी-सारनाथ से विहार कर अनेक ग्रामो मे विचरते हुए महुगज होकर हम पत्री पहुँचे। रास्ते मे आहारादि की सुविधा न मिली। भूख और प्यास से सन्तप्त हुए हम उक्त ग्राम मे श्री राजाराम के घर पर पहुचे। वृन्दावन बाबू अपने आवश्यकीय कार्य के लिए भोपाल गये हुए थे और राजारामजी महुगज। केवल महिलाएँ और नन्हे-नन्हे बच्चे ही घर पर थे। गाव तीन घरो से ही बना हुआ था। हम भूख और प्यास मे सन्तप्त थे ही। इसलिये छाछ की याचना की। बहनो ने कुछ छाछ वहराई। छाछ के पीने पर हमे कुछ शान्ति मिली और वहाँ से आगे बढे। वहाँ से आगे विहार करते समय हमने बहनो को यो कहा कि—हम यहाँ से एक मील की दूरी पर स्थित स्कूल मे ठहरेंगे। अगर श्री राजारामजी घर पर आ जाये, तो कहना कि—वहाँ आकर सत्सगति का लाभ ले। ऐसा कह कर, हमने स्कूल मे जा विश्राम लिया।

जब हम प्रतिक्रमण आदि आवश्यकीय कार्य से निवृत्त होकर बैठे ही थे कि—स्कूल के बाहर हा-हू की आवाज सुनाई दी। परस्पर मे वे लोग इस प्रकार कह रहे थे कि—यहाँ जो दो डाकू आये हैं, वे कहाँ, किस जगह ठहरे है। चलो, पुलिस को खबर दो। इत्यादि।

कौन डाकू और हल्ला किस बात का, इस प्रकार मैं सोच ही रहा था कि—पाँच-सात आदमी लट्ठ तथा भाला आदि हाथ मे लिये हुए मेरे निकट आये और बोले—तुम कौन हो ? कहाँ से आये हो ? मुँह पर यह पाटा क्यो बाँध रक्खा है। इत्यादि श्रावण–भाद्रवे की वर्षा–झडी की भाँति ऊपरा–ऊपरी प्रश्नो की झडी लगा दी।

अज्ञानान्धकार मे निमग्न हुए उन व्यक्तियो की कर्कश एवम् कठोर वाणी को सुन कर, तथा उनकी मनुष्य–कर्त्तव्य–विरूद्ध विकराल वृत्ति को विलोक कर मैं यत्किंचित् भी भयभीत नही हुआ।

मैंने अपनी साधु–भाषा से उत्तर देते हुए उनको कहा—बन्धुओ ! हम जैन–साधु हैं। पैदल–यात्रा करना हमारा नियम है। मुँह पर जो यह पाटा बाँधा हुआ है, वह जैन–साधु का चिह्न (चपरास) है। रीवा होते हूए नागपुर की ओर हम जा रहे हैं। हम (जैन–साधु) पैसा वगैरह किसी भी प्रकार के धातु–पदार्थ को अपने पास नही रखते हैं। चाहे जैसे कण्टकाकीर्ण रास्ते से हमे गुजरना हो, हम नगे पैरो ही गुजरते हैं। जूती–खडाऊ आदि किसी भी पदत्रान को प्रयोग में नही लाते। रात्रि मे भोजन करना तो दूर रहा, पानी भी नही पीते हैं। हाथ से रसोई नही बनाते। हमारे लिए ही बनाया हुआ स्पेशल भोजन भी हम नही लेते हैं। इत्यादि।

इस प्रकार की हुई मेरी सच्ची घोषणा को सुनते ही उनमे से एक सज्जन तो अविलम्ब (तुरन्त) मेरे पैरो मे गिर पडा। और रोने

लगा। मैंने कहा—क्या हुआ भाई ! मैंने तो ऐसी कोई बात आपको नही कही कि—आपको दु ख हो। कहिये आपका नाम क्या है। वह बोला—मेरा नाम राजाराम है। मैंने कहा—आप ही राजाराम हैं। करीब चार बजे दिन को आपके यहाँ हम गये थे। आप घर पर नही मिले। हमे भूख और प्यास लग रही थी। बहनो से छाछ मांगी। बडे प्रेम से उन्होने हमको छाछ बहराई। वहाँ से यहाँ आते समय हम उन्हें यो कह आये हैं कि—अगर राजारामजी घर पर आ जायें तो उन्हें कहना कि—सन्त आज रात्रि को स्कूल मे ही विश्राम लेंगे। यदि उनकी इच्छा हो तो सत्सग करने के लिये वहाँ आये। अच्छा हुआ कि आप आ गये। परन्तु जरा यह तो बतलाइये कि—आपके हाथ मे यह भाला आदि क्यो है ?।

राजारामजी ने कहा—महाराज ! हमने आपका बहुत बडा अपराध किया है, वह माफ करना। भाला आदि हाथ मे लेकर आने का कारण यह है कि—महूगज से लौट कर जब मैं घर पर आया तो, औरतो ने मुझसे कहा—आप तो महूगज गये थे, पीछे से दो डाकू यहाँ आये और छाछ का बहाना कर कुछ देर यहाँ पर ठहरे। बडी–बडी लाठियो उनके हाथो मे थी, वे घर को देख गये और वे यो कहते गये कि—हम रात्रि को स्कूल मे ठहरेंगे।

स्त्रियो के इस प्रकार कहने पर मुझे बडा क्रोध आया। और इन पडोसियो को साथ लेकर आपको मारने की दुर्भावना से हम यहाँ आये, एतदर्थ यह भाला मेरे हाथ मे है। आप जैसे जैन–साधु इधर कभी नही आये। यह पहला ही अवसर है कि—स्त्रियो ने जैन-साधुओ को देखा। खैर, जो भी हुआ, अच्छा ही हुआ। इसी बहाने आपके दर्शनो का लाभ तो मिला। इस प्रकार बात–चीत होने के पश्चात् ज्ञान–गोष्ठी करते–करते करीब दो घण्टे बीत गये। रात्रि अधिक बीत जाने के कारण अपने घर जाने को वापिस लौटते समय राजारामजी

बोले—प्रात आप श्री को हमारे यहाँ अवश्य पधारना होगा। मैंने कहा—मुझे आगे जाना है, आपकी श्रद्धा-भक्ति शुद्ध है, लेकिन मैं विवश हूँ।

भक्त लोलाराम

वहाँ (पन्नी) से विहार कर मैं सुरशा पहुचा। यहाँ के निवासी लोलाराम गृहस्थ-साधु भक्ति के क्षेत्र मे तुकाराम से वडे प्रसिद्ध हो गये हैं। इसलिए मैं भी सुरशा पहुच कर, लोलाराम का घर पूछा। एक वालक ने दूर से ही वतलाया कि—वह लोलाराम का घर है। मैं वहाँ पहुँचा, तो मकान के कपाट (किंवाड) वन्द थे। मैं एक भाई की इजाजत लेकर चवूतरे पर बैठ गया। इतने मे लोलारामजी के मकान के कपाट खुले और एक वहिन बाहर आई। मैंने पूछा—वहन, लोलारामजी का घर यही है क्या ?। वाई ने ज्यो ही मेरी बात सुनी, तो यो वडबडाना आरम्भ किया। इन साधु-सन्यासियो ने मेरे घर को बरवाद कर दिया। और घर मे जो कुछ भी रहा है, उसे भी लेने को अव ये आये है। इन (साधु-सन्यासियो) का नाश ही नही होता। मैंने सोचा—अभी-अभी तो बाई अच्छी दिखती थी। अभी-अभी मे क्या हुआ जो पागल की भाँति वडवडा रही है। उसकी वडवडाहट को सुनकर, रास्ते चलते हुए ग्रामवासियो ने सोचा कि—ये कोई सी० आई० डी० हैं। इसलिए मैं किसी को वतलाता हूँ, तो कोई भी मेरे से वोलते भी नही और नही मेरे निकट ही आते। मैंने सोचा, यह कैसा अद्भुत वर्ताव, जो वतलाने पर वोलते भी नही। मैंने तो गाव की शोभा को अच्छी सुनी थी।

थोडी देर के वाद एक व्यक्ति उधर होकर उस ओर निकला। वहुत आग्रह के साथ, वुलाने पर वह मेरे निकट आया। मैंने उसको अपना परिचय दिया कि—मैं जैन-साधु हू, वदमाश, चोर, लुटेरा,

सी० आई० डी० आदि नही हू। अगर तुम्हारे उद्योग करने पर कोई स्थान मुझे मिल जाय, तो स्वल्प समय के लिये विश्राम करना चाहता हूं।

मेरी इस प्रकार से कही हुई बात उसके समझ मे आ गई। तत्काल उसने दो-चार व्यक्तियो को बुलाया और एक स्थान पर हमे ले जाकर ठहराया। आध घण्टे के अनुमान हमारे साथ बात-चीत करने पर वे बोले—महाराज! हमारे साथ आप चलिये हम आपको रसोई करने के लिये आटा, दाल, घी आदि सामान दिलवा देते हैं। पहले आप रसोई बना कर भोजन कर लीजिए, बाद मे सत्सगत करेगे।

मैंने कहा—बन्धुओ! हम जैन-साधु है, इसलिये हमारे हाथ से हम रसोई नही बनाते हैं। और नही कोई भक्त हमारे निमित्त ही स्पेशल तौर से भोजन तैयार करता है, उसे हम ग्रहण करते। हम तो केवल, गृहस्थ के घर मे स्वच्छता के साथ जो सात्विक भोजन बनता है। उसमे से भृग की भांति मधुकरी के रूप मे थोडा-थोडा-सा लेते है।

वे बोले कि—महाराज! आप भोजन अपने हाथो से नही बनाते, यह कथन तो आपका कुछ अश मे ठीक है। किन्तु आपके लिये बनाया गया भोजन भी आप ग्रहण नही करते, यह ठीक नही जचता।

मैंने कहा—भोजन महमानो के लिये बनाया जाता है साधु-अतिथि के लिये नही। साधु-अतिथि तो गृहस्थ के घर मे उनके खुद के खाने के लिये जो स्वच्छता के साथ सात्विक भोजन बनता है, उसमे से थोडा ग्रहण करते है—लेते हैं।

वे बोले—महाराज! आपकी वृत्ति का परिचय सुनकर हमे अति आश्चर्य होता है। जिन्दगी मे आप ही ऐसे मिले कि भिक्षा-वृत्ति

को इस प्रकार की प्रधानता देते है। अन्यथा बहुत से सन्त हमारे यहाँ ऐसे आये हैं कि— चीमटा बजाकर, दबाव डालकर, माल–मसाला बनवा कर खाते हैं—अरोगते हैं।

उपरोक्त भाँति से कथोपकथन होने के बाद वे बोले—चलिये, महाराज! हमारे साथ भिक्षा लेने को। उनके ऐसा कहने पर मैं उनके साथ गया और आवश्यकतानुसार आहार पानी लाया। किन्तु भक्त लोलाराम के मकान का दरवज्जा बन्द था, इसलिये उसके वहाँ नहीं जा सका।

थोडी देर के बाद, एक सज्जन ने लोलाराम के घर जाकर, बीता हुआ सारा वृत्तान्त कह सुनाया। उसने यह भी कहा कि—महात्माजी, तुम्हारे घर के सामने से होकर निकले थे। किन्तु मकान के कपाट जुडे हुए थे, इसलिये वे तुम्हारे यहाँ नहीं आये।

सज्जन की बात को सुनते ही, वह बाई प्रसन्न हुई भगी–भगी हमारे पास आई और सादर नमस्कार करके यो बोली—महात्माजी! क्षमा करिये, मेरे अपराध को। मैं आपकी त्याग–वृत्ति को समझ नही पाई थी, इसलिए अन्ड–बन्ड अनर्गल वचनो द्वारा आपका तिरष्कार किया।

मैंने कहा—बहिन! अनजान अवस्था मे ऐसा ही होता है। आपका स्वभाव बडा मृदुल है। परन्तु बुरे का ससर्ग होने पर अच्छे का भी अनादर होता है।

रात्रि मे प्रवचन हुआ और काफी जनता उपस्थित हुई। प्रात विहार करने पर, बहुत दूर तक भक्त पहुँचाने भी आये।

दिनाक ११–१–५८ को हम कटनी पहुचे। यहाँ पर दिगम्बर जैन के १७५ घर है। स्थानकवासियो के आठ एवम् श्वेताम्बर मूर्ति

पूजक भाईयो का एक घर है। यहाँ एक रबर फेक्ट्री है, उसका सचालन स्यालकोट के भाई रोशनलालजी आदि करते है। उनको जब हमारे आने की खबर मिली, तो वे बडे उत्साह उमग पूर्वक आये और स्थान आदि की व्यवस्था की। जब हमने आहार पानी से निवृत्ति ली, तो पंजाब के अनेक भाई, बहिन, बालक व बालिकाएँ वहाँ आई। भाई रोशनलालजी ने कहा—गुरुदेव, हमारी रबर फेक्ट्री मे मजदूरो के बीच प्रवचन दीजिये। मैंने कहा—अवश्य! फेक्ट्री के मजदूर तथा क्लर्क आदि बडी सख्या मे उपस्थित थे। उनको गरीबी मे भी अमीरी का आनन्द किस प्रकार लिया जाता है। इसका विस्तृत वर्णन सुनाया, सभी बडे प्रभावित हुए और त्याग द्वारा भेंट चढा कर अपने स्थान को चले गये।

कटनी मे उस समय दिगम्बर जैन मुनि श्री आदिसागरजी विराज रहे थे। दिगम्बर भाई भी दर्शनार्थ आये एवम् रात्रि के प्रवचन से बहुत प्रभावित हुए। दिगम्बर भाईयो की इच्छा हुई कि—हमारा तथा उनके मुनि श्री आदिसागरजी का व्याख्यान साथ मे हो तो अच्छा। मैंने कहा—ठीक है— मैं तो तैयार हू। आप उनसे अनुमति प्राप्त करलें।

दूसरे दिन दोनो का शामिल प्रवचन हुआ, जिसमे हजारो लोगो ने लाभ लिया। दूसरे रोज सम्पतलालजी आये और बोले—मुनि महाराज ने कहलाया है कि अगर मुनि जी की इच्छा हो, तो हम कुछ विचार-विमर्श मिलकर करें। मैंने उनका निमन्त्रण स्वीकार कर लिया मैंने कहा—सन्त, सन्त को याद करे, तो सन्त, सन्त के पास जाते ही है। मैं उनके साथ मुनिजी के निवास स्थान पर पहुँचा, तो मुनि श्री बडे ही भावपूर्वक मेरे सामने आये और स्वागत किया। हमने अपना-अपना स्थान ग्रहण किया। अन्य लोगो ने मुनिजी ने कहा—आप लोग अभी बाहर जाईये, हम आपस मे वार्तालाप करेंगे। सब लोग बाहर

चले गये। मुनिजी ने बडे नम्र भाव से कहा—मैं, आपकी दिनचर्या बाबत प्रश्न करता हू। अगर आपको ठीक लगे, तो उत्तर देवें। मैंने कहा—आप अवश्य पूछे, मेरा अनुभव आपके सामने रखने का मैं प्रयत्न करूगा। मूनिजी बोले—आप जैन-साधु है, तो फिर कपडा क्यो पहनते हैं। मैंने कहा—सामाजिक वातावरण ठीक रखने के हेतु। मुनिजी, यह तो परिग्रह है। मैंने कहा—परिग्रह की परिभाषा उमास्वामी ने तत्वार्थ सूत्र मे इस प्रकार की है। "मुच्छा परिग्रहो वुतो" मुर्च्छा ममत्व भाव वस्तु पर होना परिग्रह है। मुनिजी, धन वगैरह आप अवश्य रखते होंगे। मैंने कहा—नही। मुनिजी बोले—क्यो ? मैंने कहा—साधु के सत्ताईस गुणो मे अकिंचन वृत उसका गुण हैं, इसलिये। मुनिजी आप भोजन एक जगह करते है। मैंने कहा—नही, ४२ दोष टाल कर अनेक घरो मे से जरूरीयात के अनुसार भिक्षा इकट्ठी करके अपने स्थान पर आकर पाँच मोडले के दोष टाल कर भोजन शरीर निर्वाह के हेतु करते हैं। मुनिजी ने पूछा—"आप लोच करते हैं ? मैंने कहा—हाँ, वर्ष मे दो दफा। इस प्रकार मुनिजी ने कई प्रमुख प्रश्नो को पूछा और मैंने सन्तोषप्रद जवाब दिये। विचार विमर्श के वाद मेरे रवाना होने पर मुनिजी मुझे काफी दूर तक पहुचाने आये।

कमाई खाना बन्द

सुरशा से विहार कर हम दिनाक १६-१-१९५८ को जबलपुर पहुचे। कई वर्षों के वाद जैन-साधुओ के आगमन से जनता मे काफी स्नेह-भाव देखने को मिला। जबलपुर शहर मे धर्मशाला मे हम ठहरे। प्रात प्रार्थना, पश्चात् प्रवचन, मध्याह्न मे प्रवचन और रात्रि में ज्ञानगोष्ठी चला करती थी। दिनाक २४ को गणतन्त्र दिवस के उपलक्ष मे एक विराट सभा का आयोजन किया गया। उस सभा मे भाषण देते हुए, मैंने कहा कि—भारत अहिसा प्रधान देश है। अहिसा ही हमारा प्राण है। दो दिन वाद जिस अहिसा के वल पर हमे आजादी मिली, उसका

गणतन्त्र दिवस है। मेरी यह हार्दिक भावना है कि—उस रोज आपके प्रयत्न करने पर कमाई खाना बन्द रहे, तो बहुत उपकार होगा।

मेरी भावना का भव्य स्वागत करते हुए सज्जनो ने तन–तोड़ प्रयत्न कर दिनाक २६ को कमाई खाना बन्द रखवाया।

गणतन्त्र दिवस के विषय मे भाषण देते हुए, मैंने कहा—आज विधान का दिवस है। आज के दिन ही हिन्दुस्तान के विधान का निर्माण हुआ है।

विधान का अर्थ है—अनुशासन। किसी भी देश या राष्ट्र अथवा समाज में रह कर, जब तक अनुशासन मे रहना मानव नही समझ सकता है। तब तक वह पशु से भी बदतर जीवन यापन करता है, यह कथन निर्विवाद है। जीवन निर्वाण का विधान ही वास्तव मे विधान है। बाकी तो कागज पर अनेक विधान आये और कागज पर ही रह गये। उनमे किसी का कुछ भी भला नही हुआ।

दिनाक ३०–१–५८ को बापू निधन दिवस पर भी श्री भवानीप्रसादजी तिवारी मेयर की उपस्थिति मे मेरा भाषण हुआ। भारत खड–महा विद्यालय एवम् बापू समाज की कन्याओं ने मगल–गीत गाये। प्रचार बहुत ही सुन्दर रहा। रात्रि को ज्ञान-चर्चा मे दस-दस मील से सज्जन भाग लेने आते थे। उपासना–भवन बनाने का यहाँ के श्री सघ ने निर्णय किया।

जबलपुर, मध्य प्रदेश का विशिष्ट नगर है। सारे मध्य प्रदेश की राजनैतिक, सामाजिक, साहित्यिक एव सास्कृतिक गति विधियो का सचालन करने मे इस नगर का प्रमुख योगदान रहा है।

महाराष्ट्र के मुख्य नगर नागपुर में—मैं

भारत के इतिहास मे महाराष्ट्र की अपनी विशिष्ट देन है। छत्रपति शिवाजी जैसे देश–भक्त राजाओ से लेकर लोकमान्य बाल

गगाधर तिलक और गोपाल कृष्ण गोखले तक की कहानी भारतीय इतिहास मे बडे गौरव के साथ गाई जाती रहेगी। यह देश न केवल राजनीतिज्ञो की दृष्टि से ही, अपितु सन्तो की दृष्टि से भी महाराष्ट्र का स्थान सर्वोच्च रहा है। ज्ञानदेव, नामदेव, सन्त तुकाराम, स्वामी रामदास ।

आज भी अनेक सन्तो ने विचरण कर, जनता के मानस को तैयार किया है। महात्मा गाधीजी की तपोभूमि वर्धा सेवाग्राम यहाँ से केवल ५० मील ही है। जिन दिनो मे, आजादी का आन्दोलन चल रहा था, उन दिनो मे सारे देश की नजरें वर्धा और सेवाग्राम पर ही रहती थी।

नागपुर के सेठ श्री सरदारमलजी पुगलिया बडे दानवीर सेठ हुए हैं। उन्होने पुगलिया-भवन को अरिहन्त-उपासना के लिये भेंट मे दे दिया है।

सिकन्दराबाद में

सिकन्दराबाद मोगलाई का मुख्य शहर है। बादशाही की बादशाहत के नमूने के रूप मे यहाँ पर चार मीनार अपनी ऐतिहासिक घटना का दर्शन कराती है। जैनागमों के ज्ञाता पण्डित मुनि श्री हीरालालजी महाराज 'साहब' के साथ हमरा भी वर्षावास यहाँ पर विताने का निश्चय हुआ।

यहाँ का वायुमण्डल (मौसम) उष्ण काल मे भी काफी ठण्डा रहता है। यहाँ पर न ज्यादा गर्मी और न ज्यादा सर्दी पडती है। राष्ट्रपति श्री राजेन्द्र बाबू अधिकतर गर्मियो के दिन यहाँ पर ही व्यतीत किया करते थे।

दिनाक १५ अगस्त १६५८ को स्वतन्त्रता-दिवस मनाने के उपलक्ष मे एक विराट-सभा का आयोजन एस० एस० जैन विद्यार्थी सघ की ओर से हुवा था। इस रोज 'स्वतन्त्रता और हमारे कर्त्तव्य" इस विषय पर भाषण देते हुए, मैंने कहा—आज के दिन हमको आजादी मिली है। १५ अगस्त सन् १६४७ की अर्धनिशा मे जब सारा ससार सो रहा था, तब हिन्दुस्तान जाग रहा था। और अपने आपके स्वतन्त्र होने की खुशियाँ मना रहा था। आज आजादी प्राप्त हुए ११ वर्ष हो गये, बहुत बडी क्रान्ति हुई कि—सदियो से राजनैतिक गुलामी की बेडियो मे जकडा हुआ, देश मुक्त हुआ। परन्तु ध्यान पूर्वक देखने पर स्पष्ट ज्ञात होता है कि—वह क्रान्ति अपूर्ण थी। क्रान्ति की पूर्णता तो तभी होती, जब कि—इस देश के लोग आत्म-जागृति का और आतरिक (स्वातन्त्र्यता) स्वतन्त्रता का पाठ सीखते। आजादी के इतने वर्ष व्यतीत होने पर भी आज देश मे—दु ख, दैन्य, पाप, भ्रष्टाचार, हिंसा, भेद-भाव आदि दोष, घटने के बजाय निरन्तर बढते ही जा रहे हैं। क्या, आजादी का अर्थ उच्छृखलता है ?। नही, कभी नही। आजादी का अर्थ सयम-स्वातन्त्र्य से है। परन्तु देश मे सयम के स्थान पर, अनुशासन के स्थान पर, असयम और उद्दण्डता बढ रही है।

दिनांक ३१-८-५८ को "भारतीय सस्कृति और सभ्यता" इस विषय पर मेरा प्रवचन हुआ। मैंने कहा—प्रत्येक देश की सस्कृति भिन्न-भिन्न होती हैं। उसी के आधार पर जीवन या देश का निर्माण होता है। वैसे तो, सस्कृति के टुकडे (भाग) नही किये जा सकते। समस्त मानव-सस्कृति अखण्ड, अतएव एक है। फिर भी मानव-सस्कृति पर हम विचार करते है, तो ऐसा कहना ही उचित्त होगा कि—वह दो प्रकार की हैं। सत्-सस्कृति और असत्-सस्कृति। जिस सस्कृति का सम्बन्ध सत् के साथ है। वह सत्-सस्कृति कहलाती है। इसके विपरीत असत् से सम्बन्ध रखने वाली सस्कृति असत्-सस्कृति कहलाती

है। ये दोनो तरफ की सस्कृतिये हर जाति और देश मे पाई जाती हैं। इसी के आधार पर भारत की भी दो सस्कृतियो है। उदाहरणार्थ—जैसे, भारत मे भगवान् महावीर हुए थे, तो गोशाला भी हुआ। श्री राम हुए, तो रावण भी हुआ। श्रीकृष्ण हुए, तो कस भी हुआ।

दिनाक ७–६–१६५८ श्रीकृष्ण जन्माष्टमी को "श्रीकृष्ण और भारतीय समस्या" इस विषय पर मेरा प्रवचन हुवा। मैंने कहा—हिन्दु-साहित्य के कथनानुमार श्रीकृष्ण भिन्न-भिन्न कार्यों के लिये भिन्न-भिन्न रूप ले कर आये थे। जैसे—दुर्योधन का मान-मर्दन करने के लिये और द्रोपदी की लज्जा को बचाने के लिये कपडे के रूप मे। गायो का महत्व बढाने के लिये, गोकुल मे ग्वाले के रूप मे। कस का विध्वश करने के लिये, काल रूप मे। उन्होने कर्म-योग का महान् मार्ग जनता को बताया।

दिनाक २–१०–५८ को महात्मा गाधी-जयन्ति के उपलक्ष मे—"महात्मा गाधी और स्वराज्य"—इस विषय पर मेरा प्रवचन हुआ। मैंने कहा—अपने जीवन-काल मे भारत वासियो की दयनीय-स्थिति को देख कर महात्माजी का दिल दहल गया और उन्होने यह प्रतिज्ञा धारण की कि—जब तक हिन्द-वासियो को समान रूप से रोटी-कपडा नही मिलेगा, तब तक मैं लगोटी पहन कर ही रहूँगा। उन्होंने अहिंसा का शस्त्र लेकर, अग्रेजो से सत्यागह के रण-क्षेत्र मे युद्ध किया और भारत की स्वतन्त्रता स्वरूप भव्य कीर्ति-पताका फहराने मे यशस्वी–विजयी बने। अहिंसा से भी स्वराज्य प्राप्त हो सकता है, यह ससार को दिखला दिया।

स्वतन्त्रता और स्वच्छन्दता के ये दो शब्द हैं। स्वतन्त्रता मे लोक-कल्याण की भावना निहित है—समाई हुई है। और स्वच्छन्दता मे—दूसरो का विनाश, शोषण, अन्याय—अनीति आदि।

महात्माजी की यह जन्म-जयन्ति मनाना तभी यथार्थ गिना जायगा, जबकि हम स्वतन्त्रता के वास्तविक अर्थ को समझ कर देश एव देशवासियो का कल्याण करे ।

ता० ५-१०-५८ को जीरा स्थित गुजराती स्कूल मे "मानवता के सोपान" इस विषय पर भाषण करते हुए मैंने कहा—बन्धुओ ! मानव और मानवता ये दो शब्द हैं। मानव देह (शरीर) धारी को कहते हैं और वे करीब सवा तीन करोड इस विश्व मे है। परन्तु मानवता विरले देह धारियो मे दिखाई देती है। सौरभ से रहित पुष्प और मानवता से रहित मानव की स्थिति एक-सी है।

सोपान का अर्थ है सीढी, नाल अथवा ऊपर चढने का रास्ता। अहिंसा सेवा, त्याग, सयम आदि मानवता के सोपान है।

तप का तपस्वी द्वारा आशीर्वाद

ता० १२-१०-५८ को रात्रि के समय आत्म-चिन्तन एव तत्त्व-चिन्तन कर रहा था, उस समय तपस्वी श्री गणेशलालजी म० (खादी वाले) के अचानक मुझे दर्शन हुए। यद्यपि मैंने तपस्वीजी के प्रत्यक्ष मे दर्शन कभी नही किये थे, पर नाम तो सुन ही रखा था, उसी पर से मैंने परख पाया। बडी शान्त-मुद्रा, मुस्कराते हुए एक हाथ ऊँचा करके वे (तपस्वीराज) बोले। मैं तुझे यह शुभ-सन्देश देने आया हूँ कि तेरा जीवन पवित्र बनने का अब सुन्दर समय (अवसर) आ गया है, इसलिये मेरे कथनानुसार ७५ दिन पर्यन्त आयविल तप कर। मैंने कहा—तहत्त। तपस्वीजी महाराज तो अदृश्य हो गये। मुझे उनके दर्शन एव उक्त आदेश से बडा आनन्द मिला। तत्काल हुलसित हुए हृदय से मैंने ७५ दिनो की प्रतिज्ञा ले ली। प्रात श्री हीरालालजी म० से एक साथ १५ दिनो के आयविलो को पचक्खे। ता० १२-१२-५८ को

अर्द्ध-रात्रि मे तपस्वीराज ने कृपा करके फिर दर्शन दिये और यो बोले—वत्स ! अनुमान के ६० आयबिल तो तूने मेरे कथनानुसार कर लिये हैं। अब एकान्तर व्रत चालू कर। मैंने उनके आदेशानुसार एकान्तर उपवास करना आरम्भ कर दिया और पारने के दिन आयबिल। इस प्रकार एक महीना तक किया। तदनन्तर एक वर्ष के लिये एकान्तर उपवास करना और पारने के दिन एक वखत अनुग्रहण करना, प्रति मास एक तेला करना ऐसी प्रतिज्ञा धारण की।

पार्श्वनाथ जयन्ती

ता० ४-१-५६ को रायचूर मे चन्द्र टाकीज मे प्रभु पार्श्वनाथ के जन्म-दिवस के उपलक्ष मे मेरा प्रवचन हुआ। मैंने अपने भाषण मे कहा कि—प्रभु पार्श्व ने विश्व मे आकर, योग-साधना का वास्तविक सन्देश ससार को दिया। वाराणसी मे विश्वसेन के यहाँ वामा-देवी की कुक्षि से जिन्होने जन्म लिया था। पारस-प्रभु जिसके पास होता है, वह जहर को भी अमृत बनाने की शक्ति प्राप्त कर लेता है। इत्यादि।

महावीर जयन्ती सप्ताह

बंगलोर मे ता० १६-४-५६ से प्रभु महावीर की जयन्ती के उपलक्ष मे सप्ताह भर का कार्य-क्रम तैयार किया गया। सर्व प्रथम एयर-क्राफ्ट (विमान घर) में निर्मित विशाल पडाल मे प्रभु महावीर के जीवन पर प्रकाश डाला। ता० २१-४-५६ को विलाक पल्लि के स्कूल के विशाल मैदान मे प्रभु महावीर की जन्म-जयन्ती मनाई। ता० २६-४-५६ को मल्लेश्वर मे मैसूर के गवर्नर श्री मगलदास पकवासा के सानिध्य मे प्रभु महावीर की जन्म-जयन्ती मनाई। ता० २७-४-५६ को मैसूर के मुख्य मत्री श्री बी० डी० जट्टि के सान्निध्य मे मल्लेश्वर मे महावीर जयन्ति मनाई। दोनो दिन प्ले-ग्राउन्ड के विशाल पडाल

मे प्रवचन हुए। ता० २८-४-५६ को रामपुर मे चेयरमेन श्री एन० नारायन चट्टी की अध्यक्षता मे "महावीर प्रभू के सिद्धान्त और विश्व-शान्ति" इस विषय पर प्रवचन हुवा।

ता० ४-५-५६ को सेन्ट्रल जेल मे कैदियो के वीच प्रवचन हुवा। प्रवचन सुनकर प्रमुदित हुए वहुत मे कैदियो ने वीडी, सिगरेट आदि पीने का तथा रात्रि मे भोजन करने का त्याग किया। इस प्रसग पर श्री मिश्रीलालजी कात्रेला की ओर से सभी वन्दी-जनो (कैदियो) को मोदक का भोजन करवाया गया।

श्रावणवेलगोला में—मैं

ता० ७-६-५६ को मैं "श्रावणवेलगोला" पहुचा। यहाँ पर वाहुवलीजी की ५६ फीट की एक ही पत्थर की वनी हुई भव्य मूर्ति है। इस स्थान को जैन-वद्री भी कहते हैं। इस मूर्ति का निर्माण सुना है कि—११ वी शताव्दी मे हुवा हैं। पहाड पर स्थित यह मूर्ति वहुत दूर से दिखाई देती है। ६२२ पगथियो की चढाई है। सामने के दूसरे पहाड पर भरतजी की मूर्ति है, जो आधी जमीन मे गडी हुई है। कहते हैं कि वाहुवली के मुष्टि-प्रहार से भरतजी आधे जमीन मे चले गये थे, उस प्रसग की यह मूर्ति है। वह (मूर्ति) करीव १० फीट की है।

वाहुवलीजी की मूर्ति, हिन्दुस्तान मे इतनी वडी यही है। या अफगानिस्तान मे सुना है, १४५ फीट की वौद्ध मूर्ति है।

दक्षिण के प्रसिद्ध शहर में—मैं

ता० १४-६-५६ को प्रात मैसूर नगर मे प्रवेश करने का हमने निर्णय किया था, उसी के आधार पर हमने मैसूर से दो मील की दूरी

पर स्थित "सेन्ट फिलोमिना कॉलेज" से विहार किया। विहार के समय के पहले ही अनेक भाई और बहिन वहाँ पर उपस्थित हो गये थे। जब हमने प्रयाण किया तो, सर्व-प्रथम डिस्ट्रिक्ट सुपरिन्टेन्डेन्ट ऑफ पुलिस ने स्वागत किया। तत्पश्चात् सरदार लेफ्टिनेन्ट कर्नल एम० जी० मदन गोपाल अर्स तथा दरबार बक्शीजी ने स्वागत किया। तदनतर एच० पी० पार्श्वनाथ, सिटी मजिस्ट्रेट मैसूर, बी० एन० केन्गो गौवडा, प्रेसीडेन्ट सी० टी० म्युनिसीपिलेटी, श्री विश्वैरैया, डाक्टर के० आर० मिल्स आदि नगर के गण-मान्य सज्जनो ने बडी श्रद्धा-भक्ति से स्वागत किया। उसके बाद रगा चारियल मेमोरियल हॉल (टाउन हॉल) मे प्रवचन हुआ। ता० १९-६-५९ को "प्रेस कान्फ्रेंस मे देश का विकास कैसे हो" इस विषय पर प्रकाश डाला। नगर के भिन्न-भिन्न हाई स्कूलो यथा—डलवया हाई स्कूल, वनमया हाई स्कूल, मरि मल्लाप्पा हाई-स्कूल, विद्या वर्धन हाई-स्कूल, अर्सु गर्ल्स हाई-स्कूल आदि मे करीब-करीब १५००० विद्यार्थियो मे मेरे प्रवचन हुए। तथा प्रवचनो की प्रशसा सभी सज्जनो ने मुक्त कण्ठ से की।

मृत्युलोक का स्वर्ग

मैसूर से १२ मील पर वृन्दावन गार्डन है, जिसे कनड वाडी कटडा भी कहते हैं। कावेरी नदी का भीमकाय बाँध बन्धा हुआ है। उसी बाँध के नीचे करीब दस बीघा जमीन मे एक सुन्दर गार्डन है। उसीका नाम वृन्दावन है। इन्जीनीयरो ने पानी के प्रवाह को इस प्रकार वितरित किया है कि—छोटे-छोटे प्रवाह से प्रवाहित होता है। उन्ही के मध्य मे बिजली के बल्ब रग-बिरगे लगा दिये गये हैं। उसमे फूंवारो की छटा भी कलात्मक-पूर्ण है। रविवार, शनिवार, बुधवार इन दिनो मे यह गार्डन रात्रि को आठ बजे से साढा दस बजे तक दिखाया जाता है। देखने वाला, मृत्यु-लोक का वासी हूँ। ऐसा भूल कर,

स्वर्ग में विचरण करता हूँ। ऐसा महसूस करने लग जाता है। हजारो विदेशी भी इसको देखने के लिये यहाँ आते हैं।

बेंगलोर का ऐतिहासिक चातुर्मास

शास्त्रज्ञ पण्डित रत्न श्री हीरालालजी महाराज साहब आदि ठाणा ५ पांच के साथ मेरा चातुर्मास बेंगलोर के कन्टोन्मेन्ट मोरसली बाजार मे हुआ। ज्ञान-प्रचार, तपश्चर्या, त्याग आदि धर्म-कार्य का खूब प्रचार हुआ। यहाँ की जनता को जैन-मुनियो की कठिन चर्या की जानकारी हो, इस हेतु केश-लोचन मैंने सार्वजनिक रूप मे रक्खा। करीब १०००० दस हजार जनता की उपस्थिति होगी, सभी सज्जनो के सामने मैंने अपना केश-लुचन किया। अमेरिकन आदि देशो के अनेक सज्जनो ने भी केश-लोचन देखा और वे बहुत आश्चर्य मे पड गये। जैन-धर्म कितनी मर्यादा और आदर्शता युक्त है। इस (बात) की भली-भांति जानकारी प्राप्त कर सभी बहुत खुश हुए।

दिनाक २१, २२-७-५९ को लाल बाग मे सभी धर्मावलम्बियो की उपस्थिति मे मेरा भाषण हुआ। भाषण को सुनकर सभी लोग बहुत प्रसन्न हुए।

सर्व-धर्म-सम्मेलन

के० जी० यफ० जहाँ सुवर्ण निकलता है, उसी शहर मे दिनाक २-१-६० को हम पहुचने वाले थे। उसके पूर्व मैंने सुना कि— के० जी० यफ० मे कम्युनिष्टो ने बहुत ही अपना प्रचार कर रक्खा है। धर्म का नाश, शास्त्रो का नाश ही उनके नारे हैं। तब मैंने सोचा कि— प्रचार का जवाब, प्रचार से ही दिया जाना उचित है। इसलिये के० जी० यफ० के कार्य-कर्त्ताओ के सम्मुख मैंने एक योजना रक्खी

कि—सर्व धर्म वाले एक ही स्टेज पर खडे होकर एक ही आवाज से यह बतलायें कि—धर्म ही मानव-समाज की महान् तेजोमयी शक्ति है। उसी (धर्म) के आधार पर देश-राष्ट्र का विकास है। ऐसी घोषणा करे, जिसका तरीका है, सर्व-धर्म-सम्मेलन। कर्मठ कार्य-कर्त्ताओ ने बडी खुशी के साथ उक्त योजना को कार्य रूप मे परिणत की। दिनाक ३-१-६० को रावरसनपेठ की हाई-स्कूल के विशाल प्रागण मे, विशाल पण्डाल निर्मित किया और साय चार बजे से आयोजन रक्खा। बैंगलोर आदि नजदीक के ग्रामो और शहरो के अनेक धर्मावलम्बियो की उपस्थिति भी आशातीत थी। इस (सम्मेलन) मे, मैंने भी—"जैन-धर्म की दुनियाँ को देन" — इस विषय पर प्रकाश डाला। वातावरण इतना शान्त और सुन्दर रहा कि—जिन मनुष्यो के मस्तिष्क मे, "धर्म जहर है", तथा "नाश करने वाला है"—ऐसी मान्यता जमी हुई थी, वह दूर हो गई एवम् बडे प्रमुदित हुए। महा सतीजी श्री सायर कुँवर जी की भी उपस्थिति थी।

मद्रास में धर्म-प्रचार

मद्रास एक व्यापारिक नगर है। इसमें तीनो तरफ से यातायात होता है। आकाश द्वारा, पानी द्वारा और पृथ्वी द्वारा। मद्रास तामिलनाड की राजधानी है। मद्रास का समुद्री-तट वास्तव मे प्रसिद्धि के काबिल है। इतना विशाल समुद्र-तट है कि—जिसके किनारे लाखो आदमी बैठ सकते हैं। मुँबई की चौपाटी का समुद्री-तट तो इसके सामने कुछ नही-सा है। समुद्र की उर्मियाँ जितनी क्षण-भगुर है। उतना ही मनुष्य का जीवन भी क्षण-भगुर है। समुद्र जितना गम्भीर और विशाल है। उतना ही गम्भीर और विशाल मनुष्य को भी बनना चाहिए।

दिनाक ८-४-६० को जैन-हाई-स्कूल मे महावीर-जयन्ति के उपलक्ष मे विद्यार्थियो के सम्मुख प्रवचन हुआ। दिनाक १०-४-६०

को जैन-महिला-संघ की तरफ से महिला-सम्मेलन बुलाया (मनाया) गया और "महिला-कर्त्तव्य" इस विषय पर मेरा प्रवचन हुआ। प्रवचन का प्रभाव प्रशसनीय रहा। चातुर्मास भी यही करने का निश्चय किया गया।

शयन करने का परित्याग

दिनाक १४-४-६० को मद्रास के उपनगर पुरुषपाक हम पहुँचे। रात्रि को करीब ११ बजे अचानक आन्तरिक आवाज उठती है (आती-है) कि—तेरा अधिक से अधिक समय साधना मे—शान्ति-युक्त वातावरण मे व्यतीत हो तथा आत्म-दर्शन, तत्व-चिन्तन, स्वाध्याय, भजन-स्मरण हो सके। अत रात्रि-शयन का परित्याग कर। उसी रात्रि से दिन को तो सोना ही क्या। परन्तु रात्रि मे भी शयन करने का तथा पैरो को लम्बे पसारने का भी मैंने त्याग किया। दिन को तो समाज की सेवा करना और रात्रि को आत्मा की।

दिनाक १२-५-६० को त्यागराय नगर मे श्री राज गोपालाचार्य (भारत के प्रथम गवर्नर) की अध्यक्षता मे, जैन-वोर्डिग के विशाल प्रागण मे निर्मित किये मण्डप मे—'भारतीय-दर्शन और अहिंसा"—इस विषय पर मेरा प्रवचन हुआ। प्रवचन मे मैंने कहा कि—जिस युग मे चारो ओर हिंसा, बलि-प्रथा और वैर-भाव का प्रबल वातावरण छाया हुआ था। उस युग मे भगवान् महावीर का जन्म हुआ और उन्होंने दुनियाँ को अहिंसा के मार्ग पर चलने का सदुपदेश दिया। अहिंसा का जहाँ नाम लिया जाता है, वहाँ सामने आकर भगवान् महावीर प्रभु खडे हो जाते हैं। वैसे तो अहिंसा अनादि काल की वस्तु है, परन्तु इसमें बहुत-सी चक्त (अनेक-वेर) आवश्यकता से अधिक उतार चढाव आया है। भगवान् महावीर ने अहिंसा के स्वरूप का विवेचन बहुत ही स्पष्ट रूप से किया। अहिंसा भारत की सस्कृति है। उन्होंने कहा—

जीओ और जीने दो। ससार के समस्त प्राणी, स्वतन्त्रता पूर्वक जीवन यापन करने का अधिकार लेकर के आये हैं। उनकी स्वाधीनता पर कुठाराघात करना, उनका भयकर अपमान है, अपराध है। जो हिंसा करता है वह अपने ही आत्म-गुणो का विश्वासघातक बनता है।

अहिंसा अज्ञान रूपी-अन्धकार को दूर करने के लिये ज्ञान-दीपक है। अहिंसा विश्व-शान्ति का मूल-मन्त्र है। भारतीय-दर्शनो मे जैन-दर्शन की महत्ता अहिंसा के कारण मे ही विशेष रूप मे है। अहिंसा मनुष्य के निर्बलता की द्योतक नही, प्रत्युत मानवता का प्रतीक है।

दिनाक ३-७-६० को डॉक्टर कृष्णराय स्पीकर (मद्रास) की अध्यक्षता मे—"विश्व-शान्ति और जैन-धर्म" इस विषय पर तेगराय कॉलेज मे मेरा प्रवचन हुआ।

गेलडा गर्लस हाई स्कूल की स्थापना का कार्यक्रम पहले से ही तैयार किया हुआ था। किन्तु कुछ अडचनो के कारण वह कार्यान्वित नही हो रहा था। श्री खीमराजजी चोरडिया ने कहा—आप इसका निराकरण कर सकते हैं। इन्दरमलजी गेलडाजी हृदय के बहुत ही उदार एव प्रतिष्ठित सज्जन हुए हैं। उन्हे आगे रख कर हमे काम करना है। उन्होंने ५१ हजार रुपये निकाले हैं। उनकी धर्मपत्नी श्री सपतबाई व उनके सुपुत्र श्री गौतमकुमारजी अगर ५१ हजार रुपये दे दें तो हम उन्हे कबूल कर लेंगे। अगर उनकी इच्छा नही देने की हो और वे इन्कार कर दें तो मैं ७५ हजार रुपये देने के लिये तैयार हू। मैंने श्री सपत बाई और उसके सुपुत्र श्री गौतमकुमार से इस विषय मे बात-चीत की और "शुभ यथा-शक्ति वतनीयम्" की सूक्ति का तात्त्विक रहस्य उनको समझाया। सहर्ष मेरे कथन को उन्होंने स्वीकार कर लिया और "गर्ल्स हाई स्कूल" की स्थापना हुई। चातुर्मास मे अट्ठाई से उपरात की ४०० बडी तपस्याएँ भी हुई।

चातुर्मास समाप्त होने पर महिलापुर की ओर विहार करना था, परन्तु आठ दिन पूर्व से ही ऐसी मूसलाधार वर्षा हुई कि विहार करना स्थगित करने की स्थिति पैदा हो गई। किन्तु विहार के एक घण्टा पूर्व भी यही हालत थी। लोगो का अनुमान था कि —चातुर्मास का विहार नही हो सकेगा। परन्तु कुदरत की क्रीडा से पानी बरसना बन्द हो गया और सानन्द विहार हो गया। विहार के समय गगन-मण्डल मे जो मेघ-ध्वनि होती थी वह मानो जय-नाद होने के समान प्रतीत होती थी। मेघ-गर्जना को सुनकर लोगो के मुह से यही आवाज निकलती थी कि—महाराज ने विहार तो कर दिया है परन्तु वर्षा तो उमड रही है, इसलिये अगले स्थान तक (जहाँ कि महाराज ने विश्राम करना निश्चित किया है) पहुँचना मुश्किल है। इस प्रकार की वाणी सभी सज्जनो के मुख से निकल रही थी, परन्तु शासन देव की कृपा से हम महिलापुर के स्थानक तक पहुँचे तब तक एक बूंद भी वर्षा की नही गिरी। ज्योही स्थानक मे हमने पैर रक्खा कि—वही मूसलाधार वर्षा फिर होने लगी। जनता ने कहा—महाराज! आप के विहार की वजह से ही यह वर्षा का बरसना रुका हुआ था। करीब एक हजार भाई और बहिनें विहार मे साथ थे। महिलापुर के श्री संघ की तरफ से प्रीति-भोज हुआ।

ता० १६-११-६० को मद्रास के प्रधान मंत्री श्री कामराज नाडार ने घाउजन लाइट स्थित उपाश्रय मे दर्शन किये।

पैरवूर (मद्रास के उप नगर) में अपूर्ण स्थानक पडा हुआ था, उसकी पूर्ति के लिये १२००० हजार रुपयो का चंदा हुआ।

ताम (मद्रास के उपनगर) मे ता० १६-१२-६० को नवीन स्थानक का उद्घाटन हुआ।

पाण्डीचेरी में हमारा प्रवेश

पाण्डीचेरी समुद्र के तट पर बसी हुई है। पहले यहाँ फ्रांस का शासन था। योगनिष्ठ श्री अरविन्द घोष का यहाँ आश्रम है। करीब चौदह-सौ व्यक्ति आश्रम मे रहते हैं। सभी प्रकार के कामो मे आने वाली वस्तुएँ करीब-करीब यहाँ बनती हैं। यहाँ के कुछ अन्य आश्रम निवासियो के साथ आश्रम के विषय मे कुछ पूछ-ताछ की तो वे चिडपडे और अन्ट-सन्ट बोलने लगे। बाहर गाम से आने वाले को कोई पूछता भी नही है कि—तुम कहाँ से आये हो और क्या बात है। हाँ, कोई पैसा वाला (धनाढ्य) आये तो दौड-धूम अवश्य मच जायेगी।

जैन-सत के रूप मे हमारा यहाँ सर्व प्रथम आगमन था। प्रात-काल साढा आठ से दस बजे तक व्याख्यान और सायकाल को साढा सात से साढा दस बजे तक धर्मचर्चा निरतर होने लगी। प्रवचन और धर्म चर्चा से प्रमुदित हुई जनता की सख्या दिन ब दिन बढने लगी। श्री वाडी भाई और श्री जयन्ती भाई ने सजोडे अट्ठाई तप किये। वे कहने लगे कि—कभी हमने एक उपवास भी नही किया, रात्रि को सोते समय भी कुछ खाये विना नीद नही आती थी, किन्तु गुरुदेव की कृपा से और धर्म के प्रताप से अट्ठाई-सा महान् तप भी सानद हम कर पाये। श्री नाना लाल भाई की धर्मपत्नी व श्री कमला बाई ने भी अट्ठाई तप किया। प्रवचन सुनने और तप-महोत्सव देखने के लिये बाहर गाँव से करीब दो हजार दर्शनार्थी आये। गवर्नमेन्ट हाई स्कूल मे भी प्रवचन हुआ।

तपस्याओं की धूम

पाडुचरी से विहार करके हम ता० २०-२-६१ को वेलीपुर पहुचे तो नगर मे मुनि-पधारने की बधाई बँटने लगी। तपश्चर्या करने के लिये तो भावुक-भक्तो मे एक प्रकार की होड-सी लग गई। अनेक

पचोले, अट्ठाइयाँ, दश का थोक तथा एक वहिन ने तो २२ दिन के उपवास किये। यहाँ केश-लोचन मैंने जाहिर मे किया जिसका प्रभाव जनता पर वहुत पडा। पाँच सजोडे (अल्प व्यस्क) ब्रह्मचर्य के नियम हुए।

द्वितीय सर्व धर्म सम्मेलन

तारीख २८-३-६१ को हम तीरूवन्नतमलै मे पहुचे। यहाँ हमेशा यात्रियो की भीड लगी रहती है। शिव का विशाल मदिर है जो मीनाक्षी के मदिर की याद दिलाता है। यहाँ जैन-धर्म्म के प्रति काफी गलत-फहमी फैली हुई थी। काफी अपवाद भी फैला हुआ था। मैंने सोचा—अधकार को डडो के जोर से या तलवार अथवा तोपों के जोर से नहीं भगाया जा सकता है, किन्तु प्रकाश से भगाया जा सकता है। इसी प्रकार जैन-धर्म जो उदार एव महान् पवित्र है, उसके लिये भिन्न-भिन्न प्रकार की गलत धारणाएँ जो लोगो की वन गई है, उन्हे भगाने (हटाने) के लिये सर्व धर्म सम्मेलन बुलाया जाय और उन्हो के सामने जैन-धर्म की महानता एव पवित्रता का उदाहरण उपस्थित किया जाय।

उत्साही कार्य-कर्त्ताओ के सामने मैंने अपने विचार रक्खे। वे वहुत प्रभावित हुए, किंतु एक भाई किसी एक खानगी स्वार्थ की वजह से व्यर्थ का रोडा अटका कर यह कार्य नही होने देना चाहता था। उसका वाहिरी भाव से यह कहना था कि—अनेक धर्मावलम्बी इकट्ठे होंगे, कोई कुछ कहेगा और कोई कुछ। ऐसी परिस्थिति मे सघर्ष हो गया तो वहुत वडी निंदा का प्रसग वन जायेगा। यहाँ ऐसा कभी भी नहीं हुआ है कि—एक धर्म वाला दूसरे धर्म के साथ बैठ कर कुछ कार्य किया हो।

मैंने कहा—शासन-देव के प्रताप से कोई किसी प्रकार का विघ्न-उपद्रव अथवा तो सघर्ष पैदा नही होने पाएगा, स्वार्थ रहित, विशुद्ध

हृदय से किया हुआ कार्य अवश्य सफल होता है। ऐसी मेरी अविचल धारणा है।

तारीख २-४-६१ को श्री रामानन्द स्वामी बी ए, बी एल एडवोकेट की अध्यक्षता मे सर्व धर्म सम्मेलन किया गया। अपने-अपने धर्म के मतव्यानुसार अनेक विद्वानो के भाषण हुए। मेरा भी भाषण, "जैन धर्म और ससार की सेवा" इस विषय पर हुआ। भाषण को सुनकर सभी सज्जन बहुत प्रसन्न हुए। जिन भाईयो के हृदय मदिर मे जैन-धर्म के प्रति कुत्सित-धारणा का डिण्डिम बज रहा था वह बजना बद हो गया।

अन्त मे अध्यक्ष महोदय ने भाषण देते हुए कहा कि—आज से करीब ३० वर्ष पहले जेनेवा मे "सर्व-धर्म सम्मेलन बुलाया गया था। उस समय मेरे हृदय मे यह सद्भावना जागृत हुई थी कि—वह देश कितना उदार और पवित्र है कि जहाँ उक्त भाति का आयोजन हो रहा है। सौभाग्यवश ऐसा आयोजन यदि हमारे यहाँ हो तो कम से कम अनेक बन्धुओ के दर्शन एव उनके सद्विचारो को सुनने का लाभ तो मिले कुदरत का खेल निराला हैं। कौन जानता था कि—उस समय मे जागृत हुई सच्चे हृदय की मेरी उक्त भावना आज इस रूप से हमारे यहाँ ही सफल होगी और मैं ही उसका अध्यक्ष चुना जाऊँगा। आज जो अपने को यह आनन्दानुभव हो रहा है वह जैन धर्म की उदारता एव पवित्रता का ही प्रताप है।

मुझे आज अभूत-पूर्व आनन्द हो रहा है कि—हम सभी धर्मावालम्बियों को एक ही स्टेज पर बैठ कर सप्रेम एक दूसरे के विचारों को जानने व जतलाने का मौका मिला।

इस परम उपयोगी अति-आवश्यक महान् कार्य मे अनेक प्रकार के विघ्न-बाधाओ के उपस्थित होने की सभावना कई बन्धुओ के हृदय-

मन्दिर मे थी। परन्तु देखिये—इन मुनि महात्माओ के तप का महान् तेज जो इतना वृहद् कार्य भी विना किसी विघ्न-बाधा के सानन्द सफलता पूर्वक सम्पन्न हुआ। यदि इस कार्य मे किसी प्रकार की कुछ भी गडबडी हो जाती तो कालिमा का टीका किसके सिर पर लगता।

मेरी दृष्टि से कहूँ या सभी विचारशीलो की दृष्टि मे "वसुधैव कुटुम्बकम्" इस शक्ति का समादर अन्य धर्मालम्बियो के बजाय जैन धर्मावलम्बियो मे अधिक प्रतीत होता है। जिसका ज्वलन्त उदाहरण यह है कि—परमादरणीय पूज्यपाद मुनि-महात्माओ के यहा पर मौजूद होते हुए तथा अनेक विद्वानो और सेठ साहूकारो के उपस्थित होते हुए भी मुझ अकिञ्चन को अध्यक्ष-पद प्रदान किया—अध्यक्ष चुना।

दूसरो की बात जाने दीजिए, आज के पहले मेरी खुद की यह धारणा थी कि—जैन-धर्म नास्तिक धर्म है जो खुद का ही अस्तित्व चाहता है, स्वय को ही सर्व-श्रेष्ठ मानता है। परन्तु आज जब तरुण-तपस्वी, शास्त्रज्ञ, मुनि श्री लाभचन्दजी महाराज का प्रवचन सुना तो प्रमुदित हुआ मैं अपनी धारणा का तिरस्कार करता हूँ और सानन्द विना किसी सकोच के यह कहने के लिये तैयार हूँ कि—जैन-धर्म सभी धर्मों का विकास चाहता है और सभी धर्मों को सम्मान देता है। आज जो आनन्द मुझे आ रहा है, तथा जैन-धर्म के प्रति जो श्रद्धा-भक्ति मेरे मनो-मन्दिर मे जागृत हुई है उसको व्यक्त करने के लिये मुझे मेरे निकट कोई शब्द दिखाई नही देते, जो मैं आपके सामने उपस्थित करूँ। अन्त मे मैं इस सम्मेलन को तन-मन और धन का उचित सहयोग देकर सफल बनाया है उन सभी बन्धुओ का आभार स्वीकारता हूँ और यहाँ विराजित पूज्यपाद श्रद्धेय सन्त महात्माओ से करबद्ध हो, प्रार्थना करता हू कि—समय-समय पर पधार कर अपने दर्शनो का एव प्रवचनो का लाभ देते रहे।

यहा एक महान् योगी श्री रामकृष्ण परमहस का आश्रम है, जो कि नैसर्गिक दृश्यो से बना हुआ है। पुरातन भारत की सस्कृति यहा

दिखाई देती है। आश्रम किसे कहते हैं? और आश्रम मे किस योग्यता से रहना चाहिए, इन सभी सद्विचारो का यहा सुन्दर प्रबन्ध है।

तीसरा सर्व धर्म सम्मेलन वेलूर में

ता० १६-४-६१ अक्षय तृतीया को वेलूर मे तीसरा "सर्व धर्म सम्मेलन" मनाया गया। इस अवसर पर यहा १८ भाई और बहनो के वर्षीतप का कारण था, इसलिए करीब पचास गावो के भाई-बहिनो की हाजरी थी। इस सम्मेलन मे जैन-धर्म की ओर से शास्त्रज्ञ, श्रद्धेय पूज्यपाद पण्डित-प्रवर श्री हीरालालजी म० का प्रवचन हुआ। आपके ओजस्वी भाषण को सुनकर सभी सज्जन प्रमुदित हुए जय-ध्वनि से गगन को गूजा दिया। कई प्रकार के धार्मिक-कृत्यो की अभिवृद्धि करता हुआ यह सम्मेलन सानन्द सम्पन्न हुआ।

दक्षिण भारत की सफल यात्रा

रायचूर से बेंगलोर, मेसूर, मद्रास, पाडीचेरी, के जीयफ आदि अनेक नगरो एव ग्रामो मे हमारे विचरण से जैन और अजैन बन्धुओ के के मनोमन्दिर मे सद्धर्म का सचार अच्छा हुआ। तीन-तीन सर्व धर्म सम्मेलन बुलाये गये, हाई स्कूलो मे प्रवचन हुए, जाहिर व्याख्यान भी अनेक हुए, केश-लोचन खुले मैदान मे करने पर उसका प्रभाव जनता के हृदय मे अच्छा जागृत हुआ। ज्ञान-प्रचार की दृष्टि से सैकडों भाई और बहिनों ने सामायिक, प्रतिक्रमण, बोलचाल के थोकडे आदि का अभ्यास किया। साहित्य-प्रचार की दृष्टि से श्रद्धेय प० श्री हीरालालजी म० के बेंगलोर चातुर्मास मे दिये हुए प्रवचन प्रकाशित हुए। "मानवता के पथपर" इस शीर्षक की पुस्तक मे समय-समय पर भिन्न-भिन्न विषयार्थ प्रकट किये हुए मेरे प्रवचन प्रकाशित हुए। "कुछ-सुनी कुछ-देखी" इस शीर्षक की पुस्तक मे सैकडो ऐसे दृष्टान्त है जो कि जन-जीवन के

तलस्पर्शी है। "फूल और शूल" नाम की पुस्तक भी बडे महत्व की, है। त्याग की दृष्टि से भी अनेक स्थानो मे ब्रह्मचर्य पालन करने की रात्रि भोजन नही करने की, धार्मिक कृत्यो मे शक्त्यनुसार धन-दान देने की प्रतिज्ञाए ली। जीवन-निर्माण की दृष्टि से अनुमान के दो हजार भाई-बहिनो ने जैन-सिद्धान्त के आदेशानुसार श्रावक-श्राविकाओ के बारह व्रत स्वीकार किये। इस प्रकार के अनेक धार्मिक-कृत्यो द्वारा हमारी "दक्षिण भारत की यात्रा" सफल हुई।

आठ ग्रहों का भयंकर भय

ता० ३१-१-६२ को हम हुबली पहुँचे। दुनिया मे कहावत है कि—"भय बिना भक्ति नही होती।" इस कहावत का साक्षात् प्रदर्शन इन आठ ग्रहो के एकत्रित होने के समय हुआ। प्रभु-भजन और दीन-दुखियो की सेवा-सुश्रुषा मे तल्लीन रहने के लिये यह समय सुन्दर था।

जब हमने बेंगलोर से विहार किया तब गोवा मे लडाई चलती थी, और बेलगाव का रास्ता हमे लेना था। बेंगलोर के श्रावक-सघ ने इस बात पर काफी जोर दिया कि—गोवा मे लडाई चल रही है, जब तक वह शान्त न हो जाय, तब तक हम आपको विहार नही करने देंगे। दूसरी बात—आठ ग्रहो की एक जगह जमावट होने से दुनिया मे काफी फेर-फार हो जाने की ज्योतिषियो ने भविष्यवाणी की है, एतदर्थ न जाने दुनिया मे क्या होने वाला है। जिस रास्ते से आप पधार रहे हैं, उस रास्ते मे अपने (जैनधर्मावलम्बियो के) घर बिल्कुल नही है, इसलिये न जाने क्या-क्या घटनाएँ आपके साथ घटे और कौन सम्भाले यह भी एक विचारणीय प्रश्न है। एतदर्थ आगामी चातुर्मास भी आप यहा पर ही करने की कृपा करें।

हमने कहा—बन्धुओ आपने सामने ही मुबई कोट का श्रावक-सघ चातुर्मास की विनती कर गया है, एतदर्थ सुखे-समाधे हमारी इच्छा मुबई

पहुँचने की है। दूसरी बात, जैन-धर्म कर्म-सिद्धान्त को मानने वाला है। ग्रह-विज्ञान तो एक अनुमानित विद्या है, जो गृहस्थो को वाध्य करती है, विरक्तो को नही। इसके अलावा यह बात भी है कि—हम कही भी रहे, हमारी सेवा-सुश्रुषा के लिये तथा हमारे पर गुजरने वाले कष्टो-विघ्नो के निवारणार्थ आप चाहे लाखों-करोडों प्रयत्न करें, परन्तु जो जो कष्ट-विघ्न हमे भोगने है वे तो हमको भोगने ही पडेंगे। नीतिकार का यह निर्देश सर्वथा सत्य ही है कि—

स हि गगन-विहारी, कल्मषध्वशकारी,
दश-शत-कर-धारी, ज्योतिषा मध्यचारी।
विधुरपि विधियोगात् ग्रस्यते राहुणासौ
लिखितमपि ललाटे प्रोज्झितुम् कः समर्थः ॥१॥

तीसरी बात गोवा मे लडाई चलने की आप कह रहे हैं। जिसके लिये मेरा विश्वास है कि—वह अब ज्यादह चलने की नही है। शासन-नायक की कृपा से केवल गोवा मे ही नही सारे हिन्दुस्तान मे शान्ति हो जायगी। इस प्रकार समझाने पर बडी कठिनता से सघ माना और हमने वहा से विहार किया।

हुवली मे जब हम आये तो, एकत्रित हुए अष्ट-ग्रहो के प्रकोप से विविध भाति के विघ्नो के उपस्थित होने की सूचना देने वाली ज्योतिषियों की प्रकाशित की हुई भविष्य-वाणी का प्रलयकारी प्रलाप जन-जन के मुख से निकलता हुआ सुनाई दिया। वहुत से सज्जन जो दर्शनार्थ हमारे निकट आये उनका भी पहला-प्रश्न यही रहा कि—महाराज!, एकत्रित हुए अष्ट ग्रहो की क्रूरता द्वारा ससार को क्या क्या कष्ट उठाने पडेंगे।

हमने कहा—, वन्धुओ!, घवराओ मत, और आयविल व्रत करो, नवकार महामन्त्र की आराधना करो, जिसके प्रताप से अनायास सभी

दुख दूर हो जायेंगे। हमारे कथन का सभी सज्जनो ने सत्कार किया और नवपद आराधना की अखण्ड धुन के साथ करीव ३०० सौ तेले आयविल के एक साथ हुए। तप, जप और धर्म-ध्यान के प्रभाव से ज्योतिषियो की भविष्यवाणी (जो कि अष्ट-ग्रहो की क्रूरता द्वारा भयकर कष्ट उत्पन्न होने की थी उसका) असर जनता पर कुछ भी नही होने पाया। महापुरुषो का यह कथन सोलह आना सत्य ही है कि—

धर्मेण हन्यते व्याधि, धर्मेण हन्यते ग्रह।
धर्मेण हन्यते शत्रु, यतो धर्म-स्ततो जय ॥१॥

—: कोल्हापुर की सुन्दर श्रद्धा-भक्ति :—

हुवली मे ही कोल्हापुर का श्रावक-सघ विनती करने के लिये आया और साग्रह निवेदन किया कि—कोल्हापुर को स्पर्शने की भी कृपा अवश्य करें। हमने, उनके विवेदन को स्वीकार कर हुवली से कोलहपुर की ओर विहार किया। रास्ते मे वहुत-सी जगह कोल्हापुर के भावुक भक्तो ने आकर दर्शन किये। स्पर्शनानुसार ग्रामानुग्राम विचरते हुए हम वेलगाव पहुँचे। वहा (वेलगाव मे) जैन-शाला का उद्घाटन कोलापुर के सघपति सेठ श्री ठाकरसी भाई के हाथो से हुआ। वहा से विहार कर हम ता० ५-३-६२ को कोल्हापुर पहुचे। सर्व प्रथम मगल-गीत गा कर वालिकाओ ने हमारा स्वागत किया, बाद में सघ की तरफ से मन्त्री महोदय ने स्वागत किया, तदनन्तर नागरिको की तरफ से स्वागत हुआ। प्रकाश टाकिज मे, सभी सज्जनो के सामने मैने अपना केश लोचन किया और बाद मे अनुमान के डेढ घटे तक "मनुष्य कर्त्तव्य" इस विपय पर भाषण दिया। यहा स्थानक वासियो के ४५ घर हैं। धार्मिक-श्रद्धा और गुरु-भक्ति अच्छी है। यहाँ गुड की वहुत वडी मन्डी है। वर्षा अधिक होती है इसलिये गरमी कम पडती है।

पूना में

सर्व-साधन सम्पन्न होने के कारण पूना, महाराष्ट्र का प्रख्यात शहर है। सैन्य की दृष्टि से तथा अन्य दृष्टि से भी पूना का स्थान अन्य शहरो के बजाय अधिक महत्त्वपूर्ण है। यहा पण्डितजी श्री श्रीमल्लजी म० के दर्शन हुए। ता० ७-२-६२ को गणेशपेठ मे उपाश्रय के लिये खरीदे हुए नवीन-स्थान का उद्घाटन हुआ, इस प्रसग पर "उपाश्रय की उपयोगिता" इस विषय पर मेरा प्रवचन हुआ।

—: कार्ला की गुफाएँ :—

कार्ला, यह पूना, मुबई रोड पर आता है। जिस दिन हम वहा पहुचे उस दिन मेरे बेले का पारणा था। कार्ला मे मूर्तिपूजक-समाज के दो सन्त भी थे। उनसे प्रेम-पूर्वक वार्तालाप करते समय, उन्होंने कहा—कि—ऐतिहासिक दृष्टि से यहा की गुफाए बहुत बडा महत्त्व रखती है—जो यहा से दो मील की दूरी पर हैं। हम वहा जा रहे हैं, आप भी चलेंगे क्या! मैंने सोचा, इन गुफाओ का नाम तो कई दफे सुना किन्तु देखने का मौका नही मिला, अब देख लेनी चाहिये। मैं भी उन मुनियो के साथ-साथ दो मील का रास्ता पार कर पहाड पर चढा और गुफाओ के पास पहुचा। वहा पर देखा कि—दो पुरातन विद्यालय एक ही चट्टान की खुदाई करके दो मजिले बनाये गये हैं। विद्यालयो मे अनेक कमरे हैं, कमरो मे सोने के लिये चट्टान से खडे किए हुए चबूतरे हैं। पुस्तकें आदि सामान रखने के लिये अलग स्थान है। एक कमरे मे एक ही विद्यार्थी रह सकता है। कमरो के सामने बडा हॉल है, जहा कि—सभी विद्यार्थी एकत्रित होकर, चिन्तन-मनन कर सके। दो गुफाओ के बीच मे एक धर्म-सभा है। जहा महात्मा श्री बुद्ध बैठकर धर्मोपदेश सुनाया करते थे। धर्म-सभा मे दो लाईनो में करीब

४० खभे हैं। दोनो लाईनो के वीच मे वैठने की जगह है। एक–एक खभे पर दो–दो हाथी मँढे हुए हैं और प्रत्येक हाथी पर मूर्तिया वैठी हुई हैं। सभा भवन के वाहर तीनो तरफ सात–सात मेराफ हैं। नकशी का काम वडा कलात्मक है। दोनो तरफ जैन–मूर्तिया है। एक कूआ भी यहा पर है। आने वाले दर्शनार्थियो के वैठने की जगह भी वनाई गई है। प्रत्येक व्यक्ति को, इन्हे देखने के लिये २० नये पैसे देने पडते है।

—: खपोली :—

लोणावला मे एक वर्ष मे करीव ३०० इच पानी पडता है। वहा एक वहुत वडा तालाव वनाया गया है, उसमे से एक नहर निकाली गई है। वही नहर आगे जाकर पहाड के उतार मे नलो के रूप मे परिवर्तित की गई है। खडाला से कर्ज तक २७ गुफाएँ, गुवजे रेल्वे पार करती है। कुछ तो दो मील लम्बी भी हैं। खपोली मे पावर हाउस है। पानी से मशीन चलती है और मशीन से विजली वनती है। लोनावला मे करीव १ जून से चौमासा वैठ जाता है। (वर्षा वरसने लगती है)

—: मुवई की धर्म–मुग्धता :—

ता० ८–६–६२ को हम मुवई,—घाटकोपर पहुचे। श्री सघ ने वहुत उल्लास–भरा स्वागत किया। ता० १०–६–६२ को "मानवता" इस विषय पर मेरा प्रवचन हुआ। उपाश्रय पुरा भर गया था। प्रवचन की प्रशसा सभी सज्जनो ने मुक्तकण्ठ से की। श्री अमृतकुँवरीजी महा-सतीजी भी यहा पर ही विराज रही थी। ता० १३-६-६२ को हम विले-पारले पहुँचे, उस दिन मेरे तेले का पारणा था। श्री उज्ज्वलकुँवारीजी महासतीजी ठा० १५ से यहा पर थी। यहाँ पर जनता में प्रवचनो का

प्रभाव अच्छा पडा, कई भाई बहिनो ने लीलोती का त्याग, रात्रि-भोजन करने का त्याग किया तथा बेले, तेले आदि की तपस्याएँ भी की।

ता० १५-६-६२ को हम खार पहुँचे। वहा रात्रि मे मुझे अकस्मात फिर ऐसी प्रेरणा मिली की ता० १२-१०-५८ से तो तुने आयबिल जप करना आरभ किया, बाद मे एकान्तर उपवास तथा महीना का एक तेला इस प्रकार का तप करना आरभ किया, जिसको अनुमान के आज साढा तीन वर्ष होने आये है। अब और आगे बढ तथा बेले-बेले की तपश्चर्या प्रारम्भ कर। उक्त प्रेरणा के मिलते ही ता० १६-६-६२ से बेले-बेले की तपस्या चालू कर दी।

—: मुम्बई में सम्मेलन :—

शास्त्र विशारद उपाध्याय श्री आनन्दऋषिजी महाराज चातुर्मास के लिये मुंबई पधारे, तब वहा के श्री सघ की यह इच्छा हुई की, मुबई मे विराजित जितने भी साधु-सतियां है, उनका एक सम्मेलन घाटकोपर हो। इसी प्रेरणा को लेकर ता० २३-६-६२ को करीव ६४ साधु-साध्वियो का एक सम्मेलन हुआ।

—: कोट का चातुर्मास एवं रचनात्मक कार्य-क्रम :—

ता० १२-७-६२ को दुपहर की चार बजे न्युमरीनलाई न० ४७ मनसुख भाई वसाणी के बगले से विहार कर हम फोर्ट बाजार गेट स्ट्रीट मे स्थित उपाश्रय मे आये। चातुर्मास मे प्रात. प्रवचन, मध्याह्न मे तत्त्वार्थ-सूत्र एव चर्चा और रात्रि को प्रश्न-उत्तर का प्रोग्राम रखा गया सवत्सरी के एक दिन पहले केशलोचन करने का जाहिर मे प्रोग्राम रखा गया था। लोचन-क्रिया को अवलोकन करने के लिए उत्साहित हुई जनता की अपार भीड को देखकर, मैंने सोचा कि—जनता अच्छी तरह

से लुंचन-क्रिया को देख सके, इसलिये मुझे पाट पर खडे हो जाना चाहिये। मैंने खडे-खडे लोच चालु किया। लुचन क्रिया को अवलोकन कर जनता चकित हो गई और सहसा प्रभु भजन, कीर्तन, धुन-जयनाद से उपाश्रय को एव वोहरा वाजार के सडक के सामने की गली को गुजा दिया। करीव २० मिनट मे लोच पूरा हुआ। सानन्द लोच हो जाने की खुशी मे वहुत मे भाई और वहिनो ने लीलोती नही खाना, रात्रि को भोजन नही करना, आदि अपनी अपनी शक्ति के अनुसार त्याग किया। तत्पश्चात् सघ के उपाध्यक्ष श्री मगनभाई डोशी ने खडे होकर कहा,—हम सन्त,-मुनियो द्वारा भगवान् महावीर के दीक्षा का प्रसग सुनते ही थे कि—भगवान् ने पच-मुष्टि लोच किया, परन्तु आज तरुण-तपस्वी, मनोहर-व्याख्यानी मुनि श्री लाभचन्द्रजी महाराज ने प्रत्यक्ष करके दिखला दिया। आपके आज वेला है। करीव पाच वर्षो से आप एक सेकिन्ड भी आडा आसन नही करते हैं, फिर भी ज्ञान, ध्यान उपदेश देने आदि का श्रम निरन्तर करते रहते है। मैंने जव तपस्वीजी के दिये हुए प्रवचनो की प्रेषाकित हुई पुस्तक एक वर्ष पूर्व—"मानवता के पथ-पर" पढी तो मुझे गौरव हुआ कि—हमारे समाज मे भी भगवान् की कृपा से ऐसे-ऐसे मुनि-महात्मा मौजूद है, जिनकी हम को खवर भी नही। तत्काल मेरे हृदय मे यह सद्भावना जागृत हुई है कि—ऐसे मुनि-महात्माओ के चातुर्मास का लाभ मुम्वई की जनता को भी मिले तो अति-उपकार हो। ऐसा निश्चय कर, मैं कोट-सघ और महासघ के प्रमुख महानुभावो से मिला तथा अपने हार्दिक विचार उनके सामने रखे। सभी सज्जनो ने मेरे विचारो का समर्थन किया। तदनन्तर, हमारे अध्यक्ष श्री वरजीवन भाई, तथा मन्त्री श्री चुन्नी भाई और मैं, तीनो हम वेंगलोर गये। आपको यह वात सुनकर वडा आश्चर्य होगा कि—हमारे से अधिक आग्रह नही कराते हुए, वडी सरलता के साथ चातुमासार्थ की हुई हमारी विनती महाराज श्री हिरालालजी म० ने स्वीकार की। महाराज श्री यहा के उपनगरो मे जहा भी पधारे वहा

व्याख्यानो की धूम मच गई, एव विद्वता, त्याग और तप आदि सद्गुणो की भूरि-भूरि प्रशसा होने लगी। मुम्वई को और खास कर फोर्ट सघ को ऐसे महान् सन्तो के दर्शन का, सेवा करने का, प्रवचन सुनने का जो स्वर्ण-मयी अवसर मिला है यह सौभाग्य की बात है। मैं सभी भाई और बहनो से निवेदन करता हूँ कि—भाग्यवश हाथ आये हुए ऐसे स्वर्ण-मयी अवसर को खाली न जाने दे और अधिकाधिक रूप मे, दर्शन,— सेवा,—प्रवचनो का लाभ उठाये।

महाराज श्री का एक बहुत सुन्दर और परम-उपयोगी कार्य-क्रम यह है कि—प्रत्येक श्रावक को उनके बारह-व्रतो का ज्ञान कराना और धारण कराना। बारह-व्रत क्या है, उसको गृहस्थ-जीवन मे किस प्रकार स्थान दिया जाता है, प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी स्थिति में रह कर भी किस प्रकार बारह-व्रतो का सानन्द पालन कर सकता है। यह सभी तरीका महाराज श्री वडी सुन्दरता और सरलता के साथ समझाते है। आपको यह जान कर आश्चर्य होगा कि—फोर्ट एव मुबई के उप-नगरो के करीव ५०० सौ भाई और वहिनो ने बारह-व्रत स्वीकार (धारण) किये हैं। जिन वारह-व्रतो का नाम सुन कर ही हम डर जाते हैं। दूर रहने का प्रयत्न करते हैं, उन्ही वारह-व्रतो को जव महाराज श्री से समझते हैं, तो वहुत सरल लगते हैं। अत आप सभी सज्जन वारह-व्रतो को समझने का एव ग्रहण करने का भरसक प्रयत्न करें। यह मेरा आपको शुभ-सन्देश है।

आप सभी भाई-वहिन लुचन-क्रिया देखने के लिये मुम्वई के सभी उप-नगरो से यहाँ आये व हमको आपकी सेवा का लाभ दिया। जिसके लिये मैं अपने श्रीसघ की ओर से आपको धन्यवाद देता हूँ।

क्षमापना-समारोह

दिनाक ९-९-१९६२ को श्री मच्छुकाटा, जैन वीसा-श्रीमाली युवक-मण्डल की ओर से, नर-नारायण के मन्दिर में क्षमापना-सम्मेलन

मनाया गया। उसमे "क्षमा का क्या स्वरूप है, और जीवन मे उसका क्या फल है।" इस विषय पर मेरा प्रवचन हुआ। जनता की उपस्थिति अनुमान के ५००० हजार के थी। प्रवचन को सुनकर सभी सज्जन गद्‌गद् हो गये।

दिनाक १६-६-१९६२ को श्री जैन-महा मण्डल की ओर से, भाटिया-महाजन-वाडी मे, तीनो कान्फ्रेन्सो के तत्वाधान मे क्षमापना दिवस मनाया गया। उसमे मूर्ति-पूजक समाज के सन्त श्री चित्रभानुजी भी थे। "क्षमा का उद्‌गम स्थान एव उसके लक्षण" इस विषय पर मेरा प्रवचन हुआ। प्रवचन की जनता ने तथा दैनिक-समाचार पत्रो ने बहुत ही प्रशसा की।

चौपाटी ऊपर प्रवचन

दिनाक ४-१-१९६२ को देवनार कतल-खाने के विरुद्ध मे दो दिन तक सभा का आयोजन रक्खा गया था। प्रथम दिन की सभा के सभापति थे—श्री दुर्लभजी भाई खेताणी। इस सभा मे पधारने के लिये सभी धर्मो के धर्म-गुरुओ को निमन्त्रण था। मैं सायकाल के ठीक पाँच बजे सभा-स्थल पर पहुँचा, तो जनता की भीड अपार देखी। सर्व प्रथम मेरा ही भाषण हुआ। मैंने अपने भाषण मे एक लाख जितनी महान् जन-समूह को सम्बोधन करके कहा—भाईयो और वहिनो! आप सभी की वहुत बडी जिम्मेवारी है कि—जो देवनार के कतल-खाना वनाने की सरकार की योजना है, उसका पूर्ण वल से विरोध करें। आज यहाँ जो यह सभा बुलवाई गई है, वह अहिंसा-सभा है। जव कोई व्यक्ति डॉक्टर को बुलाता है, तो स्वत यह अनुमान पैदा हो जाता है कि—कोई वीमार है। तद्वत् आज का अहिंसक आयोजन बुलवाने का भी यही अर्थ (मतलव) है कि—आपके यहाँ हिंसा की ज्वाला धधकने वाली है। सरकार की ओर से तैयार किये जाने वाली इस कतल-खाने

की योलना का मद्रास, कलकत्ता, दिल्ली आदि प्रमुख नगरो की जनता ने प्रबल वहिष्कार किया है। अब मुम्बई की जनता का खमीर देखने का है कि—वह कौन सा मार्ग स्वीकार करेगी।

हमारी सरकार कहती है कि—हमारे पास अनाज बहुत कम है। अत जनता मास खाये। मैं कहता हूँ कि—हमारा देश आदि काल से कृषि-प्रधान देश है। यहाँ से लाखो टन अनाज विदेश जाता था। आज अनाज की कमी क्यो है। उसका स्पष्ट उत्तर है कि—पशुधन जो हमारी मुख्य सम्पति थी, वह कट गई। जिससे अनाज की उपज कम हो गई। पशुधन कटने का कारण मानव की स्वाद वृति। मास किसी का खाना सरल है, लेकिन स्वय का हृदय का मास किसी को देना पडे, तब हमारी क्या स्थिति हो जाती है। उसके बारे मे मगध सम्राट श्रेणिक के समय की एक घटना सुनाता हूँ। एक समय महाराजा श्रेणिक की सभा मे एक बार यह चर्चा चली कि—किस प्राणी का मांस अधिक उपयोगी है। तब किसी ने कबूतर का, किसी ने मयूर का किसी ने गाय का, इस प्रकार सभी मासाहारियो ने अपने अपने अभिप्राय व्यक्त किये। लेकिन मन्त्री अभय मौन रहा। सभा विसर्जन होने के बाद रात्रि को मन्त्री अभय, नगर सेठ के यहाँ गया और यो बोला कि—महाराजा श्रेणिक की तबियत बहुत खराब है, जिसके लिये वैद्यो का कथन है कि—यदि कही से मनुष्य के कलेजे का एक तोला मास हाथ लग जाय, तो राजा की तबियत ठीक हो जाय। इसलिये मैं भगा-भगा आपके निकट आया हूँ। लीजिए ये मूल्य के दश हजार रुपैये और दीजिए आपके कलेजे का एक तोला मास।

नगर सेठ बोले कि—मन्त्री महोदय ! दश हजार रुपैये लेने के बजाय, पलटे मे ये बीस हजार रुपैये आपको भेंट करता हूँ। किन्तु अपने कलेजे का एक तोला तो क्या एक रती भर भी मास देने मे भी अशक्त हूं। मन्त्री ने नगर सेठ से बीस हजार रुपैये ले लिये। इस

प्रकार सभी प्रमुख मासाहारियो (जिन्होने कि राज-सभा मे पशु-पक्षियो के मास मे किस पशु या पक्षी का मास अधिक पौष्टिक अतएव उपयोगी है, इस विषय मे अपना अपना अभिप्राय प्रकट किया था) उनके घर मन्त्री अभय गये। वे सभी हजारो रुपये तो देने को तैयार हो गये। परन्तु कलेजे का मास देने को कोई भी तैयार नही हुए। इस प्रकार उन मासाहारियो से लाखो रुपये बटोर कर मन्त्री अभय अपने घर लौट आये। दूसरे दिन जब राज-सभा जुडी तो, मन्त्री अभय ने गत-रात्रि मे जो घटना घटी वह आदि से अन्त तक महाराजा श्रेणिक को कह सुनाई कि—हजारो, लाखो रुपये देने को तो ये मास-भक्षी लोग तैयार हो गये किन्तु अपने कलेजे का एक तोला मास का मूल्य हजारो, लाखो रुपये देने पर भी ये देने को तैयार नही हुए। मैं इन मासाहारियो से यह पूछना चाहता हू कि—जब तुम्हे तुम्हारे कलेजे का मास इतना प्रिय है तो—जिन पशु, पक्षियो का मास-भक्षण तुम करते हो, उन (पशु-पक्षियो) को अपना कलेजा प्यारा नही है क्या ? यदि है तो, रसना-स्वाद और शरीर-पुष्ट बनाने की दुर्भावना से प्रभावित होकर उन अबोध जानवरो के प्राण-हरण करने या करवाने का तुम्हे क्या अधिकार है।

जब हिन्दुस्तान मे ३३ करोड जन सख्या थी तब ६६ करोड पशु थे। आज ४० करोड जन सख्या है और ६ करोड पशु।

जब पशु-पालन का महत्व हिन्दुस्तान मे था तब पशु के शरीर मे से हमे जो वासना (हवा) मिलती थी उससे पेड पौधे, अनाज आदि को बहुत पोषण मिलता था। खाद मिलता था तो काफी मात्रा मे अनाज उत्पन्न होता था, यहा तक कि—विदेशो मे लाखो मण अनाज जाता था। आज हमारी यह हालत है कि—लाखो टन अनाज विदेशो मे खरीदने के बाद भी, हमारे भाईयो को खाने के लिये पूरा अनाज नही मिलता है। इसका मुख्य कारण मासाहार है। मास, पेट भरने के

लिये नही खाते हैं, किन्तु जिह्वा-स्वाद के लिये खाते हैं। शरीर की पुष्टि का तो बिलकुल झूठा बहाना है। आयुर्वेदविदावरो का उनके सिद्धान्तानुसार यह स्पष्ट मतव्य है कि—शरीर की पुष्टि के लिये जितनी वनस्पति या उसका रस उपयोगी है उससे शताश कहू या सहस्राश मे भी मास नही। अत हमे हमारी अहिंसा की सस्कृति की रक्षा अवश्य करनी चाहिए। आज आप सभी इस कतलखाने के विरोध मे नभ, पृथ्वी और जल ये तीनो हमारे सामने हैं, इनकी साक्षी से प्रतीज्ञा करें कि—पशु की बलि के पहले हम अपनी बलि देंगे तो मेरा विश्वास है कि—सरकार ने यहा जो कतलखाना बनाने की योजना तैयार की है वह कागज की कागज मे ही रह जायगी।

करीब २० मिनट तक मेरा भाषण उपरोक्त विषय पर हुआ। भाषण को सुनकर जनता इतनी प्रभावित हुउ कि अनेको बार भाषण के बीच-बीच में प्रसगोयात हर्ष ध्वनि, आश्चर्य ध्वनि एव विवाद की ध्वनि करके प्रवचन के एक-एक शब्द को सम्मान दिया। तदनन्तर सभा मे पधारे हुए प्राय सभी धर्मों के धर्म-गुरुओ (धर्माचार्यों) के ओजस्वी भाषण हुए। सभी-धर्माचार्यों-ने निर्भयता के साथ कतलखाने का विरोध किया। देवी, देवताओ की भेंट मे पशु की बलि देकर अपने और पशु के कल्याण की दुर्भावना रखने वाले मास-लोलुपी व्यक्तियो के मन्तव्यो का खण्डन करते हुए एक धर्माचार्य ने तो अपने सनातन वैदिक सिद्धान्तो के बल पर बोलते हुए यो स्पष्ट कहा कि—

—: शार्दूलविक्रीडित :—

नाह स्वर्ग-फलोपभोग-तृषितो, नाभ्यर्थितस्त्वन्मया।
सन्तुष्ट तृण-भक्षणेन सतत साधो न युक्त तव॥
स्वर्गं यान्ति यदि त्वया विनिहता यज्ञे ध्रुव प्राणिनो।
यज्ञ किं न करोपि मातृ-पितृभि:, पुत्रै स्तथा बान्धवै: ॥१॥

पशु कहता है कि—मैं स्वर्ग-फल के उपभोग करने का प्यासा नही हू और नही मैंने तुमसे कभी ऐसी (इस प्रकार की) अभ्यर्थना (याचना,—अर्जीजी) की है। मैं तो तृण भक्षण करके ही सन्तुष्ट रहता (होता) हू, हे सज्जन! तुझे ऐसा (इस वहाने से मेरे प्राण हरण) करना उचित नही है। यदि तुझे ऐसा ध्रुव (निश्चय) है कि—इस यज्ञ मे वलि के रूप मे मारे जाने वाले प्राणी स्वर्ग ही जाते हैं तो स्वर्ग की वाछा तो तेरे माता, पिता, वन्धु, पुत्र, और तू खुद रखता है। इनमे से किसी एक की वलि देकर स्वर्ग–सुखानुभवी क्यो नही वनाता तथा वनता? इत्यादि।

ता० ३–११–६२ को लौंकागच्छ के उपाश्रय मे "महावीर प्रभु का अमर सन्देश" इस विषय पर प्रवचन हुआ। जनता की उपस्थिति वहुत थी।

इस प्रकार वुबई का चातुर्मास सानन्द समाप्त कर ता० १२-११-६२ को हमने विहार किया। विहार का दृश्य देखने योग्य था।

ता० १७, १८–११–६२ को कान्फ्रेंस की जनरल मिटिंग माटुगा मे हुई। जिसमे आचार्य–पद तो श्री आनन्दऋषिजी महाराज को और श्री हीरालालजी म० आदि तीन सन्तो को मत्री पद देने की घोषणा की। पूज्यपाद, श्रद्धेय, उपाध्याय श्री आनन्दऋषिजी म० के आचार्य घोषित होने पर सर्व–प्रथम श्रमण–सघ की ओर से स्वागत करने का सौभाग्य मुझको ही प्राप्त हुआ।

—: वोरीवली में दीक्षा–महोत्सव :—

लिंवडी सम्प्रदाय के सन्त श्री डूंगरसी स्वामी के पास कच्छ के निवासी श्री लालजी भाई की दीक्षा ता० २–१२–६२ को हुई। दीक्षोत्सव में करीव २५००० हजार के जनता की उपस्थिति थी।

दीक्षा–प्रसग पर भाषण देते हुए मैंने कहा, भगवती दीक्षा यह एक महान् प्रसंग है। यह प्रसग समाज को सगठित एव त्यागमयी बनने की प्रेरणा देता है। समाजवाद, सप्रदायवाद, प्रान्तवाद, व्यक्तिवाद अगर समाप्त हो जाय तो एक चीन क्या लाखो चीन भी भारत पर चढ कर क्यो न आये, भारत का बाल भी बाँका नही कर सकती। कारण कि—सगठन की शक्ति के सामने अन्य सभी शक्तियाँ कुण्ठित हैं। नीतिकारो का आदेश भी है कि—"सघे शक्ति कलौयुगे"।

—: वृहद् साधु सम्मेलन की योजना :—

श्री श्रवण-सघ के नियमानुसार कम-से-कम पाँच वर्ष मे और ज्यादा-से-ज्यादा सात वर्ष मे, वृहद् साधु सम्मेलन होना चाहिए। भीनासर सम्मेलन के बाद श्रमण-सघ मे काफी उतार चढाव आये। कुछ ऐसी समस्याएँ भी खडी हो गई, कि जिनका निराकरण शीघ्र नही किया गया तो वे जहर की भाँति अपना विस्तार समाज मे फैलाकर, समाज को खोखला बना देगी। इसलिये श्री गिरधर भाई आदि प्रमुख सज्जनों ने आचार्य श्री आनन्दऋषिजी म० से निवेदन किया कि—साधु-सम्मेलन शीघ्र हो, ऐसा कान्फ्रेंस महसूस करती है। आचार्यश्री ने फरमाया कि मैं भी इस बात की पुष्टि करता हूँ। तब श्री गिरधर भाई ने आचार्यश्री से प्रार्थना की कि—आप अपना विहार राजस्थान की ओर करें, और हम लोग सभी मुनि-महात्माओ की सेवा मे जाकर सम्मेलन मे पधारने की प्रार्थना करें। तब आचार्यश्री ने फरमाया कि मेरे साथी मुनि श्री मोतीऋषिजी तो लकवे की बीमारी से ग्रसित (व्यथित) है, अतः मेरा विहार कैसे हो सकेगा। श्री गिरधर भाई ने निवेदन किया, समाज का कार्य मुख्य है। इनकी सेवा मे दो सन्तो को रख दीजिए और आप पधारिये। आचार्यश्री ने फरमाया, मेरे साथ कौन चलेगा, कारण कि कुछ व्याख्यानी सन्तो का मेरा साथ रहना भी

परमावश्यक है। उस समय श्रद्धेय स्वामी, मन्त्री श्री हीरालालजी म० और मैं वहा पर ही था। आचार्य श्री ने हम दोनो को बुलाकर फरमाया, मेरी परिस्थिति है वो आपके सामने है, और सम्मेलन का होना भी जरूरी है तो अब मुझे क्या करना चाहिये। श्रद्धेय मन्त्री श्री हीरालालजी म० और मैंने निवेदन किया कि—सम्मेलन हो वहाँ तक आपकी सेवा मे साथ चलने को हम दोनो तैयार हैं।

—: मुंबई के उपनगरों में आचार्य श्री के साथ :—

मुंबई—महासंघ ने आचार्य श्री से अर्ज की कि—एक-एक अथवा दो-दो दिन आप श्री मुंबई के मुख्य-मुख्य उपनगरो मे पधारने की कृपा अवश्य करें। आचार्य श्री ने स्वीकृति दी।

मंत्रीजी महाराजा, मैं और मुनि श्री दीपचन्दजी हम तीनो ने आचार्य श्रीजी की सेवा मे उनके साथ-साथ मुंबई के उपनगरो की ओर विहार किया।

—: प्रेम दो और प्रेम लो :—

ता० २५-१२-६२ को हम कोट पहुँचे। व्याख्यान समाप्त होने पर दो भाई और कुछ बहिनें आचार्य श्री से अर्ज करने लगे कि—यहाँ लोकागच्छ के उपाश्रय मे तेरहपंथी सन्त विराजते हैं, वे आपको उनके साथ वार्तालाप एव व्याख्यान करें तो क्या हर्ज है। इस बात के लिये आचार्य श्री ने मेरे से परामर्श लेना चाहा। मैंने निवेदन किया कि—अपने को तो कोई हर्ज नही, किन्तु जब तक दिल साफ न हो तब तक उनका मिलना खाली प्रोपेगंडा ही रहेगा। अगर वे जनता के सामने यह बात स्पष्ट जाहिर करदें कि—स्थानकवासी सन्तो को वन्दना करने मे, उनका व्याख्यान सुनने मे, उनको आहारादि बहराने मे कर्म की निर्जरा

होती है, तो अपने को उनके साथ वार्त्तालाप एव व्याख्यान करने मे लाभ भी है। इस पर उन भाईयो ने कहा—यह कैसे हो सकता है। तव आचार्य श्री ने फरमाया कि—हमारा उनके साथ वार्त्तालाप और व्याख्यान भी कैसे हो सकता है।

—: नाक के मसों का इलाज :—

ता० २६–१२–६२ को कादावाडी मे श्री डूंगरसी स्वामी के आखों का ओपरेषन होने वाला था, अत मैं ता० २५–१२–६२ के शाम को ही कांदावाडी मे उनके पास चला गया। ता० २६–१२–६२ को श्री डूंगरसी स्वामी के आख का ओपरेशन हुआ। मेरे शरीर मे सर्दी का प्रकोप अधिक रहने के कारण मैंने भी अपनी शारीरिक चिकित्सा करने के लिये डाक्टर साहव से कहा। उन्होने अपने विज्ञान द्वारा मेरे शरीर मे सर्दी अधिक रहने का कारण ढूंढा तो ज्ञात हुआ कि नाक मे मसे हैं, इन्ही के कारण सर्दी अधिक रहती है। इनको विजली से टच करवालें, सर्दी मिट जायगी। डाक्टर साहव के इस प्रकार कहने पर, मैंने भी नाक को मसे टच करवा लिये। नाक के घाव भरने मे कुछ विलव हुआ, और आचार्य श्री को श्रावको के अति आग्रह करने पर कुछ और वाजारो मे पधारना था, तथा मन्त्रीजी महाराज को प्रवर्तक श्री किस्तूरचन्दजी म० की सेवा मे मालवे की ओर जाना जरूरी था, इसलिये श्रद्धेय मन्त्रीजी म० ने, मुझे आचार्य श्री के साथ–साथ मालवे मे आने की आज्ञा प्रदान कर, नाशिक की ओर विहार किया।

—: आचार्य श्री की सेवा में :—

मसों का इलाज कराने के कारण मुझे कांदावाडी मे कुछ ज्यादा दिन लग गये। आचार्य श्री ने घाटकोपर से ता० १५–१–६३ को नाशिक की ओर विहार कर दिया। मैं आचार्य श्रीजी की सेवा मे ता० १८–१–६३ को मुलुंड पहुँचा।

—: पांडु – गुफाएँ :—

वाडीवारे से विहार कर नाशिक जाते समय बीच (रास्ते) मे पाडु-गुफाएँ आती हैं। करीब २६ गुफाएँ हैं। एक गुफा मे शिव–लिंग पीछे से रखने में आया हो ऐसा प्रतीत होता है। आधा मील का चढाव है।

—: सिंधी कोलोनी में :—

ता० १८-३-६३ को हम धुलिया पहुचे। यहा श्री माणकऋषिजी म० ठाणापथी विराजते हैं। प्रात बाम्बे टाकीज मे और रात्रि को कल्याणस्वामी रोड उपाश्रय के सामने प्रवचन होते रहे। यहाँ से करीब सवा माइल की दूरी पर कुमार नगर में सिंधी कोलोनी है। कुछ सिंधी भाई और बहिनो ने सिंधी कोलोनी मे प्रवचन फरमाने की आचार्य श्री से प्रार्थना की। उनकी प्रार्थना को स्वीकार कर ता० २५–३–६३ को रात्रि का प्रवचन सिंधी कोलोनी मे हुआ। करीब चार हजार की सख्या मे जनता की उपस्थिति थी। आचार्यश्री का स्वास्थ्य बराबर नही होने के कारण मैंने ही व्याख्यान सुनाया। व्याख्यान का विषय था—"दया का स्वरूप"। सभी जनता बहुत प्रभावित हुई। बहुत से सिंधी भाई और बहिनो ने माला–सामायिक मांस मदिरा आदि की प्रतिज्ञाएँ ली।

—: मध्य प्रदेश के मुख्य नगर इन्दौर में :—

ता० ३–५–६३ को हम इन्दौर पहुँचे, उसके एक दिन पहले— विजलपुर नार्मल स्कूल मे प्रवचन हुआ। इन्दौर नवयुवक–मण्डल की ओर से इन्दौर से विजलपुर तक आचार्य श्री के दर्शनार्थ आने वाले सज्जनो के लिये स्पेशियल बसो की व्यवस्था की। इन्दौर पहुचने पर वहाँ की जैन–जनता ने बहुत शानदार स्वागत किया। करीब आधा

माइल जितना जलूस होगा। प्रान्त–मन्त्री श्री सौभाग्यमलजी महाराज अपनी शिष्य–मण्डली सहित स्वागतार्थ सामने पधारे। महावीर भवन मे पहुँच कर "श्रमण–सघ के प्रति हमारा कर्त्तव्य" इस विषय पर प्रवचन हुए। ता० ११–५–६३ को मुख्य–मुख्य नगरो के प्रतिनिधियो का सम्मेलन हुआ और श्रमण–सघ को सुदृढ बनाने के प्रस्ताव किये गये। ता० १२–५–६३ को कान्फ्रेंस की मैनेजिंग कमेटी हुई, उसमे वृहद् साधु–सम्मेलन भरने का निर्णय किया।

—: शाजापुर का भव्य चातुर्मास :—

शाजापुर के श्रावक-सघ की अनेक वर्षों से आचार्यश्री का चातुर्मास अपने यहाँ कराने की हार्दिक उत्कण्ठा (लालसा) थी, तथा वयोवृद्ध, महाविदुषी, महासती श्री रतनकुँवरीजी ने भी अनेक वॅर कई श्रावको के साथ आचार्यश्री की सेवा मे निवेदन करवाया था कि एक बार अवश्य दर्शन देने की कृपा करे। इन आवश्यकीय उभय-दृष्टि-कोणो की ओर ध्यान धर कर आचार्यश्री ने चातुर्मास शाजापूर मे सुखे-समाधे करने की स्वीकृति इन्दौर मे दे दी।

तारीख ११-८-६३ को "श्री जैन नवयुवक-शिक्षण-शिविर" शाजापुर मे प्रारम्भ किया गया, जिसमे आचार-विधि, श्रावक के कर्त्तव्य, जैन धर्म की महानता, जैन धर्म का इतिहास आदि विषयो पर प्रवचन होते रहे। पर्यूषण पर्व की समाप्ति तक शिक्षण-शिविर चलता रहा। पर्यूषण पर्व मे मेरे तीनो टाइम प्रवचन होते रहे। ता० २५-८-६३ को "महाराष्ट्र समाज मे आस्तिक जैन धर्म" इस विषय पर मेरा तथा आचार्यश्रीजी का प्रवचन हुवा। चातुर्मास मे करीब तीस हजार दर्शनार्थियो ने दर्शन का लाभ लिया।

चातुर्मास में अनेक क्षेत्रो का आग्रह था कि वृहद्-साधु सम्मेलन हमारे यहाँ हो लेकिन सभी क्षेत्रो की स्थिति एव मुनिवरों की सुगमता का

ध्यान रखकर क्षेत्र चुनना जरूरी था। आचार्य श्रीजी से अजमेर के व ब्यावर के श्री सघ ने अपने-अपने क्षेत्रो मे सम्मेलन कराने की भावना व्यक्त की तथा जैन कोन्फ्रेंस की जनरल वार्षिक कमेटी के प्रसग पर कोन्फ्रेंस के वडे-वडे नेताओ ने भी आचार्यश्री जी से निवेदन किया की अब स्थान व तिथि वृहद् साधु सम्मेलन की घोषित करने की कृपा करे। सभी दृष्टिकोण से सोचने के बाद आजार्य श्रीजी ने स्थान अज्मेर व तीथि व तारीख १६-२-६४ घोषित की।

-: उज्जैन, रतलाम की ओर पधारने की विनती :-

चातुर्मास की समाप्ति के बाद, कुछ लोगो का आग्रह था कि—डगवडौत होते हुए मन्दसोर आचार्यश्री पधारे तो ठीक रहेगा। परन्तु मैंने अरज की कि अगर सम्मेलन को यशस्वी सफल वनाना हो, सगठन का नाँद गुजाना हो और समाज को महान् प्रेरणा देनी हो तो आचार्यजी को उज्जैन, खाचरोद, रतलाम होते हुए मन्दसोर पधारना चाहिये।

तारीख ३०, ३१-१०-६३ को कान्फ्रेंस की वार्षिक कमेटी के प्रसग पर भिन्न-भिन्न गाँवो और शहरो के प्रमुख-प्रमुख महानुभाव आये हुए थे। उनमे से उज्जैन, खाचरोद, रतलाम, जावरा, मन्दसोर, आदि के सघो की ओर से जोरदार विनती हुई कि—चाहे आप अपनी अनुकुलतानुसार एक या दो दिन ही विराजे किन्तु आपको उज्जैन आदि क्षेत्रो को अवश्य स्पर्शना होगा। आचार्यश्री ने उनकी विनती स्वीकार की।

-: मध्यप्रदेश में महान् स्वागत :-

शाजापुर का चातुर्मास सानन्द समाप्त कर आचार्यश्री ने जब उज्जैन की ओर विहार किया, तव मध्यप्रदेश में एक प्रकार की आनन्द की

लहर दौड गई। उज्जैन, नागदा, खाचरोद के श्री सघो ने आचार्यश्री का सुन्दर स्वागत किया। प्रान्तमत्री, प० श्री सौभाग्यमलजी म०, श्री अशोक मुनिजी म०, श्री मूल मुनिजी म० आदि मुनिवरो ने रतलाम से खाचरोद पधार कर आचार्यश्री का स्वागत किया।

ता० १-१२-६३ को रतलाम आचार्यश्री पधारे उस समय रतलाम (रत्नपुरी) के श्री सघ का उत्साह दर्शनीय था। नर, नारी केशरिया तथा विविध प्रकार के रग विरगे वस्त्र पहिने हुए थें, अनेक स्कूलो के बालक, बालिकाओ के मधुर एव कोमल कण्ठ से मगलिक गायन गाया जा रहा था। अनेक मण्डलो के नवयुवक "जैन-धर्म की जय" के सुन्दर शब्द से गगन को गू जा रहे थे, श्री कृष्ण कला मन्दिर की महिलाए " सैया सतगुरू भले आया ए " इस प्रकार के बधावे गा रही थी। इस प्रकार के स्वागत के साथ आचार्यश्री का रतलाम नगर मे पदार्पण हुआ। श्री मगनलाल जी म० आदि सन्तो ने तथा परमविदुषी महासती श्री कमलाजी आदि साध्वियो ने भी हार्दिक स्वागत किया जैसा स्वागत रतलाम मे इस समय आचार्य श्री का हुआ वैसा स्वागत विगत ६० वर्षो मे भी किसी सन्त महन्त का हुआ, हमने नही देखा, इस प्रकार बडे दाने और स्याणे पुरुष कहने लगे। स्वागतार्थ तकरीबन २५ हजार जितनी जनता थी।

दुपहर को जैन-युवक अधिवेशन मनाया गया। प्रतिदिन रात्रि भी प्रवचन हुआ करते थे। रात्रि के प्रवचनो मे आठ, दस हजार श्रोताओं की उपस्थिति हुआ करती थी।

मैलाना जावरा मन्दसौर. नीमच का स्वागत दृश्य भी बडा उत्साह वर्धक था। सभी सघोने अजमेर सम्मेसन की सफलता तथा हम श्रमण सघ के विकास के लिये पूर्ण रुप से सेवाएँ देने को तैयार है इस प्रकार की मंगल कामना तथा आश्वासन मिले।

—: वीरवाल सम्मेलन में आचार्य :—

ता० १- १- ६४ को आचार्य श्री निम्बाहेडा पधारे। ता० २ को मध्याह्न को लक्ष्मी-टाकीज मे वीरवाल सम्मेलन आचार्य श्री के सानिध्य मे रखा (मनाया) गया। करीब ५०० सौ वीरवाल भाई-बहिनो ने सम्मेलन मे भाग लिया। नवीन गोत्र सस्करण करने का प्रस्ताव पास हुआ।

—: शिखर सम्मेलन, अजमेर :—

बगाल, नेपाल आदि दूर देशो मे विचरण करते रहने के कारण सादडी, सोजत, भीनासर के सम्मेलनो मे मैं सम्मिलित नही हो सका। इस बार तो मैं आचार्य श्री की सेवा में उनके साथ ही था, अत विशेष निमन्त्रित के रूप मे मुझे अधिकारी मुनिवर्गो की मिटिंगो मे बैठने का सुअवसर मिला। सम्मेलन मे ९२ साधु और १४५ साध्वियो की उपस्थिति थी। ता० १६–२–६४ से सम्मेलन का कार्य प्रारम्भ हुआ। उसमे गण योजना की रूप व्यवस्था स्वीकार की। ता० २३-२-६४ को पटेल-मैदान मे आचार्य पदवी समारोह हुआ। बाहर गावो के दर्शनार्थियो पर रोक होते हुए भी करीब पचास हजार जितनी जनता की उपस्थिति थी। सम्मेलन का कार्य अधिकाश रूप मे काफी अच्छे ढग से हुआ। जो भी कार्यवाही हुई वह समाचार पत्रो मे प्रकाशित हो गई।

—: जयपुर की ओर :—

आचार्य श्री का विहार किधर हो यह प्रश्न हमारे सामने आया। तो मैंने निवेदन किया इधर के प्रदेश तो काफी देखे चुके गये है परन्तु पजाब की ओर पधारना, मुझे आचार्य श्रीजी का बहुत महत्वपूर्ण लगता है। कुछ तो समाज की, सतो की ऐसी भी समस्याएं अपने सामने है जिनका हल आचार्य श्री जी का पजाब पधारने से हो सकेगा। अत जयपुर होने

हुए आगे देहली आदि क्षेत्रो मे पधारे तो बहुत ठीक रहेगा। उपाध्याय श्री ने तथा प्रवर्तक श्री शुक्लचन्दजी म० ने भी इसी बात की पुष्टि की। अत आचार्यश्री ने जयपुर का लक्ष लेकर मदनगज, किशन गढ की ओर विहार किया। वहा से ५-४-६४ को आचार्यश्री जयपुर पधारे।

जयपुर पहुचने पर मैंने आचार्यश्री जी से निवेदन किया कि प्रवर्तक वयोवृद्ध श्री कस्तुरचन्दजी म० की सेवा किये तकरीबन २४ वर्ष हो गये है, अत आप श्री आज्ञा फरमावें तो मैं उनकी सेवा मे मदनगज जाउ। आचार्यश्री ने फरमाया, तपस्वी श्री जी आप १५ महिने के समय जो तनतोड कर मेरी तथा श्रमण सघ की सेवा की है वह कभी भूलाई नही जा सकेगी। तुम्हारी इच्छा वयोवद्ध श्री कस्तुरचन्दजी म० की सेवा करने की प्रबल इच्छा है तो मैं आप को उस से वचित नही रख सकता। लेकिन श्रमणसघ के विकास सवन्धि जो योजनाएँ अपने सामने है। उस को पूर्ण करने मे आप का भी सहयोग समय समय पर मिलता रहे। मैंने प्रत्युत्तर मे निवेदन किया की आप श्री जी की जो आज्ञा, उसका पालन करने के लिये मैं हमेशा तैयार रहूगा।

जयपुर मे ता० १२-४-६४ को सेन्टर जेल मे ता० १४-४-६४ को महालेखापाल (एजि ओ आफिस) मे मेरा और कविजी म० का प्रवचन हुआ।

—: मदन गंज को :—

ता० १५-४-६४ को मैंने प्रवर्तक श्री हीरालाल जी म० के साथ मदनगज की ओर विहार किया। विहार के समय मे मैंने जव आचार्यश्री जी को वन्दना की तो आचार्यश्रीने मुझे आर्शीवाद देते हुए फरमाया, अच्छा तपस्वीजी जाते हो तो जाओ किन्तु ने अपनी योजना है उसे मत भूल जाना। गुरु और शिष्य के यह विछडने का समय का दृश्य वडा विहावना

था। मैंने भी सजल नेत्रो से आचार्यश्री को निवेदन किया कि आप अपनी कृपा दृष्टि की अमी वर्षा इस लघु शिष्य पर हमेशा बरसाते रहेंगे ऐसी मैं आप श्री से निवेदन करता हूँ। ता० २१-४-६४ को हम वयोवृद्ध श्री कस्तुरचन्दजी म० की सेवा मे मदनगज पहुँचे।

जैन शिक्षण शिविर में

पाली के वर्द्धमान स्थानक वासी जैन सघ द्वारा एक महीने के लिये, एक शिक्षण शिविर चल रहा था, उसके समाप्ति समारोह मे मैंने विद्यार्थियो को सबोधन कर के कहा! बन्धुओ! अध्यात्मिकशिक्षा को छोडकर, विश्व की अन्य समस्त शिक्षाएँ अधिकाश मे शरीर-निर्वाह मे सहाय-भूत बनती हैं। केवल धार्मिक शिक्षा ही एक ऐसी शिक्षा है कि जिसके द्वारा अ तरात्मा का विकास होता है, हृदय की तप भूमि शान्त होती है। आप अनेक ग्रामो और शहरो से शिक्षा लेने के लिये यहा आये हैं। और शिक्षा प्राप्त भी की है, किन्तु वह (शिक्षा) यही तक सीमित न रहे। उस (शिक्षा) के रग से अपने जीवन की प्रत्येक क्रियाओ को अभिरजित करदें ताकि आपका व्यावहारिक, नैतिक जीवन सुदृढ एव महान् बने। विद्या का तात्विक अर्थ है, बन्धनो से मुक्त रहने की शिक्षा। यदि आपका हृदय भी उक्त अर्थ को स्वीकारता हो तो, जातीयवाद, सम्प्रदायवाद, भाषा और प्रान्तीयवाद के पचडे से (व्यर्थ के झगडे से) मुक्त रह कर, विश्व-बन्धुत्व के महान् सिद्धात "वसु धैव कुटुम्बकम्" का समादर करते हुए अपना, अपनी (मानव) समाज का, देश का, राष्ट्र का, व धर्म का महान् विकास करें।

आज ता० ७-७-६४ को हमारा चातुर्मासार्थ नगर प्रवेश हुआ। नगर प्रवेश के लिये घोषणा प्रात आठ बजे की थी। तदनुसार बहुत बडी सख्या मे स्वागतार्थ नर-नारी श्री सुरजमल भीखमचद के बगले मे

उपस्थित हुए। परन्तु अकस्मात् रात्रि से ही आकाश मे घनघोर घटा ने अपना प्रभुत्व जमा दिया था और वर्षात बरसने लगी थी। अनुमान तया ६ बजे तक कुछ कुछ बू दे गिरती रही। महान् गरमी जो कई दिनो से प्राणी मात्र को पीड़ित कर रही थी वह इस वर्षांत की बूंदो के गिरने से कुछ शान्त हुई। ठीक नौ बजे वून्दो का गिरना बिलकुल बद हुआ और हमारा विहार हुआ। जलूस मुख्य मुख्य बाजारो मे होता हुआ श्री सवाई सिंह जी की पोल में पहुच कर, भव्य जुलूस ने सभा का रूप ले लिया। सर्वप्रथम प्रवर्तक श्री हीरालालजी महाराज ने मगला चरण करने के बाद प्रवचन सुनाया। उसके बाद मधुर वक्ता श्री ईश्वर मुनिजी ने और महासती विदुषी श्री कुसुमवतीजी ने तथा महासती विदुषी श्री कमलावतीजी ने "चातुर्मास क्यो ?, और उसमे हमें अपने को क्या करना है" इस विषय पर प्रकाश डाला। तदनन्तर मैंने खड़े हो कर कहा! ऐतिहासिक नगर के धर्मप्रेमी भाई और बहिनो! जोधपुर एक ऐसा धर्म प्रिय एव विचार-दक्ष क्षेत्र है कि जिसको बडे बडे महा-पुरुषो ने अपनी कृपा-दृष्टि से पुनीत किया। हमारे श्री जैन-दिवाकरजी महाराज श्री चौथमलजी म० ने भी यहा पाँच चातुर्मास किये हैं। जैन-धर्म के स्थम्भ स्वरूप छ सम्प्रदायो के प्रमुख प्रमुख महात्माओ का एकसाथ चातुर्मास होने का लाभ भी इस नगर को मिला है। इस वर्ष, श्रमण सघ के प्रवर्तक, लब्धप्रष्ठित श्री हीरालाल जी महाराज, पडित रत्न श्री मिश्रीलाल जी म०, शान्तमूर्ति, सेवाभावी श्री दीपचन्द जी म० मधुर वक्ता श्री ईश्वर मुनिजी म०, विद्या विनोदी श्री रगमुनिजी म० और एक छोटासा साधु मैं भी आपके यहा बडी बडी उमगे लेकर आया हू, वे उमगे ये हैं कि चातुर्मास मे पूर्ण सम्य का स्त्रोत वहे, जिसका कि निर्णय अपने सिद्धान्तो द्वारा श्रमण सघ ने अजमेर सम्मेलन मे किया है। विश्व वात्सल्यता का वट और धर्म ध्यान का ठाठ (आनन्द) लग जाए। श्रावक सभी अपने बारह व्रतों का बोध प्राप्त करें आदि।

यद्यपि मैं आप से और आप मेरे से अपरिचित अवश्य हैं, फिर भी साधु का परिचय उसकी करणी (क्रिया) और विज्ञान ही है जो आपके सामने है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि उल्लास भरे वातावरण मे ज्ञान, ध्यान, तपश्चर्या, व्रत आदि की आप आदर्श आराधना करेंगे।

—:चातुर्मास प्रारम्भ:—

चातुर्मास प्रारम्भ के प्रथम प्रवचन में मैंने कहा कि चातुर्मास का प्रारम्भ भीषण गर्मी के बाद होता है। वर्षाऋतु की महती कृपा पूर्ण वर्षा से पृथ्वी हरी-भरी होने के साथ साथ मानव मन भी हरा-भरा हो जाता है। वर्षाऋतु मे एक ओर मेघो द्वारा वर्षा होती है तो दूसरी ओर सन्त महात्माओ की अनुभव भरी वाणी बरसती हैं।

सन्त महात्मा तो विचरण प्रिय होते हैं। उन्हे एक जगह स्थायी रहना नही रुचता और शोभता। वे तो नये नये ग्रामो, शहरो मे विचर कर नये नये भावुक भक्तो को आत्म बोध देते है। सन्त महात्मा आठ मास अप्रतिबन्ध विचारते रहते हैं। वे चौमासे मे एक जगह स्थिरता इसलिये करते है कि वर्षाद होने पर जो सूक्ष्म और स्थूल अनेक जीवो की अभिवृद्धि होती है उनका विरधन न होने पाये और सयम की आरधना भी सम्यक प्रकार से कर सकें। विहार शब्द विशिष्ट शब्द है। विहार शब्द मे से वि हटा देते है तो वह द्वि-अर्थी शब्द हो जाता है। यथा हार, गले का हार, और हार पराजय। इसी हार शब्द के आगे यदि आ लगा दें तो वह शरीर—पोषक पदार्थों की सज्ञा वाला बन जाता है, यथा आहार। इसी हार शब्द के आगे यदि 'प्र'—उपसर्ग लगा दिया जाय तो वह घातक सज्ञा वाला 'प्रहार' शब्द बन जाता है। इसीलिये ससार से विरक्त हुए सज्जनों ने साधुत्व को धारण को स्वीकार कर अपने गमन (रमण) करने का विहार रक्खा

है। कहा भी है—

वहता पानी निर्मला, पडा गँधीला होय
साधु तो रमता भला, दाग न लागे कोय ॥१॥

अत: सन्त–सस्कृति का ध्येय, जन–जन तक पहुच कर उनको सत्य मार्ग दिखलाना है। हम भी आज जोधपुर मे हमारे व्यापार की हृदयाकर्षक बडी–बडी आशाएँ लेकर आये है, कारण कि—जोधपुर हमारे व्यापार की खरीदी करने मे सेन्टर-सा माना गया है। हमारे व्यापार मे दो वस्तुएँ अधिक महत्व अतएव मूल्य की हैं। एक तो सम्पकतया श्रावक के बारह व्रत स्वीकार करना और दूसरी यथा–शक्ति, ज्ञान–ध्यान–तप आदि की आराधना करना। मेरी आकाक्षा है कि जोधपुर शहर के इस चातुर्मास मे कम से कम चार सौ बारहव्रती श्रावक तो होने ही चाहिये और तपश्चर्या मे कम से कम पाँच सौ अट्ठाइया तो होनी ही चाहिये। मेरे इस कथन का यह अर्थ नही है कि—अन्य छोटी, मोटी तपस्याएँ न की जायें। अन्य तपस्याएँ भी अवश्य हो परन्तु अट्ठाइयें पाच सौ होना बहुत जरूरी है। इसके अलावा दया, पौषध एक महिना दो महिना आदि की यथा शक्ति तपस्या आदि भी आराधना तो तुफानी नदी की भाति हो।

—: तप और आतप :—

प्रभु की असीम अनुकम्पा से एक तरफ तो सिहपोल के समीपस्थि श्री सवाईसिहजी की पोल मे तप की आदर्श आराधना और दूसरी तरफ गरमी अपनी भयकर शक्ति द्वारा तपस्वियो को तप से विचलित करने का दुस्साहस करने लगी। ऐसी परिस्थिति मे ता० १६–८–६४ को व्याख्यान–श्रवणार्थ उपस्थित हुए विशाल जन–समूह के समक्ष खडे होकर मैंने कहा—जिस प्रकार श्रावण और भाद्रपद मास मे वर्षा

अगर न हो तो मानव–समाज दुष्काल की कल्पना करने लग जाता है, उसी प्रकार इन दोनो महीनो मे आप भी तप, दान आदि उत्तम क्रिया द्वारा यदि नही वर्षे तो जीवन के क्षेत्र मे दुष्काल पडने की सभावना है।

सज्जनो !, इतनी भयकर गरमी से आप तप्त हो रहे हैं, पसीने से आपके कपडे तर हो गये हैं। यह आतप आपकी परीक्षा ले रहा है कि आप तप को महत्त्व देते हो या भोजन को। तप और आतप का यह द्वन्द युद्ध चल रहा है, इसमे किसकी पराजय होगी, यही देखने का है। धार्मिक–ग्रन्थो के आधार से तो हमेशा तप की विजय हुई है और आतप की पराजय। रोटी–रोटी करते हुए कुत्तो की मौत मरने वाले तो बहुत है, परन्तु तपस्या की तेजोमयी अग्नि से अपने जीवन को तपा कर स्वर्ण की भाति निखरने वाले पवित्र प्राणी बहुत कम हैं। जिस प्रकार मक्खन को तपाकर विशुद्ध घी बनाते बर्तन को तपना पडता है उसी प्रकार मिश्रित जीवन को विशुद्ध बनाने के लिये शरीर को भी तपस्या–द्वारा तपाना पडता है। अत आतप से घबराकर आप तप मे विमुख न बने। आखिर विजय तप की ही होगी आतप की नही।

ता० १०–७–६४ को सुमेर उच्चतर माध्यमिक विद्यालय मे, अध्यापको, विद्यार्थियो और अन्य उपस्थित सज्जनो के समक्ष "विद्यार्थी कर्त्तव्य" इस विषय पर, मधुर व्याख्यानी श्री ईश्वरमुनिजी का तथा विदुषी महासती श्री कमलाजी का सुन्दर भाषण हुआ। तत्–पश्चात् मैंने कहा।

प्यारे विद्यार्थियो !, तुम्हारे विमल कंधो पर समाज और देश की उन्नति का बडा भारी बोझा आने वाला है, एतदर्थ तुम्हे अपने जीवन को अभी से सौरभमय और सौम्य बनाने के लिये यह शिक्षा दी जा रही है। अपने भारतीय साहित्य मे चार आश्रमो का विवेचन मिलता है। उनमे से प्रथम नम्बर ब्रह्मचर्याश्रम का है, जिसका आरभ जन्म मे है।

इस अवस्था मे शिक्षा प्राप्त करना ही तुम्हारा मुख्य कार्य है। इस आश्रम मे प्रत्येक मानव को आना ही पडता है, फिर चाहे अवतार हो, तीर्थंकर हो, पैगम्बर हो अथवा तो साधारण जीव हो। इसी आश्रम के आधार पर जीवन की इमारत का निर्माण होता है। अगर विद्यार्थी जीवन मे उच्च शिक्षा की ठोस भूमिका तैयार की गई तो फिर उस पर पूर्ण जीवन की भव्य इमारत निर्भयता के साथ खडी की जा सकती है। रेत के टीलो पर कभी भी सात–मजिला मकान नही बना है। अतः आप अपने जीवन को शिक्षा–पूर्ण शान्त एव उज्ज्वल बनाकर अधिकाधिक–रूप से देश और समाज की सेवा करेंगे, ऐसी मुझे आशा है। तत्पश्चात् श्री रगमुनिजी ने उक्त विषय को उत्तेजना देने वाला एक भजन गाया, जिसको सुनकर सभी सज्जन बहुत प्रसन्न हुए।

जेल में

ता० १२–७–६४ को सेंटर जेल मे करीब ८०० सौ कैदियो के सम्मुख प्रवचन हुए। सर्वप्रथम विदुषी महासती श्री कुसुमवतीजी ने फिर विदुषी महासती श्री कमलावतीजी ने तदनन्तर मधुर–वक्ता श्री ईश्वर मुनिजी ने कैदियो को उनकी इस प्रकार की स्थिति क्यो हुई, इस विषय पर प्रकाश डाला। फिर मैंने कहा,—मानव एक कलाकार बनकर विश्व मे आता है, वह अपनी कला का प्रयोग अपनी बुद्धि के बल (आधार) पर से करता है। यथा—दो कारीगर हैं, एक मकान बनाता है, दूसरा कूआ खोदता है। दोनो के पास लोहे के ही साधन (औजार) है। लेकिन एक कारीगर जो मकान बनाने वाला है, वह पाया तैयार कर ज्यो ही उसके निर्माण कार्य मे लगता है त्यो ही मकान के साथ स्वय भी ऊँचा उठता हुआ चला जाता है। दूसरी ओर कूआ खोदने वाला कारीगर ज्यो ज्यो खड्डा खोदता जाता है त्यो–त्यो नीचे उतरता जाता है। प्रत्येक मानव को समान रूप से तीन शक्तियें मिली

है। एक तन की, दूसरी मन की, तीसरी वाणी की। इन तीनों शक्तियों को एक साथ सदुपयोग मे लगाने पर मानव उन्नति के शिखर पर आरूढ होता है, और उक्त तीनो शक्तियो का भिन्न-भिन्न दुरुपयोग करने पर मानव अवनति के गहन गर्त्त (खड्डे) मे गिर जाता है।

प्रत्येक प्राणी का उत्थान और पतन उसके कर्माधीन है। वह जैसा कर्म करता है, वैसा ही मिलता है। नीम का पेड बोयेगा उने कटु फल मिलेगा और लता लगायेगा उसे मधुर (मीठा) फल मिलेगा। अतः अब आप सभी बन्धु, सुकृत द्वारा जीवन की ज्योति जगा कर देश और समाज की आदर्श सेवा करेंगे, ऐसी आशा के साथ मैं अपना वक्तव्य समाप्त करता हूँ।

ता० १६-७-६४ को माहेश्वरी उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में "विद्या का लक्ष्य क्या है" इस विषय पर प्रवचन हुआ। सर्व प्रथम विदुषी महासती श्री कमलाजी ने, फिर मधुर व्याख्यानी श्री ईश्वर मुनिजी ने उक्त विषय का विवेचन किया। बाद मे मैंने कहा,—

विद्या नाम नरस्य रुपमधिकं प्रच्छन्न-गुप्त धनम्।
विद्या भोगकरी यशः सुखकरी विद्या गुरुणा गुरुः॥
विद्या बन्धुजनों विदेश गमने विद्या पर दैवतम्।
विद्या राज सुपूजिता न हि धनं, विद्या विहिनः पशुः॥१॥

विना विद्या के मानव मानव नही पशु ही है, कारण की विद्या से विनय की प्राप्ति होती है, विनयी पुरुष पात्र (सुपात्र) कहलाता है। पात्रता से धन की प्राप्ति होती है। धन से धर्म करने की लालसा जागृत होती है और धर्म करने से परम सुख की प्राप्ति होती है, ऐसा नितिकारों का कथन है—

विद्या ददाति विनय, विनयाद्याति पात्रताम्।
पात्रत्वाद्धनमाप्नोति, धनाद्धर्मं ततः सुखम्॥१॥

केवल देह धारण करने से ही मानव नही कहलाता। मानव कहलाता है अपने विज्ञान के द्वारा तदनुकूल आचरण करने पर और विज्ञान की प्राप्ति विद्याध्ययन करने पर ही होती है। मानव देह धारण करके भी बिना विज्ञान के यदि उससे पाशविक कृत्य किये जा रहे हो तो उसे मानवीय रुप मे पशु ही कहा जा सकता है। सूक्ष्म दृष्टि से अवलोकन करने पर विद्या का स्वरूप मुक्ति भासता है। मुक्ति का साधारण एव सर्वमान्य अर्थ छुटकारा है। वह मुक्ति (छुटकारा) चाहे मन के खराव विचारो से हो, या तन की खराव आदतो से हो, अथवा वचन की विरोधोक्ति से हो।

आपका कर्त्तव्य सप्त व्यसनो से मुक्ति (छुटकारा) पाने का है। अत आप अपनी जिन्दगी मे शुभ-कार्य करने मे अग्रसर रहे तो आपका यह विद्याध्ययन करना सफल समझा जायगा।

ता० १८-७-६४ को गढ मे माताजी के आश्रम "योग साधना" इस विषय पर प्रवचन करते हुए मैंने कहा,– मन, वचन, काया के योग तो मानव और पशु दोनो को प्राप्त होते हैं। परन्तु मानव जब इन योगो की साधना करता है और सयमी जीवन बनाता है, तब वह योगी वनता है। भोग की साधना करते करते तो अनन्त युग एव अनन्त भव बीत गये, पर योग की साधना किसी एक भव मे एक पल भर भी यथार्थ रुप से नही कर पाये। इसी से चौरासी का चक्कर लग रहा है। योग साधना मे मन की साधना अतीव कठिन है, कारण कि मन का स्वभाव जल के प्रवाह जैसा है, जिधर ईसे ढलकाव मिला उधर ही उसका प्रवाह अति वेग से हो जाता है। जब वह भोगियो के सपर्क मे आता है तो, भोग की लहरो मे गोते लगाने लगता है, और योगियो के सपर्क मे आने पर योग की लहरो मे अलमस्त वन जाता है। मन सदा गिरगट (किरगाटियें) की तरह

अपना रग वदलता रहता है। मन की स्थिति (गति) को सुधार ने (रोकने) के लिये वैराग्यमयी अभ्यास की अति आवश्यकता रहती है। मन की साधना विशुद्ध होने पर वाणी भी मधुर वन जाती है, वाणी की मधुरता से क्रिया मे पवित्रता का सचार हो हो जाता है, अत ऐसे एकान्त के आश्रमो मे रह कर ही मानव अपने जीवन की साधना सिद्धि करने मे निर्द्वन्द ध्यान धर सकता है। यहाँ निवास करने वाले सन्त त्यागमय जीवन विताते हैं, यह जान कर मुझे अत्यन्त हर्ष हो रहा है। मेरे भाषण देने के पहले मनोहर व्याख्यानी श्री ईश्वर मुनिजी ने, विदुषी महासती श्री कुसुमवती जी ने, विदुषी महासती श्री कमलावती जी ने 'नारी कर्त्तव्य" पर ओजस्वी भाषण दिया। इस अवसर पर अनुमान के ६००, ७०० सौ भाई और वहनो की उपस्थिति थी।

ता० २१-७-६४ को सरदारपुरा रोड न० ७ पर सत्सग भवन मे "सत्सग" इस विषय पर प्रवचन हुआ। उक्त विषय पर पहले मनोहर व्याख्यानी श्री ईश्वर मुनिजी ने, सुन्दर प्रकाश डाला। तत्पश्चात मैंने कहा— सग से ही मानव जीवन मे भिन्न भिन्न प्रकार की पहेलिया उत्पन्न होती है। सग शब्द का सरल अर्थ है सगति इस सगति शब्द को अपनी आदि मे सत् शब्द का सयोग मिल जाने पर सत्सगत ऐसा शब्द वन जाता है और उसकी महानता वढ जाती है। सत्सगत और सत्सगति ये दोनो एक ही शब्द है यथा— सता सगति सत्सगति। सत् पुरुषो की सगति को सत्सगति कहते है। इसीलिए नीतिकारो ने इसकी महानता का विवेचन करते हुए कहा है कि—

जाड्य धियो हरति. सिचति वाचि सत्यम्,
मानोन्नति दिशति पापमपा करोति ॥
चेत. प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिम्,
सत्सगति कथय किन करोति पुसाम ॥१॥

जो लोग पारस और सत्सगति की तुलना एकसी करते हैं वे भूल करते हैं। कारण कि पारस तो लोहे को स्वर्ण ही बनाता है, पारस नही बनाता, परन्तु सत्सगति तो जीव मे शिव बना देती है।

विचारशील पुरुषो का यह कथन सर्वथा सत्य ही है कि–"सगतसार असार फल"। यथा दूध और फीटकडी की सगत होने पर दूध फट जाता है, परन्तु दूध को यदि मिश्री की सगति मिल जाय तो उसमे मीठापन आ जाता है। यही स्थिति जीवन की है। व्यसनी की सगत से मानव व्यसनी बनता है और सज्जन की सगत से सज्जन बनता है।

सगत का असर (दोष) केवल प्राणी पर ही नही लगता, यह तो पदार्थ पर भी लग जाता है। यथा—हीरा कितना मजबूत (कठोर) होता है कि—तोडने पर भी बडी मुश्किलता से टूटता है। परन्तु उस पर यदि खटमल हाग दे, तो उसकी तुरन्त ही मौलिकता नष्ट-भ्रष्ट (छिन्न-भिन्न) हो जाती है। हरे नारियल के थैले को चावलो के पास रखने पर नारियल सड जाते हैं, खराब हो जाते हैं। कस्तूरी जो सौ रुपये की तोला भर बडी मुश्किलता से मिलती है, वह भी हीग का साथ पा कर सुगन्धी शून्य हो जाती है। कहने का तात्पर्य यह है कि—मानव मानव के सम्पर्क मे आने के पहले उसकी प्रकृति का भी परिचय करलें, अन्यथा विकास के बदले विनाश की ओर चला जाता है।

इस भवन का नाम "सत्सग–भवन" है अर्थात् सन्तो (सज्जनों) का भवन। इसमे आकर अगर सन्त–प्रकृति को प्राप्त की, तो हमेशा शान्ति और मधुरता एव उदारता जीवन मे से प्राप्त होती रहेगी।

दिनाक १–८–१९६४ को गवर्नमेन्ट महात्मा गान्धी हायर सेकेण्डरी स्कूल में प्रवचन करते हुए मैंने कहा कि—

आज आपन एक ऐसी स्कूल मे हैं कि—जिसके आगे "महात्मा गान्धी" शब्द लगा हुआ है। महात्माजी के नाम का उच्चारण करते ही उनके जीवन सम्बन्धी घटनाओ का चल-चित्र अपने आप सामने आ जाता है। गान्धीजी ने देश-वासियो के तन और मन दोनो को शुद्ध करने के लिये अपना सर्वस्व बलि-वेदी पर चढा दिया। ऐश-आराम को ठोकर मारी, लगोटी धारी बने और परतन्त्रता की निन्द्रा मे निमग्न हुए मनुष्यो को स्वतन्त्रता का सिद्धान्त समझा कर सजग किया। महात्माजी ने शत्रु और मित्र की कल्पना कभी नही की, कारण कि—शत्रु और मित्र दोनो हमारे अन्दर ही है, बाहर नही हैं। अत हृदयस्थ काम, क्रोधादि शत्रुओ पर विजय पाना, विश्व पर विजय पाना है। आप भी उन्हीं महात्माजी के नाम की स्कूल मे अपने जीवन को बनाने के लिये शिक्षा ले रहे हैं। लेकिन सिर्फ शिक्षा लेने मात्र से जीवन बनने वाला नहीं है, जीवन बनता है— उसकी कही हुई शिक्षा को हृदयगम करके तदनुसार आचरण करने पर। आप यदि सत्य और प्रामाणिकता को अपना साथी बनाकर जीवन को समुज्ज्वल बनाने के लिये प्रणधारी बनेंगे और देश जो बौद्धिक परतन्त्रता की जजीर से अभी भी बन्धा हुआ है, उसे उस परतन्त्रता की जजीर से मुक्त करने की प्रतिज्ञा लेकर इस विद्यालय से निकलेंगे, तो ही आपका, यहाँ का अध्ययन यथार्थ मे सफल हुआ समझा जाएगा।

दिनाक ५-८-६४ को प्रताप सेकेण्डरी हाई स्कूल के विद्यार्थियों को शुभ-सन्देश देते हुए मैंने कहा कि—भारत देश वीरो का देश है, कायरो का नही। लेकिन वीर किसको कहते है, इसे भी भलीभाँति समझ लेना चाहिये। वीर वह नही है, जो अपनी स्वार्थ-लालसा की पूर्ति के लिये बिना अपराधी व्यक्तियो का रक्त बहा दे। वह तो राक्षस है, वीर मानव नहीं। यद्यपि, मानव, सिंह आदि हिंसक पशुओं को खतरनाक मानता है। परन्तु सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय, तो इनमे

अधिक खतरनाक और क्रूर मानव है। वे (हिंसक) पशु तो अपने पेट की पीड़ा (ज्वाला) मिटाने के लिये एक दिन मे एक या दो पशुओ को ही मारते होगे। पेट भरने पर विश्राम ले लेते हैं, परन्तु मानव ऐसा क्रूर और खतरनाक है कि—पेट भर जाने पर भी अपने स्वार्थ की पेटी (दुराशा-मन्जूषा) को भरने के लिये करोडो की कत्ले आम कर देता है। अपने व्यक्तिगत स्वार्थ को समाज के ऊपर लाद कर उस (समाज) को भी युद्ध की धुधकती हुई ज्वाला मे धकेल कर स्वय भी परेशान बनता है और समाज को भी परेशानी की चक्की मे पिसाता है। पशु तो सिर्फ अपने शरीर-बल से ही किसी का नाश करता है। परन्तु मानव इतना क्रूर है कि—वह कलम और तलवार आदि पराश्रय के बल पर अपना और अपने समाज का विनाश कर देता है। अत ऐसे दुष्कृत्य करने वाला मनुष्य वीर नही कहलाता। वीर तो वह कहलाता है कि—जो परोपकारार्थ अपने स्वार्थ की होली कर देता है। अपनी रोटी अन्य दूसरे भूखे प्राणी को दे देता है। अपनी शक्ति द्वारा दीन-दुखियो का रक्षण करता है। तथा अपनी आत्मा को धैर्य, क्षमा, सहनशीलता, भ्रातृवत्सलता आदि सद्‌गुणो से परिवेष्टित करके स्वय सुखी बनता है और अन्य को भी सुखी बनाता है।

आप भी उसी वीर भारत के लाल हैं। अत इस स्कूल मे से विद्याध्ययन समाप्त करने के बाद जब व्यावहारिक क्षेत्र मे प्रवेश करें, तब यहाँ से पाई हुई सद्‌शिक्षा की ओर ध्यान रख कर देश, राष्ट्र, समाज और धर्म की सेवा करके अपने पूर्वजो के समान सच्चे वीर बनें। यही आपको मेरा शुभ-सन्देश है।

ता० ८-८-६४ को गर्ल्स हायर सेकण्ड्री स्कूल, जालोरी गेट में प्रवचन हुआ। अध्यापकवर्ग को तथा बालिकाओ को सम्बोधित करके मैंने कहा—आज आपके बीच उपस्थित होकर मुझे अपने अभिप्राय

व्यक्त करने का मौका मिला, इससे अत्यन्त हर्ष हो रहा है। धार्मिक और व्यावहारिक इन दोनो दृष्टियो मे सम्यक्तया देखने पर बालको की अपेक्षा बालिकाओ का कार्य-क्षेत्र बहुत अधिक विस्तृत दिखाई देता है। बालक, धर्म, राष्ट्र, देश एव समाज की जितनी सेवा कर सकता है उससे दुगुनी सेवा बालिकाए कर सकती है। एक कवि ने ठीक ही कहा है कि—

लडके से लडकी भली, जो गुणवन्ती होय।
वह उजवाले एक कुल, वो उजवाले दोय ॥१॥

लडका, सुशिक्षित और सदाचारी हुआ तो वह केवल अपने कुल को ही रोशन कर सकता है, परन्तु सीता सती-सी बालिका होने पर अपने पिता–पक्ष और श्वसुर–पक्ष इन दोनो पक्षो (कुलो) को उज्ज्वल बना देती है। अभी से ही यदि आप (बालिकाएँ) सुन्दर संस्कारो से सज्जित होकर, अपने जीवन को बनाने का प्रयत्न करती रहे, तो वह भविष्य मे अवश्य ही अति–उत्तम तीन स्थितियो को प्राप्त कर सकती है। प्रथम–स्थिति मे आदर्श कन्या का रूप धारण कर समाज के सामने आएँगी। द्वितीय–स्थिति मे तरुणावस्था (यौवना) मे आदर्श गृहणी का पद पायेंगी। तृतीय–स्थिति मे अपनी सन्तान को महान् बनाने मे योगदान देने के कारण आदर्श-माता का पद प्राप्त कर सकेंगी। गफलत का वह जमाना लद गया है, जब कि लडकी के लिये माता-पिता यो समझते थे और कहा करते थे कि—"लडकी को पढा कर क्या करना और कराना है।" उसे तो अपना सादा जीवन घर की चार दीवारो मे रह कर ही बिताना है। खाना पका कर अपने कुटुम्ब को खिला दे, बाल–बच्चो का लालन–पालन कर उनकी शादी–विवाह करदे बस यही उसका कार्य–क्षेत्र है। लेकिन ये सडे–गले विचार आज के विकसित हुए युग मे कामयाब नही होने के कारण चल नही सकते। आज तो अन्येक का कार्य–क्षेत्र बहुत विस्तृत हो गया है। समाज मे व्यापार

बढा, पढाई बढी, जीवन—यापन के साधन बढे, देश की सीमा बढी और धर्म का प्रचार भी बढ़ा। ऐसी परिस्थिति मे निरक्षर भट्टाचार्य कभी भी सफलता प्राप्त नही कर सकता। इसलिये आप (बालिकाएँ) अपने जीवन मे, मेरे कथनानुसार इन तीन गुणो को तो अवश्य स्थान दें। सर्व प्रथम नम्रता, विनय और प्रेम। दूसरा नारी की आदर्श लज्जा। तीसरा निडरपना अर्थात् दिल के किसी भी कोने मे डरपोकपना नहीं रहे। इन तीनो का विकास बाल्यावस्था से ही होते रहने पर भविष्य के जीवन मे इनके सुन्दर अति मधुर फल चखने का सुअवसर मिलता रहेगा।

निडरपने का यह अर्थ नहीं है कि—स्वच्छन्दता धारण करके हर एक से लडती रहे, दगा–फिसाद करती रहें। निडरपने का अर्थ यह है कि—आप अपने जीवन को ऐसा विशुद्ध बनायें कि—कोई भी आपको दबा न सके अथवा तो अपनी ऐब (कुत्सित करणी) की वजह से किसी के सामने नीचे देखना न पडे। आप अपने जीवन को सुन्दर बनायेंगी। तो वह आपके लिये भी सुखदायी है और देश, धर्म तथा समाज के लिये भी सुखदायी है। आशा है, आप मेरे विचारो को अपने विचारो के साथ तुलना करके जीवन को आदर्श बनायेंगी। मधुर वक्ता श्री ईश्वरमुनिजी और विदुषी महासती श्री कमलावती जी ने भी अपने भाषण मे मेरे कथन का समर्थन किया।

दिनाक १०—८—६४ को ह्यूसन गर्ल्स हाई स्कूल मे तथा दिनाक १४–८–६४ को राजमहल गर्ल्स हाई स्कूल में मेरा प्रवचन हुआ। बालिकाओ, अध्यापिकाओ और अन्य उपस्थित सैकडो महिलाओं तथा अध्यापकों को सम्बोधित करते हुए मैंने कहा कि—आज व्यावहारिक ज्ञान की अभिवृद्धि करने के लिये तो मानव–समाज खूब प्रगति कर रहा है और आध्यात्मिक ज्ञान की उपेक्षा कर रहा है। यह प्रगति देश, धर्म और समाज की उन्नति करने के बजाय अवनति कर रही है।

इस प्रगति को मोड देकर, देशवासियो को अपने कर्त्तव्य-पथ पर आरूढ करने की जिम्मेदारी सुशिक्षित आप बालिकाओ पर अधिक है। कारण कि—आप (बालिकाओ) का सम्बन्ध कई दृष्टिकोणो से समाज, देश और धर्म के साथ ज्यादा है। आप अभी से अपनी सहेलियो मे प्रेम और शुद्ध-आचरण का प्रचार-प्रसार करें तथा ससुराल मे जाये तव वहाँ पर ऐसा व्यवस्थित शान्त-वातावरण फैलाएँ कि सोने मे सुगन्ध का-सा कार्य बन जाए। सन्तान की प्राप्ति होने पर उसको सती मन्दालसा की भाँति महान् सस्कारी बनायें। सन्तानो मे जितनी शुद्ध सस्कारो की मजबूताई होगी, उतनी मजबूताई वश-परम्परा मे भी आयेगी। अत आप (बालिकाएँ) अभी से ही अपने जीवन का एक ऐसा निर्माण करें कि—जिसके द्वारा देश, धर्म एव समाज की उन्नति मे रोडा अटकाने वाले दुर्व्यवहार दूर हो जायँ, दूर भाग जायँ। उक्त प्रकार का जीवन-निर्माण करने मे निम्नलिखित तत्त्वो की अत्यन्त आवश्यकता रहती है। दया, प्रेम, परोपकार, सेवा-भाव, शान्ति, सयम। इन्हीके आधार पर नारी अपना समानाधिकार भी प्राप्त कर सकती है।

आज नारी-समाज समानाधिकार प्राप्त करने के लिये माँग करता है। किन्तु उन्हे यह निश्चय ही सोच लेना (निर्णय कर लेना) चाहिए कि—समान अधिकार माँगने से नही मिलता। वह तो उसके योग्य बनने पर स्वय प्राप्त हो जाता है। यह कोई भिक्षा नहीं है, जो मागने से मिल जाय। अत आप (उपस्थित महिलाएँ और बालिकाएँ) अपने जीवन को परख कर, उसे सुव्यवस्थित बना कर, देश-समाज की सेवा करके अपने कर्त्तव्यो को अदा करेगी। ऐसी मुझे पूर्ण आशा है।

दिनाक १६-८-६४ को शान्तिपुरा, उम्मेद मन्दिर, माधवमलजी सिंघवी के विशाल-प्रागण में जैन-नवयुवकों के प्रति-आग्रह से मध्याह्न

(दुपहर) को मेरा प्रवचन हुआ। प्रवचन का विषय था—"जीवन की सध्या"। उक्त विषय का विवेचन करते हुए मैंने कहा कि—मनुष्य जब से जन्मा, तब से लेकर जीवन की आखिरी तक सुख की प्राप्ति के लिये पचता रहा, फिर भी वह रोटी और कपडे के अलावा वास्तविक सुख मरते दम तक प्राप्त न कर सका। तो उसका यही अर्थ हुआ कि—माया के चक्कर मे फँस कर अपना चरम—लक्ष्य जो मुक्ति प्राप्त करना है, उसे भूल कर, घाणी के बैल की तरह श्रम और समय यो ही (वृथा ही) बरबाद किया। जिस प्रकार बैल आठ घण्टे घाणी के चक्कर लगाता रहा और तेली ने उसे एक टुकडा खल का खिला दिया तब बैल ने समझ लिया कि—मेरे श्रम का पूर्ण फल मिल गया। यही स्थिति प्राय ससार की माया मे अलमस्त बने मनुष्यो की है। जिदगी भर पचते रहे और आखिर मिला क्या ? — दो गज कफन। हाँ, तो हमारा पुरुषार्थ खूब होते हुए भी हमे इच्छित शान्ति क्यो नही मिल रही है, इसके लिए जरा सोचना होगा। एक कवि अपनी मेवाडी भाषा मे कहता है कि—

दीं आथ्यो थाका बलद , क्यारो न पायो एक ॥
बिच में क्यारो फूटगो , हियो फूटो वह देख ॥१॥

एक किसान सूर्योदय होते ही बैल और चडस लेकर अपने खेत मे पहुचा। खेत मे क्यारे पहले से किये हुए थे ही। चडस चलाना शुरू किया। सुबह से शाम होने आई। इतने मे एक पथिक उधर आ गुजरा, वह प्यासा था इसलिये पानी पीने लगा। पानी पीते पीते पथिक की दृष्टि उस फूटे हुए क्यारे पर पडी। उसने देखा कि पानी खेत के क्यारो मे नहीं जाकर दूसरी ओर फिजूल पडी हुई जमी पर जा रहा है और खेत के क्यारे जिनमे कि अनाज या सब्जी बोये हुए हैं वे बिलकुल सूखे पडे हैं। तब उसने किसान को आवाज देकर कहा। अरे भैया ! तू

आँखमूद कर वृथा श्रम क्यो कर रहा है, जरा श्रम से मिलने वाले फल की ओर तो ध्यान दे। देख तेरा खेत सारा सूखा पडा है और पानी दूसरी ओर जा रहा है। दिन भर श्रम किया, बैल को परेशान किया फिर भी धान अथवा सब्जी के क्यारो मे एक बून्द पानी नही पहुचा, तो यह श्रम किस काम का।

प्राय यही स्थिति संसारी-प्राणियो की है। वे दिन रात श्रम करते-करते वृद्ध होगये, पैर थक गये, शरीर लथडाने लगा फिर भी उनकी आखे नही खुलती है और नही यह विचार उत्पन्न होता है कि-इतना श्रम करने पर भी खेत स्वरूपी हमारे हृदय का कोई भी कोण (क्यारा) शान्ति रूपी पानी मे गीला हुआ है या नही। इसीलिए सन्त-महात्मा पुकार-पुकार कर कहा करते हैं कि—ए भव्य-प्राणियो! कुछ आंख खोल कर, विवेक जागृत कर देखो, तुम्हारी शान्ति का प्रवाह, ईर्षा, द्वेष, काम-क्रोधादि की ओर जो जा रहा है उसे उधर जाने से रोक कर आत्मा की ओर अन्तर्मुखी बनाओ। तभी तुम्हे शास्वत शान्ति प्राप्त होगी।

ता० २१-८-६४ को थियोसोफिकल सोसायटी विद्याश्रम बसन्त जोधपुर की ओर से उस संस्था की स्थापना के उपलक्ष मे बुलाये गये सर्व-धर्म सम्मेलन मे भाषण देते हुए मैंने कहा—वैसे तो विश्व मे जितने व्यक्ति हैं उतने ही मत (धर्म) हैं। परन्तु शास्त्रो के आधार पर तो दो धर्म (मत) ही विश्व मे मुख्य हैं। एक जड-धर्म और दूसरा चेतन-धर्म। एक भौतिक पदार्थो का धर्म और दूसरा आत्मा का शुद्ध स्वरूप निरजन-निराकार अवस्था का धर्म। इन्ही दो धर्मो का संघर्ष अनादि काल से मानव-मन मे चल रहा है। लेकिन मानव अभी तक यह निर्णय नहीं कर पाया है कि, इन दोनो धर्मों मे से कौनसा धर्म हमारे लिए उपयोगी अथवा ग्राह्य है। इन दोनो धर्मों को लेकर, [illegible] प्रकट या उसके दो भाग [illegible]) हो गये।

एक टुकडे का नाम विज्ञान और दूसरे का नाम है सन्त। दोनो अपनी-अपनी मान्यता को लेकर परस्पर मे द्वन्द युद्ध कर रहे हैं, भयकर विद्रोह फैला रह हे। यदि वे इस वात को समझ जाए कि, जीवन रूपी रथ के ये दो पहिये (चक्के) हैं। एक पहिये का नाम विज्ञान है और दूसरे पहिये का नाम सन्त। इन दोनो की सुदृढता तथा समानता पर ही जीवन रूपी रथ चलता है। विज्ञान हमे शरीर के साधनो को प्रदान करता है। अगर खाने-पीने की वस्तुएँ और बीमार होने पर उसके लिए औषधोपचार के साधन विज्ञान न दे तो शरीर स्वस्थ नही रह सकेगा। शरीर के अशक्त रहने पर उसमे रही हुए आत्मा की क्या स्थिति (हालत) होगी। फूटे बरतन मे दूध भरने से जो दूध की हालत होती है वही हालत शरीर के अशक्त रहने पर उसमे रही हुए आत्मा की होगी। अत जड-पदार्थो के सहयोग से आत्मा को अपनी साधना करनी है तो, अशक्त हुए जड-पदार्थ शरीर को, जड-पदार्थ दवाइया वगैरह अवश्य देनी होगी और वे दवाइया वैज्ञानिको के द्वारा ही उपलब्ध होगी।

दूसरी तरफ, यदि हम शरीर ही शरीर को सुसज्जित करने में, उसको ही सम्भारने मे रह जायँ और शरीर जिसके द्वारा गतिमान है उस शक्ति की तरफ कुछ भी ध्यान न दें तो, हमारी शक्ति का विकास होगा। हाँ तो, आत्मा को जिस प्रकार शरीर की जरूरत है, शरीर से रहित आत्मा कुछ भी नहीं कर सकती वह तो पगु है। उसी प्रकार आत्मा के विना निष्प्राण शरीर भी शव है, अत वह भी क्या कर सकता है। इसलिये शरीर को आत्मा की और आत्मा को शरीर की अतीव आवश्यकता है। इन दोनो के एकसाथ प्रेम-पूर्वक रहने के साधन भिन्न-भिन्न सस्था से मिलते हैं और वे हमे बलात् लेने ही पडते हैं। यथा-शरीर को स्वच्छ और सुदृढ वनाकर चलाने के लिये वैज्ञानिको से और आत्मा को समुज्ज्वल वनाने के लिये सन्त-सस्था से

उपयोगी सामान लेना ही पड़ता है। अत ये दोनो संस्थाएँ एक दूसरे की पूरक है, एक दूसरे की अपूर्णता को पूर्ण करने वाली है, इसलिये इन दोनो का पारस्परिक घनिष्ठ सम्बन्ध है। कल्याणकारी जीवन बनाने की सद्भावना रखने वाले प्राणी के हृदय-मन्दिर मे इन दोनो का बहुत बड़ा महत्त्व है एतदर्थ दोनो को समादर देने की अतीव आवश्यकता है। सन्तो के लिये भी भगवान ने फरमाया है कि—छ कारणो से आहार करना और छ कारणो से तप करना। अर्थात् हे भिक्खु! खाते-पीते तुम्हारी चेतना से यह प्रेरणा मिले कि—मुझे तप करना बहुत जरूरी है तो तप करना और तपस्या करते-करते यदि तुम्हें तुम्हारी चेतना मे यह प्रेरणा मिले कि—मुझे अब तपस्या की पूर्ति के लिये पारणा (आहार) करना है तो तुम आहार करना। इस प्रकार दोनो धर्मो का समन्वय करके हम अपने जीवन को महान् बनावेंगे, यही सर्व धर्मो का सार है।

ता० २१-८-६४ को श्री उम्मेद हाई स्कूल में 'श्री कृष्ण जन्माष्टमी का महोत्सव क्यो मनाया जाता है' इस विषय का विवेचन करते हुए मैंने कहा, श्रीकृष्ण का जन्म आज के दिन हुआ था। किसी भी व्यक्ति विशेष की जन्म-जयन्ति हम इसलिये मनाते हैं कि—उन्होने विश्व में आकर काम किया। वे केवल खा-पीकर, ससार के विनश्वर अतएव क्षणभगुर ऐशो-आराम में अलमस्त बनकर पशु की भाँति साढे तीन मन की देह का भार उठाते हुए भारवाही के रूप मे ही मिट्टी में नहीं मिल गये। कर्मयोगी श्रीकृष्ण का जन्म जब हुआ था, तब राजनैतिक, सामाजिक परिस्थितियाँ बहुत बिगडी हुई थी। राज्यसत्ता के मद को पीकर मदोमत्त बना हुआ कस अपने पिता को पिंजरे में बन्द किये हुए था। जरासन्ध सम्पदा प्राप्त करने के लिये भूखे बाघ की तरह जनता का रक्त पी रहा था। शिशुपाल विकारी बनकर के ससार में पापान्ध फैलाये हुए था। सामाजिक परिस्थिति में मानव के

पास गाये थी, पशु-धन था, किन्तु उसकी तरफ कुछ भी उसका ध्यान नही था। स्त्रियें अपनी लाज, मर्यादा को तिलाञ्जली देकर आम रास्तो पर नग्न होकर तालाओ, कुण्डो आदि मे स्नान करती थी। मानव अपने श्रम (उद्योग) को छोडकर, देवी-देवताओ के आशीर्वाद (वरदान) द्वारा सुख प्राप्ति की मिथ्याभिलाषा मे मग्न हुए इन्द्र-महोत्सव मनाया करता था। वसुदेवजी को नजर-वन्द कर रक्खा था। देवकी जी के हाथो मे हथकड़िये और पैरो मे वेड़ियें डाल रखी थी। इस प्रकार की विकट परिस्थिति मे कर्मयोगी श्री कृष्ण का जन्म हुआ।

श्री कृष्ण का अर्थ है योगियो के हृदय को आकर्षित करने वाला। जन्म लेते ही उन्होने माता के वन्धन तोडे और स्वय वन्धन-मुक्त हुए, अर्थात् वसुदेवजी गोकुल मे श्रीकृष्ण को रख आये। बडे होने पर कालिन्द्री मे जो कालीनाग भयकरता फैलाये हुए था, उसको वश में किया। श्री नन्द आदि अहीरो से कहा कि—देवी-देवताओ से वरदान मागने से वरदान मिलने वाले नही है, अत जो देवी, देवता तुम्हारे घर पर ही गाय और बैल के रूप मे हैं उनकी सेवा करो। गाय, माता के समान बनकर तुम्हे दूध पिलायेगी, जिससे तुम्हारे शरीर का पोषण होगा। बैलो द्वारा खेती वगैरह करो, ताकि खाद्यान्न स्थिति सुदृढ वन वन जाये। इन पशुओ का गोवर जिसको बेकार मानकर तुम फेंक देते हो, उसका प्रयोग खेतो मे डालकर उपज बढाओ, यही सुखी होने के वरदान हैं। नग्न होकर आम रास्तो पर आये हुए तालाबो और कुण्डो मे स्नान करने वाली स्त्रियो को उनके कर्त्तव्य का भान कराने के हेतु वस्त्र-हरण कर कदव पर जा बैठे और उनमे (स्त्रियो) प्रतिज्ञाएँ करवाई की आइन्दा से हम ऐसे मर्यादा-हीन कुत्सित कार्य नही करेगी। कस का मान-मर्दन कर, जरासध की शान ठिकाने लाकर, शिशुपाल को परास्त कर, उनको अपने कर्त्तव्यो का भान कराया। इस प्रकार के सत्कार्यों से ओत-प्रोत हुई श्रीकृष्ण की व्यवहारिक जीवनी

तो बहुत बडी है, किन्तु सार रूप मे यत्किंचित् दिखलाई गई है जो बाह्य (बाहिर की) दृष्टि से सर्व-विदित है। परन्तु आभ्यन्तर दृष्टि द्वारा देखने योग्य उनका कर्म-योग अनूठा है। यथा—शिशुपाल रूपी विकार, कंस रूपी नराधमता, जरासन्ध रूपी सत्ता और सम्पति की लोलुपता आदि भयकर विद्रोही अपने हृदय मे घर कर बैठे है, उनको भगाने के लिये श्रीकृष्ण के कर्मयोग को और भगवान् महावीर के त्रिवेणी स्वरूप तीन सिद्धान्तो (अहिंसा, अपरिग्रह, अनेकान्तवाद) को अपने जीवन मे स्थान देना होगा। इन्ही सिद्धान्तों की सहायता से हृदय की पाशविक दुर्वत्तियाँ दूर भगेगी। अराजकता का खातमा हो जायगा। महापुरुषो की जन्म-जयन्तियें मनाने का मुख्य कारण यही है कि—उनकी जीवनी सुनकर सुपुप्त हुई हमारी शुद्ध-शक्तिया जाग्रत हो जाय और हम भी अपने कर्त्तव्यो के आधार पर तदनुकूल जीवन यापन करना सीखें।

तपस्विनी महासती श्री सुगनकंवरजी की डाक्टरी परीक्षा

ता० ८-६-६४ को व्याख्यान समाप्त होने पर १२ बजे श्री बरकतुल्लाखा मा० स्वास्थ्य मन्त्री राजस्थान, श्री लक्ष्मणसिंहजी अध्यक्ष म्यु० कमेटी जोधपुर, डाक्टर श्री चटर्जी एक्स पी० एम० ओ० म० गा० जोधपुर, डॉक्टर श्री ऋषि पी० एम० ओ० म० गा० जोधपुर, पार्श्वों के विशेषज्ञ डॉ० श्री हाथी, श्रीपालजी सिघवी भूदान-कार्यकर्त्ता, श्री सूरजमालजी आमोपा, सदस्य म्यु० कमेटी जोधपुर, श्री लोगमलजी सिघवी, सदस्य म्यु० कमेटी जोधपुर, श्री तारकप्रसादजी व्यास, श्री मरुधीचन्दजी मुराणा आदि महानुभाव शास्त्रज्ञ, प्रवर्त्तक श्री हीरालालजी महाराज आदि सन्तो के दर्शनार्थ आये। उस समय मैंने उनको कहा कि—आपके यहाँ जोधपुर मे चातुर्मास करने के लिये जैन साध्वी श्री सुगनकंवरजी आये हुए है। इन्होने आत्म-शुद्धि के लिये केवल गर्म पानी के आधार पर छप्पन दिन का कठोर तप किया है, जिनकी पूर्ति

ता० २३-६-६४ को है। अत उस रोज यहा के कतलखाने के जीवो को अभयदान मिले, ऐसी मेरी सद्भावना है। यह सुनकर श्री लक्ष्मणसिंहजी और तारकप्रसादजी व्यास आदि ने कहा कि—आपकी सद्भावना अवश्य सफल होगी। फिर स्वास्थ्य मन्त्रीजी आदि सभी सज्जन बोले कि—तपस्विनीजी म० कहाँ विराजते हैं, उन्हो के दर्शन करने की हमारी हार्दिक इच्छा है। मैंने कहा—खूंटा की पोल मे। वे सभी सद्गृहस्थ खूंटा की पोल मे गये और तपस्विनीजी के दर्शन कर बडे प्रभावित हुए और परस्पर मे यो कहने लगे कि—इनका स्वास्थ्य बहुत अच्छा है, आत्म-बल बहुत मजबूत है, केवल शारीरिक शक्ति कमजोर है।

तारीख ८-६-६४ को मैंने जाहिर मे अपना केश-लोचन किया। केश-लोचन को देखने के लिये करीब आठ हजार के जनता की उपस्थिति थी। केश-लोचन के बाद भाषण देते हुए मैंने कहा—आज के जमाने मे जिधर भी देखो उधर भ्रष्टाचार अधिक बढा हुआ दिखाई देता है। इस भ्रष्टाचार को फैलानेवाला कौन? यह विचारणीय प्रश्न है। भ्रष्टाचार के अनेक अर्थ होते हैं। सामूहिक अर्थ अगर करें तो उसका अर्थ होता है अपने आचरणो से गिर जाना। कर्मयोगी श्रीकृष्ण ने "स्वधर्मे निधन श्रेय" ऐसा जो कहा है वहाँ स्वधर्म का अर्थ सदाचरण है, उन्हो का आदेश है कि स्वधर्म-सदाचरण-सत्कर्त्तव्य पालन करते हुए यदि निधन (मरण) भी हो जाय तो अति श्रेयस्कर है।

आजकल भ्रष्टाचार का अर्थ किया जाता है रिश्वत लेना, घूंस लेना। रिश्वत लेनेवाला तो रिश्वत लेता है, परन्तु देनेवाला क्यों देता। मेरे दृष्टि मे कहूँ या विचारशीलो की दृष्टि मे रिश्वत लेने वालों की बजाय रिश्वत देनेवाला अधिक दोषी है। कारण कि—देनेवाला

अनर्थकारी कार्य करने की वृत्ति को प्रोत्साहन देता है। इस भ्रष्टाचार का विनाश जनता कर सकती है, यदि वह अपने व्यर्थ के स्वार्थों को तिलाञ्जली देकर देशोन्नति के तथा समाजोन्नति के कार्यों मे दत्तचित्त हो जाय तो।

हाँ, यह तो व्यावहारिक (वाह्य) भ्रष्टाचार की वात हुई। यह भ्रष्टाचार इतना भयकर नही है जितना कि अन्तर का भ्रष्टाचार। क्रोध लोभ और विकार, ये जीवन के जहरीले अणु हैं। ये जीवन में सर्व प्रथम सूक्ष्म रूप से प्रवेश करते हैं। तदनन्तर ज्यो-ज्यो इनको जीवन में फैलने का अवसर मिलता रहता है त्यो-त्यो ये अपना साम्राज्य वढाते जाते हैं। आखिर मे वे इतना मजबूत अपना अधिकार जमा लेते हैं कि यदि इनको हम निकालना चाहें तो भी वे नही निकलते और उल्टे हम उनके आधीन हो जाते हैं। फिर हमारी इच्छा के विरुद्ध तनिक भी वर्ताव किसी की ओर से हो जाय तो चाहे फिर वह मित्र भी क्यो न हो, हमारी आंखो मे खटकने लग जाता है। इसीलिये शास्त्रकारो ने कहा है कि—"कोहो पीई पणासेई" अर्थात् क्रोध प्रीति का नाश करता है—एक हृदय के दो टुकडे कर देता है।

लोभ, मानव-मन को कलकित कर देता है। किसी भी वस्तु को देखकर मन ललचा जाता है और उसे प्राप्त करने के लिये रात-दिन एक कर देता है। आकाश का तो कभी किनारा भी आ सकता है, परन्तु लोभ की तुफानी वृत्तियो का अन्त नही आता। जिस प्रकार क्रोध को नाश करने के लिये मगज को शान्त रखना चाहिये, उसी प्रकार लोभ का उपशम करने के लिये सतोष को धारण करना चाहिये। कविसम्राट श्री सुन्दरदास ने लोभ की तुफानी वृत्तियो का और साथ में ही उनके दमन करने का कैसा सुन्दर विवेचन किया है।

सवैया

जो दस, बीस, पचास भये शत होय हजार तो लाख मँगेगी।
कोटि, अरब; खरब भये पृथ्विवि-पति होन की चाह जगेगी।
स्वर्ग, पताल को राज मिले तृसना यह अग्र हि अग्र पगेगी।
सुन्दर एक संतोष बिना शठ तेरि तो भूख कदे न भगेगी ॥१॥

विकार, जीवन की स्वाभाविक दशा को विकृत कर देता है। विषयोन्मत्त (विषयान्ध) बनकर पागल कुत्ते की भाँति लाज-मर्यादा का भग कर वह निर्लज्ज बन जाता है। विष और विषय मे बहुत बडा अन्तर है। विष तो खाने से मरता है, पर विषय तो स्मरण (याद) करने मात्र से बेभान कर देता है। इसका विनाश आत्मा के अविकारी स्वरूप का चिन्तन करने से होता है।

व्याधि से व्यथित हुआ मानव जब मृत्यु-शैय्या पर सोता है और गले मे कफ गडगडा ने लगता है, कुछ अन्ट-सन्ट बोलने लगता है तब हम मान लेते हैं कि—इसकी मृत्यु का घटा बज रहा है। सन्निपात की उत्पत्ति कफ, पित्त और वात् के मिश्रण से होती है। इसी प्रकार जीवन की स्थिति है। क्रोध, लोभ और विकार जब जीवन में प्रचण्ड तुफान मचाते हैं तब जीवन का सन्निपात गिना जाता है। उसके लक्षण हैं—मर्यादा, नीति आदि से विरुद्ध उच्चारण एव आचरण। इन लक्षणों द्वारा हम जान जाते हैं कि—इसके जीवन की शुद्धता समाप्त हो चुकी है, इसके सद्गुणो का मृत्यु-घटा बजने लग गया है। ऐसे भ्रष्टाचारी जीवन से देश, राष्ट्र, समाज और धर्म की क्षति होती है। अत ऐसे भ्रष्टाचार का अविलम्ब विनाश करके अपनी व्यावहारिकता और आध्यात्मिकता की सुरक्षा करनी चाहिये।

तारीख १०-६-६४ को सावत्सरिक पर्व-पर्यूषण के विषय में भाषण देते हुए मैंने कहा—आज आत्म-निरीक्षण दिवस है। आत्मा



दिनांक १०-९-६४ को सिंहपोल, जोधपुर संवत्सरी पर्व पर प्रवचन देते हुए तपस्वी मुनि श्री लाभचन्दजी म०



दिनाक १०-९-६४ को सवत्सरी पर्व के आयोजन पर सिंहपोल मे जनता की उपस्थिति का प्रथम दृश्य



दिनाक १०-९-६४ सिहपोल जोधपुर मे सवत्सरी पर्व पर जनता की उपस्थिति का दूसरा दृश्य.



दिनाक २०-६ ६४ को सिहपोल जोधपुर मे युवक सम्मेलन मे भाषण देते हुए चीफ जस्टीस श्री दवे साहब

को महान् पवित्र किस प्रकार (यत्न) मे बनाया जाता है। आत्मा के सन्निकट एक विषमय कोठा है जिसका नाम द्रोह है। किसी भी व्यक्ति ने यत्किंचित हमारा अपराध कर दिया या प्रतिकूल बोल गया तो हमारे हृदय मे द्रोह की अग्नि प्रज्वलित हो जायगी। उस अग्नि को शमन करने का एक ही यत्न (उपाय) अथवा तो मार्ग है—क्षमा प्रदान कर देना। क्षमा मागने के बजाय क्षमा-देना बहुत कठिन है। आज का दिवस प्राणीमात्र से क्षमा देने और लेने का है। अपने स्वजन परिवार या मित्रो से तो प्रत्येक व्यक्ति क्षमापना सहर्ष कर ही लेता है इसमे कुछ विशेषता नही, परन्तु जिसके साथ सकारण या अकारण मन-मुटाव हुआ हो उसके साथ भी आज के दिन क्षमापना करना वास्तविक मे हमारा कर्त्तव्य है।

प्रत्येक मानव का यह परम कर्त्तव्य है कि—वह अपने मन मगज को स्थिर करके वर्ष भर के कार्यों का लेखा-जोखा करे, लाभ और हानि का निर्णय करें। यदि हानि उठानी पडी तो क्यो ? और उसमे मैं कितना भागीदार हू, इसका चिन्तन करें। भविष्य मे अपने जीवन को खूब सभाल कर रखें। पुन हानिकारक दोषो के बधन में नहीं आने की प्रतिज्ञा करें।

वे देश, राष्ट्र, समाज और धर्म की सुन्दर सेवा और प्रेरणा देकर उनका विकास कर सकते हैं। उदाहरणार्थ—एक कमरा है, अगर उसमें विशुद्ध हवा का प्रवेश न हो तो उस कमरे की तथा उसमे निवास करनेवाले की स्थिति (हालत) विषयायतन-सी बन जायेगी। ठीक, उसी तरह युवक—राष्ट्र, देश, समाज और धर्म का एक प्रकार का कमरा है, उसमे खराब सस्कारो की अशुद्ध हवा ही आती रहेगी और कर्त्तव्य-परायणता या शुद्ध चारित्र की सौरभ प्रवेश नहीं करेगी तो देश समाज और राष्ट्र का दम घुटने लग जायगा। वृक्ष का आधार मूल (जड) है। मूल (जड) मे यदि किसी प्रकार की विकृति नही है तो डाली एव पत्तो की सुरक्षा हो सकती है। परन्तु मूल ही यदि सड गया हो तो शाखा, प्रतिशाखा टिक नही सकेगी, बेकार हो जायेगी। इसी प्रकार समाज आदि का मूलाधार युवक है। उस (युवक) के शुद्ध रहने से समाज, देश और राष्ट्र की शुद्धि रह सकती है। अत युवकों को मेरा यह शुभ-सन्देश है कि—वे अपनी जिम्मेवारियो को समझें।

युवको मे पढाई का विकास होना जितना जरूरी है उतना ही या उससे भी अधिक सच्चारित्र का विकास होना परमावश्यक है। युवकों के शुद्ध चरित्रशील बनने से दो लाभ हैं। एक तो वे स्वय गुलाब के फूल की भाँति महक सकेंगे। और दूसरा बडा लाभ यह है कि उनकी सौरभ से राष्ट्र, देश, समाज एव धर्म भी सौरभमय बनेगा।

श्रद्धेय प्रवर्त्तक श्री हीरालालजी म०, मनोहर व्याख्यानी, श्री ईश्वर मुनिजी म०, विदुषी महासती श्री कमलावतीजी तथा मोदीजी श्री इन्द्रनाथजी चीफ जस्टिस के भी प्रभावशाली भाषण हुए।

तारीख २३-९-६४ को महासती श्री सुगनकुँवरजी के ५६ दिनों की तपश्चर्या का पूर्ति-दिवस (पूर) था, अत सूर्योदय होते ही जोधपुर की जनता के अलावा अन्य नगरों एव गाँवो से आये हुए भावुक भक्त



दिनांक २०-६-६४ को सिंहपोल मे आयोजित युवक सम्मेलन मे विशेष निमंत्रित व्यक्ति
मेहता सा० २ हेतुदानजी सा० ३ जस्टीस बेरी सा० ४ चीफ जस्टीस दवे सा० ५ जस्टीस इन्द्रनाथजी सा०

हजारों की सख्या मे उपस्थित हो गये। साढा आठ वजे से मगला-चरण के साथ प्रवर्त्तक श्री हीरालालजी म० ने तप की आवश्यकता पर चित्ताकर्षक प्रवचन दिया। वाद मे म० व० श्री ईश्वर मुनिजी ने और विदुषी म० स० श्री कमलावतीजी ने भी तप के महात्म्य पर प्रवचन दिये। तदनन्तर मैंने कहा कि—"तप किसलिये किया जाता है ?" इस प्रकार का प्रश्न अनेक व्यक्ति मुझसे करते हैं। उत्तर मे मैं उनको कहता हूँ, तप इसलिए किया जाता है कि—जो भोजन हम करते हैं उसको पचाने के लिए यदि अवकाश नहीं दें तो हमारा स्वास्थ्य खराब हो जायगा। अगला किया हुआ भोजन नही पचने के पूर्व फिर यदि भोजन कर लेते हैं, इस प्रकार ऊपरा-उपरि भोजन करने से शरीर मे व्याधि उत्पन्न हो जाती है जिस व्याधि को सभी लोग अजीर्ण कहते हैं। इस व्याधि (अजीर्ण) से शरीर इतना निकम्मा हो जाता है कि वह अपने भान को भी भूल जाता है। इस भयकर व्याधि का विनाश सैकडो औषधियाँ देने पर, हजारो अन्य उपचारों के करने पर भी विना लघन करने के नही होता। इस वात को आप सभी केवल जानते ही नहीं हो अपितु किसी भाई को अगर अजीर्ण की व्याधि हो जाती है तो कहा भी करते हो कि—"लघन करलो" जो अजीर्ण मिट जायगा। अजीर्ण-व्याधि को मिटाने के लिये परम उपयोगी अतएव रामवाण इलाज लघन-तप-व्रत ही है।

शरीर सचालन के लिये है, आत्म सचालन के लिये नही। आत्मा तो सदैव तृप्त है।

शरीर को अगर एक दिन या अधिक दिन खाने को नही देंगे तो मगज मे मादकता नही रहेगी, मगज स्वच्छ रहेगा, मगज के स्वच्छ रहने पर मन भी पवित्र रहेगा। मन और आत्मा का बहुत अशो मे निकट सबध होने के कारण उस (मन) का असर आत्मा पर पडेगा जिस (असर) से आत्मा की निर्मलता मे अभिवृद्धि होगी।

विवेक-शून्य होने के कारण पशु तो निरन्तर खाता रहता है, परन्तु मानव तो विवेक-युक्त है अत एक दिन, दो दिन अथवा उससे भी अधिक भोजन का त्याग करके निर्द्वन्द होकर भगवान का भजन कर सकता है, भजन का जो प्रताप है वह सर्व-विदित है। भजन करने से काया की शुद्धि होती है और काया की शुद्धि होने पर आत्मा को अपने अविकारी स्थान की प्राप्ति होती है। एतदर्थ मानव के लिये तप का करना परमावश्यक माना गया है।

स्वर्ण को अगर शुद्ध होना है तो उसे धधकती अग्नि-ज्वाला में गिरना ही होगा। तद्वत् जीवन को यदि शुद्ध बनाना है तो अज्ञानवश इसमे कुत्सित संस्कारो की जो मिलावट आगई है उसे भस्मी-भूत करने के लिये तप की तेजोमयी ज्वाला का ताप सहन करना अत्यन्त आवश्यक है।

विश्वभर के इतिहास और धर्म-ग्रन्थो के पृष्ठ जब हम खोलकर देखते हैं तो तप की सर्वत्र अपार महिमा दिखाई देती है। ईसाइयों मे क्रिसमस के दिनो में तप-आराधना की जाती हैं। मुस्लिम समाज में रमजान के दिनों मे रोजे रखे जाते हैं। वैदिक समाज मे तप की आराधना के लिये ही एकादशी आदि अनेक व्रत किये जाते हैं। जैन-

समाज मे तप की आराधना जो होती है वह अभी भी आपके सामने है। धन्य है महासती श्री सुगनकुवरीजी को कि—जिन्होने आत्म-कल्याण के हेतु केवल गर्म पानी के आधार पर ५६ दिनो की तपश्चर्या की। इन (साध्वीजी) की आयु सिर्फ ३७ वर्ष की ही है। दीक्षित हुए इन्हे केवल साढा चार वर्ष ही हुए हैं। गतवर्ष, जावरे के चातुर्मास मे भी इन्होने केवल गर्म पानी के आधार पर ४७ दिनो की तपश्चर्या की थी। उसके पहले भी ३१ दिनो की तपश्चर्या की थी। आप (साध्वीजी) शरीर मे तो कृश हैं किन्तु इनका आत्म बल प्रबल (मजबूत) है। मैंने महासतीजी को जबकि ३५ दिन तपस्या के हो गये थे तब कहा था, आप पारणा करलें। इसी प्रकार ४०वे दिन तथा ४५वे दिन एव ५०वें दिन भी आग्रह किया कि—आपके शरीर मे कमजोरी अत्यधिक आगई है, अत आप पारणा करलें। ४५वे दिन सघ के मत्री श्री माधोमलजी लोढा और समाज-सेवा के कार्य करने मे अति कुशल श्री गणपतमलजी सुराणा ने भी तपस्विनीजी से प्रार्थना की कि आपका शरीर अत्यन्त कमजोर हो गया है इसलिये अब आप पारणा करलें। उत्तर में तपस्विनीजी ने कहा कि—मुझे ५६ दिन का तप तो करना है। शरीर बल घटरहा है इसका मुझे यत्किंचित भी विचार नही है, जबकि मेरा आत्म-बल बढ रहा है। शरीर तो नाशवान् है वह किसी एक दिन अवश्य छोड देगा, परन्तु आत्म-बल सदा साथ रहनेवाला है। सतीजी के इस प्रकार के उत्साह भरे वचनो को सुनकर वे भी बहुत (बडे) प्रभावित हुए।

उसी दिन अर्थात् ता० २३-९-६४ को मध्याह्न मे महिला-सम्मेलन उन्ही (सतीजी) के तपोत्सव के उपलक्ष मे मनाया गया। इस सम्मेलन की मुख्याध्यक्षा थी श्री कुमारी ऊषा वेरी, एडिशनल मुंशिफ मजिस्ट्रेट। सभा का कार्य आरभ होने के पहले ही महिलाओ की अपार भीड हो गई थी। इस अवसर पर तपस्विनीजी भी वही (सवाईसिंहजी की पोल मे) विराजते थे। मगलाचरण करने के बाद "देश, राष्ट्र, समाज और धर्म के प्रति महिलाओ की क्या जिम्मेवारी है", इस विषय पर भाषण देते हुए अनेक महिलाओ ने अपने-अपने अभिप्राय व्यक्त किये। तत्पश्चात् मैंने कहा—भाईयो और बहिनो! आज इस महिला-सम्मेलन मे महिलाओ की अपार भीड यह जतला रही है कि—उन्हें अपने आपको कर्त्तव्य-निष्ठ बनाने की तमन्ना—जिज्ञासा है।

भारतीय समाज मे नारी का गौरवपूर्ण एक विशिष्ट स्थान है। आर्य-पुरुषो ने उसे अर्धांगिनी का सुन्दर पद दिया है, बराबरी की मानी है। इतना ही नही, प्रत्युत व्यावहारिक और पारमार्थिक क्षेत्र मे उस (नारी) को पुरुष की अपेक्षा अधिक अधिकार मिले हैं। नारी एक आशातीत शक्ति है। वह अपने स्वामी की सहधर्मिणी है, गुलाम नहीं। नारी से श्रेष्ठ ससार मे अन्य कौन है। सच पूछो तो शक्ति स्वरूपा नारी के बल पर ही यह सारा ससार चल रहा है—तमाम जगत उसका कार्य क्षेत्र है। नारी की शक्ति को पाकर ही नर (पुरुष) बलवान—शक्तिशाली बनता है। नारी स्वाधीन होने पर भी उच्छृंखल नही है। वह शक्ति की उद्गम स्थान होने पर भी अत्याचार के द्वारा अपनी शक्ति को प्रकाशित नही करती है। वह जो कहती है, वह कर दिखाती है। नारी के कर्त्तव्य दो विभागों मे बंटे हुए हैं। एक तो व्यवहार कुशलता, दूसरा नीति-युक्त गृह-सचालन।

व्यावहारिक दृष्टि से देखा जाय तो नारी उसमे महत्वपूर्ण कार्य करती है। गृहस्थ जीवन मे अनेक काम उसको ऐसे करने पडते हैं कि

जिनके करने पर मानव घबरा जाता है—परेशान हो जाता है। इस बात को आप सभी अच्छी तरह जानते और मानते हैं कि यदि दुर्भाग्य के प्रकोप से किसी नारी के पति की असामायिक मृत्यु हो गई और घर में दूध-मुहे छोटे-छोटे दो-चार बच्चे हो, उनके निर्वाह के सभी मार्ग बन्द हो, शिरपर कुछ कर्ज होने के कारण उधार एक पैसा भी न मिलता हो, ऐसी भयकर परिस्थिति मे भी वह विधवा नारी, अपने पतिव्रत-धर्म के प्रताप से बड़े धैर्य के साथ चक्की चला कर, सूत कात कर, पापड़ बटने आदि की मजदूरी करके अपने बच्चो का भरण-पोषण करती है, उन्हे शिक्षा दीक्षा द्वारा सुयोग्य बनाती है। परन्तु वह अपने पातिव्रत-धर्म से, अपने सच्चारित्र से विचलित होकर पर पुरुष का सहारा नही लेती, दूसरी शादी नही करती।

परन्तु पुरुषो के अन्दर इतनी कष्ट-सहिष्णुता बहुत कम दिखाई देती है जो सर्व-विदित है।

महिला-मणि मन्दालसा अपने पुत्रो को जगाने के लिए कैसी सुन्दर शिक्षा देती है—वह देखिये—

शुद्धोऽसि, बुद्धोऽसि निरञ्जनोऽसि, ससार माया परिवर्जितोऽसि।
उत्तिष्ठ वत्स! त्यज मोह-निद्राम्, मन्दालसा वाक्य मुवाच पुत्र ॥१॥

का वह वचन याद आ जाता है और तत्काल उस तावीज को खोलकर देखता है, पढता है तो उसमे लिखा हुआ पाता है कि—हे पुत्र ! तू शुद्ध है, बुद्ध है, निरञ्जन है, ससार की माया से रहित है और यह ससार स्वप्न-मात्र है, अत मोह निद्रा को तज कर, उठ—जाग और सच्चिदानन्द स्वरूप अपनी आत्मा की ओर ध्यान दे। इस प्रकार के वाक्यो को पढकर वह बालक जागृत हो जाता है और तत्काल उन छहो भ्राताओ को सम्पूर्ण राज्य-भार सौंप देता है। वे योगी बने हुए छहो भाई अपने कनिष्ठ भ्राता की इस प्रकार की त्याग-वृत्ति को देख कर अति लज्जित हो जाते हैं और उस (कनिष्ठ बन्धु) से कहते हैं कि हमारी आज्ञा मानकर तूंने हमे राज्य सौंप दिया अत यह राज्य हमारा हो गया। अब इस राज्य को हम हमारी प्रसन्नता से तुझे वापिस देते हैं सो ग्रहण कर और अलिप्त रह कर राज्य को सुन्दर ढग से चलाता रह। यह है माता मन्दालसा की शिक्षा, जिसका वर्णन भारत के इतिहास मे स्वर्णाक्षरो से अंकित है।

अपने जीवन मे सात्विकता को स्थान देना, चारित्र को सर्वोपरि-धन मानकर उसके रक्षण करने मे रात-दिन सतर्क रहना, लज्जा, विनय सक्षम, सतोष, क्षमा, गभीरता, समता आदि ये नारी के मुख्य गुण हैं। इन्ही गुणो के आधार पर सती सीता ने राम से पूर्व अपना स्थान पाया। राधा ने कृष्ण के पूर्व अपना स्थान पाया। यथा—सीताराम, राधाकृष्ण।

अनादि काल से, मानव समाज ने नारी-शक्ति की पूजा की है। लक्ष्मी के रूप में, शारदा के रूप मे, कालिका के रूप मे, दुर्गा के रूप मे। इसका एक ही कारण है कि—उन्होंने अपनी शक्ति का प्रयोग जनता के सरक्षण—सवर्द्धन मे किया।

उपस्थित माताओ और बहिनों ! वही शक्ति आप में भी

विद्यमान है, आप उस (अपनी) शक्ति का उचित प्रयोग करके, सती सावित्री, मन्दालसा बनकर देश, धर्म, राष्ट्र और समाज के उत्थान मे पूर्ण सहयोग प्रदान करें यही मेरा आपको कहना है।

तारीख २४-६-६४ को तरुण-तपस्विनी श्री सुगनकुंवरजी महासती ने जब तप व्रत करना प्रारभ किया था तब से ही उन्होने यह निश्चय किया था कि भाद्रपद-पूर्णिमा से पूर्व मुझे पारणा नही करना है। उनके उक्त सकल्प के अनुसार तप की पूर्ति के दिन मे प्रात काल होते ही उन्हे दर्शन देने को गया। मुझे उन्होने वन्दना की। मैंने कहा, आज आपके तप की पूर्ति का दिन है - पारणा करने का दिन है। मै आपको आलोचना करवा देता हू। उन्होने हकारात्मक सिर हिलाया और मैंने आलोचना करवाई। तत्पश्चात् मैंने कहा—अब आपको मैं प्रायश्चित के रूप मे पोरसी करवा देता हू, तब वह मौन रहे। मैंने

परन्तु अनुमान के साढे बारह बजे तबियत ने पलटा खाया। तब तुरन्त ही सघ के मन्त्री श्री माधोमलजी सा० डाक्टर श्री महताजी (पालनपुर वाले) को बुला लाये। डाक्टर साहब ने कहा कि इनकी नब्ज वगैरह अनुकूल नही है। उन (डाक्टर साहब) के ऐसा कहने पर हम समझ गये कि—तभी तपस्विनीजी ने पारणा के लिये मनाई की थी। इनको आज इस असार ससार से रवाने होने की अर्थात् इस भौतिक शरीर को छोडकर जाने की पहले से ही मालूम हो गई है। मैंने उक्त बात का निर्णय करने के लिये तत्काल उपस्थित भाई बहिनो के सामने तपस्विनीजी को कहा। "क्या सथारा करने की सद्भावना है।" सथारे का नाम सुनते ही तपस्विनीजी का मुख-मण्डल चमक उठा। चतुर्विध श्री सघ की साक्षी से श्रद्धेय प्रवर्त्तकश्री ने उनको चौविहार सथारा करवा दिया। सथारा पचखाते ही सारे भवन मे मगलमय शास्त्रो की गाथाओ का उच्चारण, हवन मे करनेवाले पण्डितो की भाति होने लगा। इस प्रकार का वातावरण एक घण्टे तक रहा होगा। ठीक चार बजते ही कराल काल ने अपना प्रभुत्व (जाल) फैलाया और तपस्विनीजी ने अपने ध्येय की ओर प्रस्थान किया। सारे सघ मे उदासी छा गई। तत्काल मेघ ने तपस्विनीजी के सद्गति प्राप्त करने की शुभ-सूचना देने के हेतु मन्द-मन्द जल बूंदो के साथ केशर की बूदे भी बरसाई। खूंठा की पोल के तथा उसके आस-पास के घरों के छत्तो पर जो कपडे धूप मे डाले हुए थे, उन पर केशर के छींटे स्पष्ट दिखाई दे रहे थे। कई भाई और बहिनो ने वे कपडे मुझे भी दिखलाये जिनपर केशर की छीटें गिरी हुई थी। धन्य है, तपस्विनीजी को कि—जिनने छोटी उम्र मे अपने जीवन को परम-पवित्र बनाकर, ध्येय की सिद्धि करली। तपस्विनीजी का निर्वाण महोत्सव स्थानीय एव बाहर गाव के श्रावक सघ ने बडे समारोह के साथ किया।

तारीख ४-१०-६४ को मध्याह्न के बारह बजे श्री महाराजा

विद्यालय मे उसके वार्षिकोत्सव प्रसग पर प्रवचन हुए—मधुर वक्ता श्री ईश्वरमुनिजी ने सर्व-प्रथम मन-वचन काया को निर्मल बनाने का शुभ-सन्देश दिया। तदनन्तर मैंने कहा—जैन-इतिहास को जब हम देखते हैं तो हमे यह जानकारी होती है कि युगलिया धर्म समाप्त होने पर सर्व-प्रथम कर्म-भूमि के कमनीय राजा श्री ऋषभदेव हुए। सनातन वैदिक समाज मे जिन्हे ऋषभावतार और मुस्लिम समाज मे जिन्हें बाबा आदम कहते हैं। महाराजा ऋषभदेव ने सोचा कि—मानव-समाज मे ऐसे व्यक्तियो की भी अति आवश्यकता है कि जो बर्तन आदि वस्तुओ का भी निर्माण कर सके। अत मानव-समाज मे से कुछ ऐसे व्यक्तियो को चुना जो कि शरीर से श्रम कर सकते थे। तत्पश्चात् उन्ही को बर्तन वगैरह बनाने की कला सिखाई। जो व्यक्ति इस कला मे प्रवीण हुए उनके समूह का नाम "कुम्भकार" रख दिया। कुम्भकार एक हुआ जिसका नाम सकडाल था। और उसके पाच सौ । आज उन्ही कुम्भकार भ्राताओ के बीच, मैं अपने कनिष्ठ गुरुभ्राता श्री ईश्वर मुनि (जो कि ससारावस्था मे कुम्भकार थे) के साथ बैठा हुआ हू। कुम्भकार जाति केवल मिट्टी से घडे आदि बर्तन बनाने का ही कार्य न करे, किन्तु जीवन को बनाने का भी कार्य उनका है। जिसको बनाना आता है वह खुद भी बन सकता है। बनाने के बजाय बनना बहुत मुश्किल है। अत आप अपने जीवन को इस प्रकार तैयार करें कि आपके मन के प्रतिकूल हजारों परिस्थितिया आजायें तदपि उससे भयभीत हो धैर्य को न खोएँ। जैसे घडा न्याव (उबाडे) मे से निकल कर जब बाजार में विक्रय के लिए आता है तब उसे खरीदने के लिये—लेने के लिये ग्राहक आते हैं और उस (घडे) को उठा कर चारो ओर से देखते हैं। चारो ओर से देख लेने पर भी जब कि उनका भ्रम दूर नहीं होता है तो वे उस (घडे) को अपने हाथ के ठोलों से बजा-बजा कर देखते हैं कि कहीं किसी जगह से खोखरा तो नहीं बोलता है। इस प्रकार से परीक्षा

करने के बाद जब ग्राहक इस निर्णय पर पहुँच जाता है कि—मटका (घडा) ठीक है, तब वह उसे खरीदता है। जब एक घडे को संसारी क्षेत्र मे जाने पर इतनी परीक्षाओ मे उसे गुजरना पडता है तो फिर मानव को तो न जाने कितनी भयकर समस्याओ मे से समाधान का मार्ग निकाल कर आगे बढना है। घडा अगर ग्राहक की परीक्षा में नापास हो गया तो वह बेकार हो जाता है,—उसकी कीमत फूटी कोडी की भी नही रहती है। इसी प्रकार मानव भी अपनी मानवता की परीक्षा मे अनुत्तीर्ण हुआ कि बस फिर उसका कुछ भी महत्व नही रहता है।

जीवन बनाने के लिए अहिंसा, सत्य, नैतिकता सयम आदि की पूर्ण आवश्यकता है। उनके अभाव मे जीवन मिट्टी से भी खराब है। अत मानव-जीवन सफल बनाने के लिये, धैर्य–सहिष्णुता–क्षमा आदि के साथ ऊपर बतलाये हुए सद्गुणो को अपनाने की अतीव आवश्यकता है। कारण कि—ये ही मानव–जीवन के सबल है। इन्ही के आधार पर मानव विपरीत परिस्थितियो मे सुरक्षित निकल कर आगे बढता है।

आपमे कितनी योग्यता है। इस बात की परीक्षा, अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितिया आकर करती है। अगर इच्छित पदार्थ की प्राप्ति पर आप हर्षित होते हैं तो विपरीत 'परिस्थितियो की उपस्थिति होने पर आप अवश्य रोएँगे और विपरीत परिस्थितियो मे आप रोते हैं तो मनोज्ञ प्रसगो के प्राप्त होने पर आप अवश्य हसेगे। यही क्रम अगर जीवन का बना रहा तो जीवन निष्फल–निकम्मा है। आपने अपने जीवन मे की महत्ता को कुछ भी नही समझा इसलिए अभी तक आप मे बालक–पन ही है। बालक को उसकी इच्छानुकूल खिलौना मिला तो बालक ने हस दिया। खिलौना टूट गया कि बालक ने रो दिया। इसी प्रकार यदि वृद्ध पुरुष भी करें तो बालक

में और वृद्ध मे फिर अन्तर क्या ? कुछ भी नहीं। आराम मिलने पर हँसना और मुसीवत आने पर रोना यह कार्य तो अज्ञानियो का है। ज्ञानी तो सभी परिस्थितियो मे मन का संतुलन नही खोता है। आशा है आप मेरे इस कटु किन्तु अति उपयोगी कथन का हृदय से मनन कर अपने जीवन को आनन्दमयी बनावेंगे।

ता० ९-१०-६४ को श्री गिरधर भाई दफ्तरी, श्री मनसुख भाई खारवाले, श्री मनुभाई शाह, श्री दलीचन्द भाई, कादावाडी तथा बाबू भाई, दर्शनार्थ जोधपुर आये। व्याख्यान मे श्री गिरधर भाई (कान्फ्रेंस के मत्री) बोले। मैं जोधपुर मे चौथी दफे आया हू। सादडी के सम्मेलन मे, स्थानकवासी सप्रदाय की बावीस सप्रदायें मिलकर एक "श्री वीर वर्द्धमान श्रमण सघ" बना, उस समय की स्थिति इतनी आदर्श थी कि—मन्दिर-मार्गी और तेरहपथी सन्त भी यो बोल उठे कि—इसका नाम सगठन है, त्याग है। लेकिन वह सुहावना वातावरण कुछ स्वार्थी तत्त्वो ने रहने नहीं दिया और सगठन मे विघटन हुआ। आज भी अपनी मनोकामना पूर्ण करने के लिये विघटन प्रेमी नाना-भान्ति के कुचक्र चला रहे हैं। परन्तु धन्य है श्रद्धेय प्रवर्त्तक श्री हीरालालजी महाराज और प्रसिद्ध वक्ता, तरुण-तपस्वी श्री लाभचन्दजी महाराज को कि जिन्होने श्रमण सघ की सेवा बजाने मे बहुत बडा योगदान दिया।

आज से दो वर्ष पूर्व आचार्य श्री आनन्दऋषिजी महाराज ने घाटकोपर (बम्बई मे) चातुर्मास किया। उनकी सेवा मे रहे हुए सन्त श्री मोतीऋषिजी को लकवा हो गया। इधर श्री कान्फ्रेंस की जनरल कमेटी ने यह तय किया कि—"साधु-सम्मेलन" शीघ्राति-शीघ्र किया जाय, और आचार्य पद पर उपाध्याय श्री आनन्दऋषिजी महाराज को आरूढ किया जाय। उस वर्ष श्रद्धेय प्रवर्त्तक श्री हीरालाल जी म० और तरुण-तपस्वी श्री लाभचन्दजी म० का चातुर्मास नी

फोर्ट (बम्बई) मे था। आप चातुर्मास समाप्त होने पर घाटकोपर पधारे जहा पर कि उपाध्यायजी महाराज विराजते थे। उस समय हम कान्फ्रेस के मुख्य-मुख्य व्यक्तियो ने उपाध्यायजी के, प्रवर्त्तकजी के, तथा तरुण-तपस्वीजी के सामने साधु-सम्मेलन की रूप-रेखा रक्खी। उत्तर मे उपाध्यायजी म० ने फरमाया कि कान्फ्रेस का विचार अति उत्तम है। परन्तु मेरा साथी श्री मोतीऋषि है वह लकवे की व्याधि से व्यथित है, इनकी सेवा मे सन्तो का रहना (रखना) बहुत जरूरी है और मेरे निकट अभी सन्तो की जोगवाई है वह आपके सामने है। ऐसी परिस्थति मे साथियों की कमी के कारण मैं मालवे की ओर विहार कैसे कर सकूंगा। तब प्रवर्त्तक श्री हीरालालजी म० और तपस्वी श्री लाभचन्दजी म० ने श्री आचार्यजी (उपाध्यायजी) म० से निवेदन किया कि—आप जो आज्ञा देंगे हम उसका पालन करेंगे। हमको यदि आप अपनी सेवा मे साथ-साथ रखना चाहे तो हम साथ मे रहने को हाजिर है और यहाँ श्री मोतीऋषिजी म० की सेवा मे रखना चाहे तो तैयार है।

आचार्य श्री ने बम्बई से विहार किया और प्रवर्त्तकजी म० आगे पधार गये तथा तपस्वीजी म० को आचार्य श्री की सेवा मे रख गये। इसमे प्रवर्त्तकजी म० की बड़ी उदारता यह रही कि करीब २० वर्षो से तपस्वीजी म० उनकी सेवा मे रहते थे उन्हे आचार्य श्री की सेवा मे रखा और आपने स्वय अपनी तकलीफे सहन की।

तपस्वीजी म० जो बेले बेले पारना करते हैं और ६ वर्षो से दिन-रात कभी भी सोते नही हैं, इतनी इनकी उग्र तपस्या तथा उस पर इतना उग्र विहार। तपस्वीजी म० ने विहार (रास्ते) मे आचार्य श्री की जो सेवा की उसे अनेक ग्रामो मे मैं अपनी आंखो से देख कर दग रह गया। उसके बाद शाजापुर के चातुर्मास में श्रमण-सघ को सुदृढ बनाने में एव सम्मेलन के होने में जो रुकावटें (विघ्न-

बाधाएं) आ रही थी उन को दूर करने मे आचार्य श्री जी को तपस्वी जी म० ने जो साथ दिया उसको देखकर मैं तो गद्गद हो गया कि—इतनी छोटी उम्र मे इतनी बडी तपश्चर्या और इतना विवेक-युक्त श्रम। उसके बाद रतलाम, सैलाना, जावरा, मन्दसोर आदि क्षेत्रों में जहाँ कि हमे भी यह भय था कि इधर कही विद्रोही लोग विद्रोह न कर बैठें, परन्तु तपस्वीजी म० ने इस प्रकार का योग-वातावरण उपस्थित किया जो अजमेर तक किसी प्रकार की रुकावटें (विघ्न-बाधाएं) नही आई। तपस्वीजी म० के हृदय मे श्रमण संघ को सु-सगठित देखने की बहुत बडी अभिलाषा (आशा) है।

मैंने, सानन्द सपन्न हुए अजमेर के इसी सम्मेलन में जब तपस्वीजी म० को देखा था, उस समय के तपस्वी जी के शरीर में और आज के शरीर मे बहुत बडा अन्तर है। यह सब तीव्र-तपश्चर्या तथा श्रमण-सघ का निरन्तर विकास कैसे हो ? इस प्रकार के चिन्तन का परिणाम है। इसी प्रकार सभी सन्त-महात्मा और श्रावक-सघ भी श्रमण-सघ के लिये योग-दान देते रहें तो श्रमण-सघ का विकास अवश्यम्भावी है, बस इतना ही मुझे कहना है।

—